



Impact Factor :
7.834

गीना देवी शोध संस्थान

द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
Sept.-Oct. 2026
Volume 14, Issue 9-10

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL

Editor :
Dr. Rekha Soni
Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.



संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI
LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com



संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 14

अंक : 9-10, भाग-1

सितम्बर-अक्टूबर : 2026

आईएसएसएन : 2321-8037

सम्पादक :

डॉ. रेखा सोनी

टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर, राज.

प्रधान सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

अंतर्राष्ट्रीय सम्पादक मण्डल :

डॉ. लक्ष्मी जोशी

त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।

शिओंग छन श्यू, चीन।

डॉ. ऋतु शर्मा ननन पाँडे

साहित्यकार, शिक्षाविद, नीदरलैंड।

डॉ. सुनीता शर्मा

हिन्दी साहित्यकार, कवयित्री, संपादक

एवं शिक्षाविद् मेलबोर्न, ऑस्ट्रेलिया

डॉ. अनुरुद्ध बायन

मध्य कामरूप कॉलेज, सुभा

जिला बारपेटा, असम।

डॉ. सृष्टि चौधरी

लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड

कम्प्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक

कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्री श्रेष्ठ चौधरी,

सीनियर मैनेजर,

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, साहिबजादा

अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :

डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,

श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत

अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग

नूंह (हरियाणा)

डॉ. विनोद कुमार गिरधर

प्राचार्य, महर्षि दयानंद बीएड

कॉलेज, श्रीगंगानगर (राज.)

डॉ. सुशीला

चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा

आईएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे

बाबा साहेब चितले महाविद्यालय

भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल

राजीव गांधी बीएड कॉलेज

धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी

दशमेश गर्ल्स कॉलेज,

अल्ला बक्श, मुकरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती

साहित्यकार, अनुवादक, यूक्रेन।

डॉ. हेमराज न्यौपाने

काठमाण्डु, नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा

अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल

बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप

ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

डॉ. मधुबाला

राजकीय महाविद्यालय, लाखनमाजरा।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी

जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग

विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका

राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,

श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया

संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा

शिक्षा संकाय, टांटिया विश्वविद्यालय,

श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया

माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,

सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट

हिन्दी विभाग,

कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी

सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला

महाविद्यालय, एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.

यूनाईटेड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,

अंकारा विश्वविद्यालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास

अध्यक्ष होम्योपैथिक, लखनऊ।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, पुराना बस स्टैंड रोड, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

**AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI
LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL**

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerce, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohwal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

- Disclaimer :**
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
 2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
 3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originality of their views/opinions expressed in their articles.
 4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdiction only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gagan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

50

THE GAZETTE OF INDIA : EXTRAORDINARY

[PART III—SEC. 4]

तालिका- 2

शैक्षणिक/ शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसे: प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान/ अभियांत्रिकी/ कृषि/ चिकित्सा/ पशु-चिकित्सा/ विज्ञान संकाय	भाषा/ मानविकी/ कला/ सामाजिक विज्ञान/ पुस्तकालय/ शिक्षा/ शारीरिक शिक्षा/ वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान- अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com

✉ grsbohals@gmail.com

☎ 8708822674

☎ 9466532152

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	07-07
2.	वैश्वीकरण के दौर में हिंदी भाषा की स्थिति	प्रा. वडगे वृषाली रंगनाथ	08-14
3.	भीष्म साहनी के उपन्यासों में चित्रित पारिवारिक नारी	मोनिका रानी, डॉ० शिबा	15-20
4.	दक्षिण एशिया में शांति, सुरक्षा और विकास के लिए SAARC की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ कुलदीप सिंह	21-28
5.	ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की ऋण उपलब्धता, ऋण उपयोग एवं पुनर्भुगतान व्यवहार	अर्चना सिन्हा, डॉ. शारदा वर्मा	29-38
6.	Digital Right Management Techniques : Analysis in Present	Dr. Ankit Godara	39-43
7.	डिजिटल भारत और सामाजिक परिवर्तन : डिजिटल तकनीक का भारतीय समाज पर प्रभाव	डॉ. राखी सक्सेना, जगदीश कुमार धुर्वे	44-51
8.	Relevance of Values Reflected in the Ramayana in Contemporary Times : A Theoretical Perspective	Monika Sahai	52-60
9.	Role of Animal Husbandry in Rural Development of Haryana	Dr. Satyawan Jatain	61-70
10.	कृष्ण बलदेव वैद की कहानियों में मध्यवर्गीय समाज के जीवन की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति	डॉ० अजय सिंह चौहान, सोनू	71-77
11.	आधुनिक हिंदी कविता में पर्यावरणीय चेतना : प्रकृति और मनुष्य के बदलते संबंधों के संदर्भ में	शाइस्ता सना	78-83
12.	Decolonizing Indian Education : How Colonization Still Shapes What We Learn	Dimpi Singh	84-93
13.	स्वच्छता : एक सामाजिक जिम्मेदारी या दिखावा?	डॉ. दीप्ति सुधीरकुमार देशपांडे	97-99
14.	उपन्यास 'अम्बपाली- एक उत्तरगाथा' में सामाजिक रूढ़ियों और स्त्री-प्रतिरोध का स्वर	हजीना. जी. आर, डॉ. अम्बिली वीएस	100-102
15.	प्रगतिवादी कविता में जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति	श्यामलाल	103-111
16.	हरियाणा में कल्याणकारी योजनाएँ और राजनीतिक व्यवहार : 2014 से 2026 तक एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	पूजा शर्मा, डॉ. राकेश रोहिल्ला	112-120

17. Sustainable Development in Agriculture- A Sociological Study of Practices, Institutions and Rural Livelihoods	Jai Mala Thakur	121-129
18. The specific role of local merchants (dubashes) and brokers in French colonised India	Dr. Ravi Shankar Kumar	130-139
19. Promoting Skills of the Females of Jharkhand on Social Media	Sangeeta Sharma	140-146
20. ONLINE EDUCATION – CHALLENGES AND OPPORTUNITIES	Dr. Madhvi	147-152
21. भगवतीचरण वर्मा : साहित्य नहीं, सोच की क्रांति	डॉ. अफीफा फातिमा शेक	153-157
22. The Influence of Customer Trust and Satisfaction on Mobile Banking Adoption	Kiran Dattaram Jadhav, Dr. Mukesh Kumar Verma	158-167
23. हिंदी-मराठी साहित्यबंध : डॉ. रामदरश मिश्र और व्यंकटेश माडगूळकर के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन तथा मिश्र जी की स्मृति को भावपूर्ण आदरांजलि	डॉ. नरेंद्र चिमण सूर्यराव	168-173
24. प्राचीन भारतीय स्त्री- अभिव्यक्तियाँ	सुप्रिया सिंह	174-178
25. The Role of Public Policy in Promoting Innovation in India : A Comprehensive Review	Suresh Sharma, S. K. Kulshrestha	179-187
26. मृदुला गर्ग एवं आशा प्रभात के उपन्यासों में स्त्री चेतना : तुलनात्मक अध्ययन	रश्मि प्रसाद	188-194
27. जीवन कौशल शिक्षा की विद्यार्थियों के जीवन में उपयोगिता	डॉ. (प्रो.) रीटा शर्मा, सुरभि श्रीवास्तवा	195-198
28. జానపద సాహిత్యం - బాలానందం	డా.. జురెడ్డి నిర్మల	199-205
29. समाज में महिलाओं की स्थिति : सशक्तिकरण, विकास और परंपरागत मूल्यों के बीच संतुलन का विश्लेषण	शामा रमोला, डॉ. रीना अग्रवाल	206-212
30. भगवद्गीता में कर्मयोग सिद्धान्त की सजग नैतिक दृष्टिकोण	डॉ. वीरेन्द्र कुमार	213-219
31. भारतीय संस्कृति एवं संस्कार	डॉ. संजीव कुमार	220-222

सम्पादक की कलम से.....

शोध, साहित्य और समाज : बदलते समय में हमारी जिम्मेदारियाँ

प्रिय पाठकगण, शोधार्थी, साहित्यकार एवं विद्वज्जनों,

सादर नमस्कार!

‘गीना शोध संगम’ का सितंबर–अक्टूबर 2026 का यह अंक आपके हाथों में सौंपते हुए हमें विशेष प्रसन्नता हो रही है। किसी शोध पत्रिका का प्रत्येक अंक केवल कुछ शोध आलेखों का संकलन नहीं होता, बल्कि वह अपने समय के प्रश्नों, चिंताओं, विचारों और संभावनाओं का दस्तावेज भी होता है। शोध का उद्देश्य केवल तथ्यों को एकत्र करना नहीं, बल्कि उन तथ्यों के भीतर छिपे सत्य को पहचानना, प्रश्न उठाना और समाज को नई दृष्टि प्रदान करना है। आज हम ऐसे संक्रमणकाल से गुजर रहे हैं, जहाँ परिवर्तन की गति अत्यंत तीव्र है। तकनीक ने हमारे जीवन को सुविधाजनक बनाया है, संचार ने दुनिया को निकट ला दिया है और ज्ञान के स्रोत पहले की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक हुए हैं। दूसरी ओर, इसी परिवर्तन के बीच सामाजिक असमानता, सांस्कृतिक विस्मृति, पर्यावरणीय संकट, बेरोजगारी, मानसिक तनाव, नैतिक मूल्यों का क्षरण और मानवीय संबंधों में बढ़ती दूरी जैसे प्रश्न भी हमारे सामने खड़े हैं। ऐसे समय में साहित्य और शोध की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं है। वह समाज की अंतरात्मा की आवाज है। वह उन अनुभवों को शब्द देता है जिन्हें अक्सर इतिहास और समाचारों में स्थान नहीं मिलता। किसान, मजदूर, स्त्री, दलित, आदिवासी, युवा, वृद्ध, प्रवासी, दिव्यांग और समाज के हाशिये पर खड़े अनेक वर्गों के जीवन–संघर्ष साहित्य में अभिव्यक्ति पाते हैं। साहित्य हमें मनुष्य को केवल उसकी पहचान से नहीं, बल्कि उसकी संवेदना से देखने की दृष्टि देता है। इसी प्रकार शोध केवल डिग्री प्राप्त करने की प्रक्रिया नहीं होना चाहिए। शोध का वास्तविक मूल्य तब है जब वह ज्ञान के साथ–साथ समाज को दिशा देने का कार्य करे। किसी भी शोध की सार्थकता इस बात से निर्धारित होनी चाहिए कि वह अपने विषय के प्रति कितनी गंभीरता, मौलिकता और प्रमाणिकता रखता है तथा उसके निष्कर्ष ज्ञान के क्षेत्र में क्या नया जोड़ते हैं।

आज शोध के सामने सबसे बड़ी चुनौती ‘गुणवत्ता और मौलिकता’ की है। डिजिटल माध्यमों ने सामग्री तक पहुँच आसान कर दी है, लेकिन इसी सुविधा ने साहित्यिक चोरी, बिना संदर्भ सामग्री के उपयोग और सतही शोध की संभावनाएँ भी बढ़ाई हैं। इसलिए प्रत्येक शोधार्थी का दायित्व है कि वह शोध को केवल प्रकाशन की आवश्यकता न समझे, बल्कि उसे ज्ञान–साधना के रूप में स्वीकार करे। हमें यह भी समझना होगा कि शोध की भाषा जितनी सरल और संप्रेषणीय होगी, उसका सामाजिक प्रभाव उतना ही व्यापक होगा। हिंदी में शोध का विस्तार इसलिए आवश्यक है कि ज्ञान केवल विश्वविद्यालयों और शोध–कक्षों तक सीमित न रहे। हमारी अपनी भाषाएँ समाज के व्यापक वर्ग तक ज्ञान पहुँचाने का सबसे प्रभावी माध्यम बन सकती हैं।

आज भारतीय भाषाओं और विशेष रूप से हिंदी के सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि वैश्वीकरण और तकनीकी विकास के युग में हम अपनी भाषाई एवं सांस्कृतिक पहचान को किस प्रकार सुरक्षित रखते हुए आगे बढ़ें। हमें न तो आधुनिकता से भयभीत होने की आवश्यकता है और न परंपरा को आँख मूँदकर स्वीकार करने की। आवश्यकता है— ‘परंपरा और आधुनिकता के बीच सार्थक संवाद की।’

नई शिक्षा व्यवस्था, डिजिटल शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सोशल मीडिया और बदलते रोजगार बाजार ने शिक्षा की परिभाषा को भी बदल दिया है। आज शिक्षक की भूमिका केवल सूचना देने वाले व्यक्ति की नहीं रही। शिक्षक को अब विद्यार्थी में प्रश्न करने की क्षमता, आलोचनात्मक दृष्टि, संवेदनशीलता और सृजनात्मकता विकसित करनी होगी। इसी संदर्भ में शोध पत्रिकाओं की जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है। एक अच्छी शोध पत्रिका शोधार्थी और समाज के बीच सेतु का कार्य करती है। 'गीना शोध संगम' का उद्देश्य भी साहित्य, शिक्षा, संस्कृति और शोध के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विमर्श को आगे बढ़ाना रहा है। पत्रिका की शोध-परंपरा में साहित्य और सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ समकालीन विमर्श को स्थान दिया जाता रहा है। हमें विश्वास है कि शोध का संसार जितना व्यापक होगा, समाज की समझ उतनी ही गहरी होगी।

आज आवश्यकता ऐसे शोध की है जो केवल समस्या की पहचान न करे, बल्कि समाधान की दिशा भी सुझाए। ऐसा शोध जो पुस्तकालय की अलमारियों में बंद न रहे, बल्कि समाज के जीवन से जुड़ सके। ऐसा साहित्य जो केवल शब्दों की सुंदरता तक सीमित न हो, बल्कि मनुष्य के दुख-सुख, संघर्ष और सपनों की आवाज बन सके। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि किसी समाज की प्रगति केवल उसके आर्थिक विकास से नहीं मापी जा सकती। समाज तब विकसित होता है जब उसके भीतर संवेदना जीवित रहती है, जब असहमति का सम्मान होता है, जब प्रश्न पूछने की स्वतंत्रता होती है और जब ज्ञान का उपयोग मानव कल्याण के लिए किया जाता है।

इसीलिए शोधकर्ता का पहला दायित्व है – 'सत्य के प्रति ईमानदार रहना।'

साहित्यकार का पहला दायित्व है – 'संवेदना के प्रति ईमानदार रहना।'

शिक्षक का पहला दायित्व है – 'ज्ञान और नई पीढ़ी के प्रति ईमानदार रहना।'

और शोध पत्रिका का पहला दायित्व है— 'गुणवत्तापूर्ण और मौलिक ज्ञान को समाज तक पहुँचाना।'

सितंबर-अक्टूबर 2026 का यह अंक इसी विश्वास के साथ आपके समक्ष प्रस्तुत है कि इसमें प्रकाशित विचार पाठकों को पढ़ने के साथ-साथ सोचने के लिए भी प्रेरित करेंगे। हमारा प्रयास है कि 'गीना शोध संगम' केवल शोध-प्रकाशन का माध्यम न बने, बल्कि ऐसा वैचारिक मंच बने जहाँ विभिन्न दृष्टियों का सम्मान हो, प्रश्नों पर खुलकर संवाद हो और ज्ञान की नई दिशाओं की तलाश जारी रहे।

अंततः यही कहना चाहूँगा कि—

“समय बदलता रहेगा, प्रौद्योगिकी बदलती रहेगी, समाज की संरचनाएँ बदलती रहेंगी, लेकिन मनुष्य को समझने की आवश्यकता कभी समाप्त नहीं होगी।” और जब तक मनुष्य को समझने की आवश्यकता रहेगी, तब तक साहित्य आवश्यक रहेगा, शोध आवश्यक रहेगा, संवाद आवश्यक रहेगा और ऐसी शोध पत्रिकाएँ भी आवश्यक रहेंगी जो ज्ञान को समाज से जोड़ने का कार्य करती रहें।

आइए, हम शोध को प्रमाणिकता दें,

साहित्य को संवेदना दें, शिक्षा को उद्देश्य दें और अपने समय को एक बेहतर समाज देने का संकल्प लें। 'आपका स्नेह और सहयोग ही हमारी सबसे बड़ी शक्ति है।'

सादर,

—डॉ. नरेश सिहाण एडवोकेट



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 08-14

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

वैश्वीकरण के दौर में हिंदी भाषा की स्थिति

प्रा. वडगे वृषाली रंगनाथ

हिंदी विभाग,

कला, वाणिज्य और विज्ञान महाविद्यालय, मालेगांव शहर।

प्रास्ताविक :

वैश्वीकरण वर्तमान युग की एक महत्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और तकनीकी प्रक्रिया है, जिसने संपूर्ण विश्व को एक वैश्विक मंच पर जोड़ दिया है। आज हिंदी दुनिया की सबसे बड़ी और खास भाषाओं में से एक है। भारत में तो यह सबसे ज्यादा बोली और समझी जाती ही है, लेकिन विदेशों में बसे भारतीयों की वजह से यह पूरी दुनिया में अपनी मजबूत पहचान बना रही है। आज इंटरनेट, यूट्यूब, सोशल मीडिया, ओटीटी (OTT) प्लेटफॉर्म और AI (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) जैसी नई तकनीकों ने हिंदी को तेजी से आगे बढ़ाया है।

आज शिक्षा, न्यूज, फिल्मों और विज्ञापनों में हिंदी का इस्तेमाल पहले से कहीं ज्यादा हो रहा है। हिंदी को मिलने वाले इन नए मौकों और चुनौतियों के पीछे सबसे बड़ा कारण 'वैश्वीकरण' (Globalization) है। आज इंटरनेट, व्यापार और नई तकनीकों ने पूरी दुनिया को एक साथ जोड़ दिया है। इससे दुनिया भर की अलग-अलग भाषाएं और संस्कृतियां एक-दूसरे के करीब आई हैं, जिसका सीधा असर हमारी हिंदी पर भी पड़ा है। आज हर जगह अंग्रेजी का दबदबा बढ़ रहा है। आजकल के युवा शुद्ध हिंदी बोलने के बजाय हिंदी और अंग्रेजी को मिलाकर (यानी 'हिंग्लिश') बोलना ज्यादा पसंद करते हैं। इससे यह चिंता पैदा हो गई है कि कहीं हमारी भाषा अपनी शुद्धता और सांस्कृतिक पहचान न खो दे।

वैश्वीकरण की अवधारणा :

वैश्वीकरण का अर्थ है कि दुनिया के सभी देश एक-दूसरे के अधिक करीब आते जा रहे हैं। आज व्यापार, शिक्षा, तकनीक, संस्कृति, जानकारी और लोगों का आपसी संपर्क पहले की तुलना में बहुत बढ़ गया है। इंटरनेट, परिवहन और संचार के विकास के कारण दुनिया एक 'वैश्विक गाँव' (Global Village) बनती जा रही है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के अनुसार, वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी, तकनीक और ज्ञान का एक देश से दूसरे देश में आदान-प्रदान बढ़ता है। इसका प्रभाव केवल अर्थव्यवस्था तक ही सीमित नहीं है, बल्कि संस्कृति, राजनीति और पर्यावरण पर भी पड़ता है।

वैश्वीकरण के प्रमुख प्रकार :

- **सांस्कृतिक वैश्वीकरण** : विभिन्न देशों की संस्कृति, भाषा, खान-पान, पहनावा और मनोरंजन का एक-दूसरे पर प्रभाव पड़ना।
जैसे : हॉलीवुड फिल्मों और कोरियाई (K-pop, K-drama) संगीत पूरी दुनिया में लोकप्रिय हैं।
- **आर्थिक वैश्वीकरण** : देशों के बीच व्यापार और निवेश का बढ़ना, जिससे वस्तुओं और सेवाओं का आदान-प्रदान आसान हो जाता है।
जैसे : भारत में विदेशी कंपनियों के उत्पाद आसानी से मिलते हैं।
- **राजनीतिक वैश्वीकरण** : विभिन्न देशों का अंतरराष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से मिलकर काम करना।
जैसे : संयुक्त राष्ट्र जैसे संगठन।
- **वित्तीय वैश्वीकरण** : एक देश से दूसरे देश में धन और निवेश का आसान प्रवाह।
जैसे : विदेशी कंपनियों का भारत में निवेश करना।
- **तकनीकी वैश्वीकरण** : नई तकनीकों और इंटरनेट के माध्यम से पूरी दुनिया के लोगों का जुड़ना।
जैसे : सोशल मीडिया, वीडियो कॉल और ऑनलाइन शिक्षा।

वैश्वीकरण के दौर में हिंदी की वर्तमान स्थिति :

वैश्वीकरण के बाद हिंदी का उपयोग केवल भारत तक सीमित नहीं रहा। आज हिंदी का प्रयोग शिक्षा, मीडिया, सिनेमा, इंटरनेट, सोशल मीडिया और विभिन्न डिजिटल माध्यमों में तेजी से बढ़ा है। इससे हिंदी को राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी नई पहचान मिली है।

भारत में हिंदी को संविधान द्वारा राजभाषा का दर्जा प्राप्त है, फिर भी प्रशासन, उच्च शिक्षा और रोजगार के कई क्षेत्रों में अंग्रेजी का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। इसके बावजूद हिंदी आम लोगों की भाषा होने के कारण निरंतर आगे बढ़ रही है। हिंदी की सबसे बड़ी शक्ति उसके बोलने और समझने वाले करोड़ों लोग हैं। यही जनसमर्थन हिंदी के विकास का प्रमुख आधार है।

सोशल मीडिया एवं हिंदी :

आज के डिजिटल युग में सोशल मीडिया ने हिंदी भाषा के विकास और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिंदी केवल भारत की राजभाषा ही नहीं, बल्कि करोड़ों लोगों के बीच संवाद का सबसे प्रभावी माध्यम भी है। वैश्वीकरण के इस दौर में अंग्रेजी का महत्व बढ़ा है, फिर भी भारत में हिंदी के बिना संचार और व्यापार की

कल्पना करना कठिन है। इसी कारण मोबाइल कंपनियों और तकनीकी संस्थाओं ने अपने ऑपरेटिंग सिस्टम तथा विभिन्न डिजिटल सेवाओं में हिंदी भाषा की सुविधा उपलब्ध कराई है।

आज हिंदी राजनीति, मनोरंजन, शिक्षा, विज्ञापन और जनसंचार की प्रमुख भाषा बन चुकी है। फेसबुक, व्हाट्सएप, एक्स (पूर्व में ट्विटर), इंस्टाग्राम तथा यूट्यूब जैसे सोशल मीडिया मंचों ने हिंदी को नई पहचान दी है। इन माध्यमों के द्वारा नए साहित्यकार, कवि और लेखक अपनी रचनाएँ बहुत कम समय में लाखों पाठकों तक पहुँचा रहे हैं। फेसबुक पर हिंदी कविता, हिंदी पत्रिका और हिंदी समीक्षा जैसे अनेक साहित्यिक पेज हिंदी साहित्य को लोकप्रिय बना रहे हैं।

सोशल मीडिया पर हिंदी के बढ़ते प्रयोग के प्रमुख कारण :

1. टेक्नोलॉजी की मदद :

C-DAC जैसी भारतीय संस्थाओं ने हिंदी में टाइप करना, फॉन्ट बदलना और ट्रांसलेट (अनुवाद) करना बहुत आसान बना दिया है। नए और आसान कीबोर्ड की वजह से अब मोबाइल या कंप्यूटर पर हिंदी लिखना और पढ़ना बेहद सरल हो गया है।

2. बिजनेस और कंपनियों की जरूरत :

आजकल हर कंपनी अपने ग्राहकों से उनकी अपनी भाषा में जुड़ना चाहती है। यही कारण है कि ईमेल, फेसबुक, व्हाट्सएप और लगभग सभी मोबाइल ऐप्स अब हिंदी में भी काम करने लगे हैं। इससे इंटरनेट पर हिंदी का इस्तेमाल लगातार बढ़ रहा है।

3. आम लोगों का लगाव :

हम भारतीय अपने त्योहारों, पारिवारिक बातचीत और अपनी भावनाओं को जाहिर करने के लिए सबसे ज्यादा हिंदी का ही इस्तेमाल करते हैं। सोशल मीडिया ने इस काम को और आसान बना दिया है, जिससे लोग अब खुलकर अपनी भाषा में एक-दूसरे से जुड़ रहे हैं।

वैश्विक स्तर पर हिंदी शिक्षण की चुनौतियाँ :

आज के समय में वैश्वीकरण बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। इसके कारण दुनिया के देश एक-दूसरे के करीब आ रहे हैं। ऐसे समय में हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का महत्व भी बढ़ रहा है। साहित्य मनुष्य की भावनाओं, विचारों और संवेदनाओं को व्यक्त करने का सबसे अच्छा माध्यम है। हिंदी साहित्य में कहानी, कविता, नाटक, संस्मरण, निबंध और एकांकी जैसी अनेक विधाएँ हैं, जो लोगों को ज्ञान के साथ-साथ आनंद भी देती हैं।

आज का जीवन बहुत व्यस्त और तकनीक पर आधारित हो गया है। लोगों के बीच बातचीत, अपनापन और भावनात्मक संबंध पहले की तुलना में कम होते जा रहे हैं। ऐसे समय में हिंदी साहित्य लोगों को मानवीय

मूल्यों और संवेदनाओं से जोड़ने का काम करता है।

समकालीन समय में हिंदी भाषा अपनी संस्कृति, परंपरा और आध्यात्मिक विचारों के कारण पूरे विश्व में लोकप्रिय हो रही है। आज कई देश हिंदी भाषा और भारतीय ज्ञान को अपनी नई पीढ़ी तक पहुँचाना चाहते हैं। उनका मानना है कि भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक विचार समाज में शांति और अच्छे मूल्यों को बढ़ावा देते हैं। इसलिए दुनिया के कई विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा, व्याकरण और साहित्य पढ़ाया जाता है। भारत सरकार भी विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार और शिक्षण के लिए लगातार प्रयास कर रही है।

वैश्वीकरण के कारण भारत का व्यापार और आर्थिक महत्व बढ़ा है। इससे हिंदी भाषा का महत्व भी बढ़ा है। आज हिंदी केवल भारत की भाषा नहीं रही, बल्कि व्यापार, शिक्षा और रोजगार की भाषा भी बनती जा रही है। कई भारतीय शिक्षक विदेशों में हिंदी पढ़ा रहे हैं और हिंदी जानने वाले युवाओं के लिए विदेशों में भी रोजगार के अवसर बढ़ रहे हैं।

हिंदी आज कई देशों में बोली और समझी जाती है। फिजी, गुयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद और टोबैगो तथा संयुक्त अरब अमीरात जैसे देशों में हिंदी का विशेष महत्व है। अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, दक्षिण अफ्रीका, नेपाल, मॉरीशस, न्यूजीलैंड, सिंगापुर, यमन और युगांडा जैसे देशों में भी बड़ी संख्या में हिंदी भाषी लोग रहते हैं। वे आपस में हिंदी में बातचीत करते हैं और हिंदी का अध्ययन-अध्यापन भी करते हैं।

विश्व की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में हिंदी का प्रमुख स्थान है। करोड़ों लोग हिंदी बोलते और समझते हैं। इसलिए हिंदी को एक वैश्विक भाषा माना जाता है। आज आवश्यकता है कि हिंदी के विकास के लिए ठोस प्रयास किए जाएँ, ताकि इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर और अधिक पहचान मिल सके। इसके लिए हिंदी को अधिक से अधिक बढ़ावा देना होगा। साथ ही, संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के प्रयास भी जारी रखने होंगे। विदेशों में हिंदी पढ़ाने के लिए एक समान और व्यवस्थित पाठ्यक्रम तैयार करना भी आवश्यक है। इससे हिंदी शिक्षकों को सुविधा होगी और हिंदी का प्रचार-प्रसार और अधिक प्रभावी ढंग से हो सकेगा।

हिंदी के विकास की संभावनाएँ :

आज भारत में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले समाचार पत्रों में आधे से अधिक हिंदी के हैं। इससे पता चलता है कि पढ़े-लिखे लोग भी हिंदी का महत्व समझते हैं। हिंदी अब केवल भारत की भाषा नहीं रही, बल्कि दुनिया के कई देशों में भी बोली और समझी जाती है।

मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, खाड़ी देश, अफ्रीका, यूरोप, कनाडा और अमेरिका जैसे देशों में हिंदी के टीवी कार्यक्रम देखे जाते हैं। मॉरीशस में कई हिंदी चैनल चलते हैं। एफ.एम. रेडियो के बढ़ने से भी हिंदी सुनने वालों की संख्या बढ़ी है।

आज हिंदी इंटरनेट और नई तकनीक के साथ तेजी से आगे बढ़ रही है। ई-मेल, इंटरनेट, ई-बुक, सोशल मीडिया, एसएमएस और वेबसाइटों पर हिंदी का खूब उपयोग हो रहा है। अब हिंदी के समाचार पत्र और पत्रिकाएँ इंटरनेट पर दुनिया के किसी भी देश में आसानी से पढ़ी जा सकती हैं।

गूगल, माइक्रोसॉफ्ट, याहू, आईबीएम और ओरेकल जैसी बड़ी कंपनियाँ भी हिंदी का उपयोग बढ़ा रही हैं, क्योंकि हिंदी बोलने और समझने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है।

आज दुनिया के कई देशों में हिंदी की पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान और ऑस्ट्रिया जैसे देशों में भी हिंदी के लेखक और साहित्यकार हिंदी में लिख रहे हैं। विदेशी विद्वान भी हिंदी के शब्दकोश और अन्य पुस्तकों को तैयार करने में सहयोग दे रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि हिंदी का महत्व पूरे विश्व में लगातार बढ़ रहा है।

निष्कर्ष :

आज के समय में यह आवश्यक है कि हिंदी को केवल भारत में ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी उचित सम्मान मिले। इसके लिए हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ (यूएन) की सातवीं आधिकारिक भाषा बनाने के प्रयास किए जाने चाहिए। हिंदी विश्व के अनेक देशों में बोली और समझी जाती है, इसलिए इसे वैश्विक पहचान मिलनी चाहिए।

आज हिंदी रोजगार के क्षेत्र में भी नई संभावनाएँ प्रदान कर रही है। मीडिया, पत्रकारिता, अनुवाद, पर्यटन, विज्ञापन, फिल्म, डिजिटल कंटेंट और शिक्षा जैसे क्षेत्रों में हिंदी जानने वाले लोगों की माँग लगातार बढ़ रही है। सोशल मीडिया ने भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। फेसबुक, यूट्यूब, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप और अन्य डिजिटल माध्यमों पर हिंदी में बड़ी मात्रा में सामग्री तैयार और साझा की जा रही है, जिससे हिंदी की पहुँच विश्वभर में बढ़ रही है।

हिंदी का सम्मान तभी बढ़ेगा जब हम स्वयं अपनी भाषा का गर्व से प्रयोग करेंगे। यदि सरकार, शिक्षण संस्थान और समाज मिलकर योजनाबद्ध प्रयास करें, तो हिंदी विश्व की प्रमुख भाषाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना सकती है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. वैश्विक परिवेश में हिंदी की केंद्रीय भूमिका और उसका प्रभाव।

<https://rojgarsamachar.gov.in/news/MoreContentNew.aspx?n=Editorial&k=90379>

2. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा का महत्व

<https://www.allstudyjournal.com/archives/2025.v7.i7.C.1741>

३. हिंदी का वर्तमान स्वरूप एवं विकास की संभावना— <https://sahityapedia.com/post/185201/>
४. विश्वभाषा की ओर हिंदी के बढ़ते कदम
https://rajbhasha.gov.in/sites/default/files/lekh2nd_hin.pdf
५. वैश्वीकरण के युग में हिंदी की भूमिका—<https://dzarc.com/social/article/view/492>

मोबाईल नंबर. ९१५६०७३४४५

E-mail – vrushaliwadge@gmail.com



भीष्म साहनी के उपन्यासों में चित्रित पारिवारिक नारी

मोनिता रानी, शोधार्थी पीएच.डी.(हिंदी)

डॉ० शिबा, शोध निर्देशिका एवं सहायक आचार्य,

हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, पीलीबंगा हनुमानगढ़।

शोध सार :

हिंदी उपन्यास साहित्य में नारी जीवन, उसके पारिवारिक संबंध, मानसिक संघर्ष और सामाजिक स्थिति का चित्रण एवं पारिवारिक नारी का चित्रण बहुआयामी और यथार्थपरक है। उनके साहित्य में नारी केवल सहनशीलता और त्याग की प्रतीक नहीं है, बल्कि वह सामाजिक परिस्थितियों का सामना करने वाली सशक्त व्यक्तित्व के रूप में भी उभरती है। आधुनिक हिंदी उपन्यासों में नारी के बदलते स्वरूप, उसकी भूमिका और उसके संघर्षों को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। भीष्म साहनी के प्रमुख उपन्यासों 'झरोखे, कड़ियाँ, तमस तथा बसंती' में चित्रित पारिवारिक नारी के स्वरूप का अध्ययन किया गया है। इन उपन्यासों में नारी को केवल पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे एक संवेदनशील, संघर्षशील और परिस्थितियों से जूझने वाले व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

मूल शब्द :- पारिवारिक नारी, नारी चेतना, नारी संघर्ष, सामाजिक यथार्थ, पारिवारिक संबंध, स्त्री मनोविज्ञान, भीष्म साहनी।

प्रस्तावना :

भीष्म साहनी के उपन्यासों में पारिवारिक जीवन का गहन चित्रण मिलता है। विशेष रूप से उनके यहाँ नारी पात्रों का चित्रण अत्यंत सजीव और यथार्थपरक है। भारतीय समाज में नारी को सदैव परिवार की आधारशिला माना गया है। वह माँ, पत्नी, बहन और बेटी के रूप में परिवार के प्रत्येक सदस्य से गहरे भावनात्मक संबंध रखती है।

भीष्म साहनी ने अपने उपन्यासों में इसी पारिवारिक नारी के विविध रूपों को प्रस्तुत किया है। झरोखे की लक्ष्मी, देवकी, विद्या और विमला जैसे पात्र भारतीय पारिवारिक नारी के आदर्श रूप को प्रस्तुत करते हैं, जो त्याग, ममता और उत्तरदायित्व की भावना से परिवार को संभालती हैं। वहीं कड़ियाँ की प्रमिला जैसी नारी पारिवारिक संघर्ष, पति की उपेक्षा और सामाजिक दबावों के बीच अपने अस्तित्व को बचाने का प्रयास करती दिखाई देती है। तमस में लीजा, राजो और नत्थू की पत्नी जैसे पात्र सांप्रदायिक तनाव के समय मानवीय संवेदना और साहस का परिचय देते हैं। उनके उपन्यासों की स्त्रियाँ केवल पारंपरिक भूमिकाओं में बंधी हुई नहीं हैं, बल्कि वे

परिस्थितियों से जूझती हुई और अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक भी दिखाई देती हैं।

शोध उद्देश्य :

इस शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

1. भीष्म साहनी के उपन्यासों में पारिवारिक नारी के स्वरूप का अध्ययन करना।
2. झरोखे, कड़ियाँ, तमस और बसंती उपन्यासों में स्त्री पात्रों की भूमिका का विश्लेषण करना।
3. पारिवारिक जीवन में नारी के संघर्ष, त्याग और उत्तरदायित्व का अध्ययन करना।
4. नारी पात्रों के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का विश्लेषण करना।
5. भीष्म साहनी के साहित्य में नारी चेतना और नारी व्यक्तित्व के विकास को समझना।
6. पारिवारिक संबंधों में स्त्री की भूमिका और उसके महत्व को स्पष्ट करना।

‘झरोखे’ उपन्यास की लक्ष्मी—एक आदर्श पत्नी व गृहिणी लक्ष्मी न केवल एक आदर्श पत्नी है बल्कि एक आदर्श माँ भी है। केवल पिता जी ही नहीं वह अपने परिवार के हर सदस्य का पूरा ध्यान रखती है। “एक कुशल माँ व संरक्षिका झरोखे की लक्ष्मी मातृत्व से परिपूर्ण बच्चों के प्रति हर तरह से समर्पित माँ है। अपने बच्चों की वह एक कुशल संरक्षिका की भाँति देखभाल करती है।”¹ धार्मिक प्रवृत्ति से युक्त पूरी तरह आर्यसमाजी होने के कारण पिता जी को मन्दिर और गुरुद्वारे पर विश्वास नहीं है। जबकि माँ को वेद, मन्त्र, हवन, दान, पुण्य, मन्दिर, गुरुद्वारे, सत्संग, कीर्तन में अडिग विश्वास है।²

दृढ़ व्यक्तित्व माँ का व्यक्तित्व पिता जी की अपेक्षा अधिक दृढ़ होने के कारण वह विकट से विकट परिस्थितियों का पूर्ण आत्मविश्वास के साथ सामना करती है। उनके चरित्र की यह दृढ़ता पूरे परिवार के अस्तित्व का आधार थी किन्तु जब एक दिन तुलसी ने यह कहा कि “माताजी, क्या मैं सारी उम्र बर्तन ही मॉजता रहूँगा, तो माँ अवाक् रह गयी और उसी समय उन्होंने तुलसी का काम धन्धा छुड़वाकर पिता जी सिफारिश कर उसे औषधालय में वैद्य की नौकरी दिलवा दी।”³

उत्तरदायित्व का पूर्ण निर्वाह लक्ष्मी अपने पति व बेटे बेटियों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को बाखूबी अन्जाम देती है। गलतियों के लिये जहाँ वह अपने बच्चों को फटकारती है वहीं ममता के जल से उन्हें सिंचित कर उनका भविष्य सँवारती है। जब उसे लगता है कि “बेटियों का शिशुपन का छुटपुटा बहुत कुछ छन चुका है तो वह उसी बैसाख में पिता जी से बड़ी बहन की शादी कराने की जिद करने लगती है।”⁴

सीधी साधी भारतीय परिवेश वाली महिला बलदेव की माँ भारतीय नारी का एक सहज रूप प्रस्तुत करती है। पूरे दिन सुबह से बिस्तर पर जाने तक चूल्हा, चक्की, पति, बच्चे, नौकर और गृहस्थी के छोटे—मोटे कार्यों में उलझी रहती है। सबको हर तरह से खुश रखने की कोशिश करती है। लक्ष्मी में एक आदर्श भारतीय नारी के सभी गुण उसे श्रेष्ठ पात्र के रूप में चरितार्थ करते हैं।

देवकी :- देवकी तुलसी की पत्नी है। जो बहुत कम समय के लिये ही उपन्यास में आती हैं। दुनिया के प्रपंच से दूर देवकी अपने पति के प्रति पूर्ण समर्पित है। दोनों के बीच अगाध प्रेम है। उसके वेद नाम का बेटा और शान्ति नाम की लड़की है किन्तु दूसरे बच्चे को जन्म देते समय उसकी मृत्यु हो जाती है। वह एक पतिव्रता नारी थी। उसका हृदय उदार व निश्छल था। अपने पति के दुःख—सुख में समभागी देवकी वैद्य के घर दिन—रात उसे काम करता देख क्षुब्ध हो जाती थी। इस प्रकार हम सकते हैं कि वह भारतीय नारी की प्रतीक है तथा

सामान्य पात्र के रूप में उपन्यास में अपनी प्रासंगिकता दर्ज कराती है।

विद्या और विमला पात्र कथावाचक बालक की बहनें हैं जो पूरे उपन्यास में हर जगह दिखाई देती हैं। ये दोनों बहनें एक साथ एक सा चरित्र सामने उपस्थित होती हैं। बड़ी बहन विद्या और छोटी बहन विमला दोनों ही हँसोड़ स्वभाव की हैं। वे अपने माता-पिता की आज्ञाकारी और भाईयों से बहुत प्यार करती हैं। परिवार के सदस्यों के साथ वह भी हवन, सध्या और प्रार्थना करती हैं। घर के नियमों व प्रतिबन्धों का वह सिर झुकाकर पालन करती है। इसके साथ ही दोनों बहनें बहुत शरारती भी हैं। तुलसी उनको मसखरा सा लगता है।

विद्या अत्यन्त सहृदयता से युक्त हैं। इसी कारण वह घर के नौकर तुलसी से भी अपनों जैसा व्यवहार करती है। अतः चरित्र विश्लेषण की दृष्टि से उन्हें सामान्य पात्रों की कोटि में रखा जा सकता है।

‘कड़ियाँ’ उपन्यास में प्रमिला का चरित्र अत्यंत मार्मिक है। पति महेन्द्र की उपेक्षा और अत्याचार के बावजूद वह अपने परिवार और बेटे के प्रति समर्पित रहती है। उसका जीवन संघर्ष और पीड़ा से भरा हुआ है, फिर भी वह अंततः आत्मनिर्भर बनने का साहस जुटाती है। कड़ियाँ आदर्श पत्नी व माँ प्रमिला एक आदर्श पत्नी व माँ के रूप में महेन्द्र व पप्पू की पूरी देखभाल करती है। वह दिन भर घर के कामों में उलझी रहती है। प्रमिला की सादगी कभी-कभी महेन्द्र को भी छू जाती है। “पप्पू तो जैसे प्रमिला की जान था।”

पति के प्रति अगाध प्रेम अपने पति महेन्द्र द्वारा तरह-तरह की प्रताड़नाओं को भोग चुकी प्रमिला उसे किसी प्रकार के कष्ट में नहीं देख सकती थी। महेन्द्र जब उसे सुषमा से अपने रिश्ते की असलियत बताता है। तो वह उसे माफ कर देती है। किन्तु महेन्द्र को दूसरे दिन फिर सुषमा के यहाँ जाता देख वह उसके पीछे-पीछे सड़क तक गिड़गिड़ाती रहती है और उसके पैरों में पड़कर उसे रोकती है जो प्रमिला का अपने पति के प्रति अगाध प्रेम प्रदर्शित करता है।

धार्मिक प्रवृत्ति वाली महिला प्रमिला की माँ धार्मिक प्रवृत्ति से युक्त थी। जिसका प्रभाव प्रमिला पर पड़ा। अपने इस संस्कारिक गुण के कारण मुसीबत के समय भी वह ईश्वर पर अपनी आस्था और विश्वास को कमजोर नहीं पड़ने देती। अपने टूटे हुए आशियाने को फिर से बचाने के लिए वह दैवी कृपा का सहारा लेना चाहती है।

सामाजिक और नैतिक मर्यादाओं से युक्त गरीब व संस्कारिक घर की परवरिश प्रमिला को अपने सम्मान व नैतिक मर्यादा का हमेशा ध्यान रहता है। जबकि महेन्द्र पढ़ा लिखा अफसर होने के बावजूद इन सामाजिक मूल्यों के प्रति अचेत रहता है। प्रमिला सामाजिक व नैतिक बन्धनों से युक्त धार्मिक व संस्कारगत चरित्र है।

उदार और भावुक प्रमिला बहुत ही उदार, भावुक व संवेदनशील है। महेन्द्र के अत्याचारों से त्रस्त होने पर भी वह उससे कोई शिकवा नहीं करती है। घर से निकाल दिये जाने के बाद जब दुबारा दोनो पति-पत्नी अपनी जिन्दगी का आखिरी फैसला करने के लिये नाटे के घर पर मिलते हैं तो प्रमिला बच्चों की तरह सुबक पड़ता है। भावना के ज्वार के चलते उसे पुनः अपना विश्वास सौंप देती है। वह दुनिया के दाँव-पेचों से बिल्कुल अन्जान है।

पति के अत्याचारों से त्रस्त प्रमिला न तो महेन्द्र की तरह शांति है और न चालाक। महेन्द्र के इन शब्दों से कि मेरे ऑफिस में एक लड़की है, जिससे मैं बराबर मिलता रहा हूँ, ने प्रमिला की जिन्दगी में तूफान ला दिया। उसे संशकित बना दिया और यहीं से उसके घुटन की कहानी शुरू हुई। प्रमिला की पतिव्रतता व एकनिष्ठता महेन्द्र को दकियानूसी लगती है। महेन्द्र के उपेक्षित व्यवहार से प्रमिला अस्वस्थ सी रहने लगी। उसके पुत्र पप्पू

को उससे छीन लेना उसके लिये सबसे अधिक कष्टकारी था। महेन्द्र तथा उसकी चाची ने मिलकर उसे जबरदस्ती घर से बाहर निकाल दिया। एक के बाद एक महेन्द्र के धोखे के शिकार प्रमिला अन्ततः अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है।⁶

भारतीय नारी का प्रतीक प्रमिला जो बात-बात पर महेन्द्र का मुँह ताकती थी। अब अपने भविष्य के प्रति सचेत हो जीवन के प्रति आशावान हो जाती है और हर स्थिति का डटकर सामना करती हुई वह अपने पति के आगे हाथ फैलाने के बजाय स्वयं अपने पुरुषार्थ के बल पर आर्थिक निर्भरता को प्राप्त करती है।⁷

सतवन्त प्रमिला की सहेली है और उसके हर सुख-दुख में उसका साथ देती है। वह अपने घर परिवार से बहुत खुश है। वह वही काम करती है जो उसके पति को अच्छा लगता है। सतवन्त हिम्मती व दृढ़ निश्चयी महिला है। अत्याचार के प्रति उसमें आक्रोश है। महेन्द्र द्वारा प्रमिला को चाटे मारने वाली बात सुनकर सतवन्त बुरी तरह भड़क जाती है।⁸

प्रमिला के दुख के दिनों में सतवन्त ही उसकी एक मात्र सहारा थी। जो उसे सही राय देती है। प्रमिला के घर से निकाल दिये जाने पर उसके प्रति अपने पति का उदासीन रवैया देख वह सरदार जी से खूब लड़ती है और अकेले ही महेन्द्र के अफसर वर्मा जी के पास जाकर सारी असलियत बयान कर आती है किन्तु वर्मा जी स्वयं सुषमा पर फिदा थे। प्रमिला के पागलपन के दिनों में केवल सतवन्त ही उसको अस्पताल देखने जाया करती थी। सच्चे मित्र का फर्ज निभाते हुए वह उसके हक के लिये लड़ती है। प्रमिला को खुश देख उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। वह उदार, नैतिक व मानवीय मूल्यों में आस्था रखने वाली महिला है। इस प्रकार श्रेष्ठ पात्र के गुणों से युक्त सतवन्त उपन्यास में अपने चरित्र को बाखूबी अन्जाम देती है।

‘तमस’ उपन्यास में राजो जैसे पात्र मानवीय संवेदना के उच्च आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सांप्रदायिक हिंसा के वातावरण में भी वह इंसानियत का परिचय देते हुए शरणार्थियों को अपने घर में आश्रय देती है। लीजा संवेदनशील पात्र के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। इसी कारण वह अंत तक रिचर्ड के अमानवीय व पशुवत् व्यवहार को स्वीकार नहीं कर पाती। भारतीय रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान, संस्कार सभी उसके लिए जिज्ञासा का केन्द्र बने रहते हैं। भारतीयों के प्रति लीजा का अल्पज्ञान कहीं-कहीं हास्यास्पद रूप ले लेता है। ऐसे स्थानों पर उत्पन्न रोचक प्रसंग बहुत लुभावने लगते हैं। लीजा रिचर्ड के प्रति अगाध प्रेम रखती है किन्तु उसकी हिंसात्मक, साम्प्रदायिक रणनीति को स्वीकार नहीं करती। वह मानवीय मूल्यों के प्रति सचेत है।⁹ इंग्लैण्ड जैसी स्वच्छन्दता ने होने के कारण लीजा को भारत का माहौल अच्छा नहीं लगता। सारा दिन अपनी बोरियत को दूर करने के लिये वह शराब में डूबी रहती है। एक प्रशासक की पत्नी होने पर भी वह सहृदयता से अपने पति को लेकर हमेशा चिन्तित रहती है किन्तु उसके दुष्कर्मों से कभी खुश नहीं रहती। चारित्रिक दोष की अपेक्षा उसके गुणों की अधिकता लीजा को सामान्य पात्रों की कोटि में लाकर खड़ा करती है।

राजो-राजो थोड़े समय के लिये ही उपन्यास में आती है। किन्तु अपने उदात्त चरित्र से अपना स्थान सर्वोपरि बना लेती है। एक साधारण ग्रामीण गृहणी के रूप में वह सामने आती है। उसका हृदय काफी उदार है। अपनी इसी उदारता के कारण वह हरनाम सिंह और बन्तो को फिसाद के आतंक भरे माहौल में अपने घर में पनाह देती है। यह जानते हुए कि यह काफिर है और उसका लड़का उन्हें किसी भी कीमत पर स्वीकार नहीं करेगा, उनके साथ सद्व्यवहार करती है। वह अतिथि भाव से युक्त होने के साथ ही ऊँच-नीच, भेदभाव, छुआ

छूत को भी नहीं मानती है। राजो सहृदयता और इंसानी रिश्तों की तहजीब समझती है। इसी कारण हरनाम और बन्तो को शरण देती है। शरणार्थियों को शरण देने से रोकने पर वह अपनी बहू अकरो का विरोध करती हैं उसमें एक रौबीले सास के भी सारे गुण मौजूद हैं। वह मेहनती और ईमानदार भी है। उसका लड़का रमजाना जब शरणार्थियों को मारने के लिये चलता है तो वह उसका डटकर निडरता से सामना करती है। वह इंसानी संवेदनाओं व भावुकता से युक्त है।' इस प्रकार उसमें दया, करुणा, त्याग, तहजीब, ईमानदारी, उदात्त, संवेदना, नेकबन्दी ये सारे ही गुण देखने को मिलते हैं। भारतीय परम्परा व संस्कृति की गरिमा से युक्त वह उपन्यास का एक श्रेष्ठ पात्र है।

अँकरा :- अँकरा राजो की बहू तथा रमजान की पत्नी है। रमजान और अँकरा का चरित्र एक-दूसरे के पूरक है। वह एक कट्टर मुस्लिम औरत है साथ ही वह दिमाग की भी तेज है। अकरा के व्यक्तित्व में तब लालचीपन दृष्टिगत होता है जब वह लूट के माल में केवल एक ट्रंक देखकर उदास हो जाती है। इस प्रकार वह मानवीय संवेदना से हीन संकीर्ण मानसिकता वाली औरत है। तभी अपनी सास के मना करने पर भी वह रमजाना को शरणार्थियों के घर में पनाह लेने की असलियत बताकर घर में बावाल खड़ा कर देती है। अतः उसके चरित्र को देखते हुए हम उसे निकृष्ट पात्रों की श्रृंखला में रखेंगे।

नत्थू की पत्नी - नत्थू की पत्नी एक सीधी-साधी विशुद्ध भारतीय महिला है। नत्थू से अगाध प्रेम करती है। नत्थू उससे अपने दिल की कोई भी बात नहीं छुपाता। उसका चरित्र साफ और स्वच्छन्द है। अपने पति के प्रति पूर्ण समर्पित व उसके हित व शुभ की कामना करने वाली है।' भीष्म साहनी के उपन्यासों में पारिवारिक नारी का चित्रण केवल पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह नारी के व्यक्तित्व, उसकी संवेदनाओं और उसके संघर्षों को व्यापक सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत करता है। उनके साहित्य के माध्यम से नारी जीवन की वास्तविकता और उसके महत्व को समझने का एक महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त होता है। इसी प्रकार नत्थू की पत्नी एक सरल और समर्पित भारतीय नारी का चित्र प्रस्तुत करती है। इस प्रकार भीष्म साहनी के उपन्यासों में पारिवारिक नारी का चित्रण समाज की वास्तविक परिस्थितियों को उजागर करता है।

शोध निष्कर्ष :

अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भीष्म साहनी के उपन्यासों में पारिवारिक नारी का चित्रण अत्यंत यथार्थपरक और बहुआयामी है। उनके यहाँ नारी केवल परंपरागत भूमिकाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि वह संवेदनशील, साहसी और संघर्षशील व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है। झरोखे की लक्ष्मी भारतीय नारी के आदर्श रूप को प्रस्तुत करती है। वह एक आदर्श पत्नी, माँ और गृहिणी है, जो अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य का ध्यान रखती है। उसके व्यक्तित्व की दृढ़ता पूरे परिवार के लिए प्रेरणा का स्रोत बनती है। कड़ियाँ की प्रमिला नारी जीवन के संघर्ष और पीड़ा का प्रतीक है। पति की उपेक्षा और सामाजिक परिस्थितियों के बावजूद वह अपने अस्तित्व को बचाने का प्रयास करती है। उसका चरित्र यह दर्शाता है कि नारी केवल सहनशील नहीं, बल्कि परिस्थितियों का सामना करने वाली भी होती है। तमस में राजो जैसे पात्र मानवीय संवेदनाओं और इंसानियत के उच्च आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सांप्रदायिक हिंसा के समय भी वह मानवीय मूल्यों को सर्वोपरि मानती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी के उपन्यासों में नारी का चित्रण केवल पारिवारिक भूमिका तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक और मानवीय मूल्यों की प्रतिनिधि के रूप में भी सामने आती है। उनके

साहित्य के माध्यम से नारी जीवन की वास्तविकता, उसकी पीड़ा, संघर्ष और महत्व को समझने का अवसर प्राप्त होता है।

संदर्भ सूची :

1. भीष्म साहनी, 'झरोखे', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1991, पृ.-5
2. भीष्म साहनी, 'झरोखे', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1991, पृ.-46
3. भीष्म साहनी, 'झरोखे', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1991, पृ.-60
4. भीष्म साहनी, 'झरोखे', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1991, पृ.-79-82
5. भीष्म साहनी, 'कड़ियाँ', राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, प्र.सं. 1989, पृ.-220
6. भीष्म साहनी, 'कड़ियाँ', राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, प्र.सं. 1989, पृ.-37
7. भीष्म साहनी, 'कड़ियाँ', राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, प्र.सं. 1989, पृ.-115
8. भीष्म साहनी, 'कड़ियाँ', राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, प्र.सं. 1989, पृ.-43
9. भीष्म साहनी, 'तमस', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2008, पृ.-189

दक्षिण एशिया में शांति, सुरक्षा और विकास के लिए SAARC की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ कुलदीप सिंह

असि. प्रोफे., रक्षा एवं रणनीतिक अध्ययन विभाग,
बाबा बरुआ दास पी. जी. कॉलेज परुड्या आश्रम अम्बेडकरनगर।

सारांश (Abstract) :

दक्षिण एशिया विश्व का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जो अपनी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक समानताओं के साथ-साथ राजनीतिक, आर्थिक और सुरक्षा संबंधी चुनौतियों के लिए भी जाना जाता है। इस क्षेत्र में गरीबी, विकास की असमानता, सीमा विवाद, आतंकवाद, राजनीतिक तनाव और आपसी अविश्वास जैसी समस्याएँ क्षेत्रीय शांति और सहयोग के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती रही हैं। इन्हीं समस्याओं के समाधान और क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से वर्ष 1985 में दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (South Asian Association for Regional Cooperation - SAARC) की स्थापना की गई। इस शोध पत्र में दक्षिण एशिया में शांति, सुरक्षा और विकास को बढ़ावा देने में SAARC की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। SAARC का मुख्य उद्देश्य सदस्य देशों के बीच आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी सहयोग को बढ़ावा देना तथा क्षेत्रीय विकास को गति प्रदान करना है। इसके सदस्य देशों में भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, मालदीव और अफगानिस्तान शामिल हैं। संगठन ने शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, गरीबी उन्मूलन, संस्कृति और आर्थिक सहयोग जैसे क्षेत्रों में कई महत्वपूर्ण पहल की हैं। इस शोध में SAARC की स्थापना, उद्देश्यों, उपलब्धियों और चुनौतियों का अध्ययन करते हुए यह समझने का प्रयास किया गया है कि यह संगठन दक्षिण एशिया के विकास में किस प्रकार योगदान दे रहा है। दक्षिण एशिया में शांति और सुरक्षा स्थापित करना SAARC के प्रमुख उद्देश्यों में से एक रहा है। संगठन ने सदस्य देशों के बीच संवाद और सहयोग के लिए एक साझा मंच प्रदान किया है। SAARC दक्षिण एशिया को एक शांतिपूर्ण, सुरक्षित और विकसित क्षेत्र बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

1. SAARC की स्थापना और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

दक्षिण एशिया विश्व का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जो अपनी भौगोलिक स्थिति, सांस्कृतिक विविधता और ऐतिहासिक संबंधों के कारण विशेष महत्व रखता है। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, मालदीव और अफगानिस्तान जैसे देश इस क्षेत्र का हिस्सा हैं। इन देशों के बीच ऐतिहासिक और सांस्कृतिक समानताएँ होने के बावजूद राजनीतिक विवाद, आर्थिक असमानता, सुरक्षा चुनौतियाँ और आपसी अविश्वास जैसी समस्याएँ लंबे समय से मौजूद रही हैं। इन समस्याओं के समाधान तथा क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (South Asian Association for Regional Cooperation - SAARC) की स्थापना की गई। SAARC की स्थापना का विचार पहली बार 1980 के दशक में सामने आया। बांग्लादेश के तत्कालीन राष्ट्रपति जियाउर रहमान ने दक्षिण एशियाई देशों के बीच क्षेत्रीय सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया। उनका मानना था कि दक्षिण एशिया के देशों को अपनी साझा

समस्याओं जैसे गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा और आर्थिक पिछड़ेपन का समाधान मिलकर करना चाहिए। इसके लिए एक ऐसे क्षेत्रीय संगठन की आवश्यकता थी जो सदस्य देशों के बीच सहयोग, विश्वास और विकास को बढ़ावा दे सके। बांग्लादेश की पहल के बाद दक्षिण एशियाई देशों के बीच कई स्तरों पर बातचीत शुरू हुई। वर्ष 1981 में कोलंबो में आयोजित विदेश सचिवों की बैठक में क्षेत्रीय सहयोग के विचार पर चर्चा की गई। इसके बाद वर्ष 1983 में नई दिल्ली में आयोजित विदेश मंत्रियों की बैठक में दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग के लिए एक कार्य योजना (Integrated Programme of Action) प्रस्तुत की गई। इस योजना का उद्देश्य कृषि, ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य, विज्ञान, तकनीक, संस्कृति और शिक्षा जैसे क्षेत्रों में सहयोग को बढ़ावा देना था। SAARC की औपचारिक स्थापना 8 दिसंबर 1985 को बांग्लादेश की राजधानी ढाका में आयोजित प्रथम शिखर सम्मेलन के दौरान हुई। इस सम्मेलन में SAARC के चार्टर को स्वीकार किया गया और संगठन की स्थापना की गई। प्रारंभ में इसके सात सदस्य देश थे—भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका और मालदीव। बाद में वर्ष 2007 में अफगानिस्तान को इसका आठवाँ सदस्य बनाया गया। SAARC का मुख्यालय नेपाल की राजधानी काठमांडू में स्थित है। SAARC के चार्टर में संगठन के प्रमुख उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है। इनमें दक्षिण एशियाई देशों के आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देना, क्षेत्रीय शांति और स्थिरता को मजबूत करना, सदस्य देशों के बीच आपसी विश्वास और सहयोग बढ़ाना तथा अंतरराष्ट्रीय मंचों पर साझा हितों को आगे बढ़ाना शामिल है। SAARC का उद्देश्य किसी भी द्विपक्षीय विवाद में हस्तक्षेप करना नहीं है, बल्कि आपसी सहयोग के माध्यम से क्षेत्रीय विकास को प्रोत्साहित करना है। SAARC की स्थापना ऐसे समय में हुई जब विश्व राजनीति में शीत युद्ध का प्रभाव मौजूद था। दक्षिण एशिया के देश विकास संबंधी चुनौतियों का सामना कर रहे थे और उन्हें आर्थिक सहयोग की आवश्यकता थी। क्षेत्रीय सहयोग के माध्यम से सदस्य देश अपने संसाधनों का बेहतर उपयोग कर सकते थे और विकास की गति को तेज कर सकते थे। इस दृष्टिकोण से SAARC को दक्षिण एशिया के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्रीय मंच माना गया। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो SAARC केवल एक राजनीतिक संगठन नहीं है, बल्कि यह दक्षिण एशियाई देशों के साझा विकास और सहयोग की अवधारणा का प्रतीक है। इसकी स्थापना ने यह संदेश दिया कि क्षेत्रीय समस्याओं का समाधान आपसी सहयोग और संवाद के माध्यम से किया जा सकता है। यद्यपि संगठन अपनी अपेक्षित क्षमता तक नहीं पहुँच पाया है, फिर भी यह दक्षिण एशिया में शांति, सुरक्षा और विकास के लिए एक महत्वपूर्ण मंच बना हुआ है। कहा जा सकता है कि SAARC की स्थापना दक्षिण एशियाई देशों के बीच सहयोग की आवश्यकता का परिणाम थी। इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्षेत्रीय एकता, आर्थिक विकास और शांति स्थापना के प्रयासों से जुड़ी हुई है। भविष्य में यदि सदस्य देश राजनीतिक मतभेदों को कम करके सहयोग की भावना को मजबूत करते हैं, तो SAARC दक्षिण एशिया के विकास और स्थिरता में अधिक प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

2. SAARC के उद्देश्य और सिद्धांत :

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (South Asian Association for Regional Cooperation - SAARC) की स्थापना 8 दिसंबर 1985 को ढाका, बांग्लादेश में की गई थी। इसका मुख्य उद्देश्य दक्षिण एशिया के देशों के बीच सहयोग, विश्वास और विकास को बढ़ावा देना था। SAARC की स्थापना इस विचार पर आधारित थी कि क्षेत्र की समस्याओं का समाधान आपसी सहयोग और सामूहिक प्रयासों के माध्यम से किया जा सकता है। दक्षिण एशियाई देशों में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक समानताएँ होने के बावजूद गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, राजनीतिक तनाव और सुरक्षा संबंधी चुनौतियाँ मौजूद थीं। इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए SAARC ने अपने उद्देश्य और सिद्धांत निर्धारित किए। SAARC का प्रमुख उद्देश्य सदस्य देशों के आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देना है। दक्षिण एशिया विश्व के सबसे अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में से एक है, जहाँ विकास की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं, लेकिन गरीबी और पिछड़ापन बड़ी चुनौतियाँ हैं। SAARC का प्रयास है कि सदस्य देश आपसी सहयोग के माध्यम से आर्थिक विकास

को गति दें और लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाएँ। इसके लिए कृषि, उद्योग, व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, विज्ञान और तकनीक जैसे क्षेत्रों में सहयोग को बढ़ावा दिया जाता है। SAARC का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य दक्षिण एशिया में शांति और स्थिरता स्थापित करना है। क्षेत्र में मौजूद राजनीतिक विवादों और सुरक्षा चुनौतियों के कारण विकास प्रक्रिया प्रभावित होती रही है। SAARC सदस्य देशों के बीच संवाद, सहयोग और विश्वास निर्माण के माध्यम से शांतिपूर्ण वातावरण बनाने का प्रयास करता है। संगठन यह मानता है कि क्षेत्रीय शांति के बिना आर्थिक और सामाजिक विकास संभव नहीं है। SAARC का उद्देश्य सदस्य देशों के बीच आपसी सहयोग और समझ को बढ़ाना भी है। संगठन शिक्षा, संस्कृति, विज्ञान, तकनीक, पर्यावरण और सामाजिक विकास जैसे क्षेत्रों में सहयोग को प्रोत्साहित करता है। इसके माध्यम से सदस्य देशों के बीच संबंधों को मजबूत करने और साझा समस्याओं के समाधान के लिए सामूहिक प्रयास किए जाते हैं। गरीबी उन्मूलन और सामाजिक विकास भी SAARC के प्रमुख उद्देश्यों में शामिल हैं। संगठन का मानना है कि विकास का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचना चाहिए। इसके लिए गरीबी कम करने, रोजगार के अवसर बढ़ाने और मानव संसाधन विकास को प्रोत्साहित करने के प्रयास किए जाते हैं। SAARC ने सामाजिक विकास, ग्रामीण विकास और कमजोर वर्गों के उत्थान से संबंधित कई योजनाओं को बढ़ावा दिया है।

शांतिपूर्ण सहयोग SAARC का एक प्रमुख सिद्धांत है। संगठन का विश्वास है कि देशों के बीच किसी भी प्रकार के विवाद को बातचीत और कूटनीतिक माध्यमों से हल किया जाना चाहिए। युद्ध और संघर्ष विकास की प्रक्रिया को कमजोर करते हैं, इसलिए SAARC शांतिपूर्ण संबंधों को महत्व देता है। SAARC संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिद्धांतों का भी समर्थन करता है। यह अंतरराष्ट्रीय शांति, समानता, सहयोग और कानून के सम्मान को महत्व देता है। संगठन का उद्देश्य क्षेत्रीय सहयोग के माध्यम से वैश्विक शांति और स्थिरता में योगदान देना है। SAARC के उद्देश्य और सिद्धांत दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की मजबूत नींव प्रदान करते हैं। हालांकि भारत-पाकिस्तान संबंधों में तनाव, राजनीतिक मतभेद और आपसी विश्वास की कमी जैसी समस्याओं के कारण संगठन को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, फिर भी SAARC दक्षिण एशिया में शांति, सुरक्षा और विकास के लिए एक महत्वपूर्ण मंच बना हुआ है। कहा जा सकता है कि SAARC के उद्देश्य और सिद्धांत केवल आर्थिक सहयोग तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे शांति, सुरक्षा, सामाजिक विकास और क्षेत्रीय एकता की व्यापक अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं। यदि सदस्य देश आपसी विश्वास और सहयोग की भावना के साथ कार्य करें, तो SAARC दक्षिण एशिया को अधिक शांतिपूर्ण, सुरक्षित और विकसित क्षेत्र बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

3. क्षेत्रीय सुरक्षा में SAARC का योगदान :

दक्षिण एशिया विश्व का एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक समानताओं के साथ-साथ अनेक सुरक्षा चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। आतंकवाद, सीमा विवाद, राजनीतिक अस्थिरता, उग्रवाद, मानव तस्करी, मादक पदार्थों की तस्करी और प्राकृतिक आपदाएँ जैसी समस्याएँ क्षेत्रीय शांति और स्थिरता के लिए बड़ी चुनौतियाँ रही हैं। इन समस्याओं के समाधान और क्षेत्रीय सुरक्षा को मजबूत करने के उद्देश्य से दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) की स्थापना वर्ष 1985 में की गई थी। SAARC का उद्देश्य केवल आर्थिक और सामाजिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह दक्षिण एशिया में शांति, स्थिरता और सुरक्षा को बढ़ावा देने का भी प्रयास करता है। क्षेत्रीय सुरक्षा की अवधारणा केवल सैन्य सुरक्षा तक सीमित नहीं होती, बल्कि इसमें राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक सुरक्षा, सामाजिक विकास, पर्यावरणीय सुरक्षा और मानव सुरक्षा भी शामिल होती है। SAARC ने इसी व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर क्षेत्रीय सुरक्षा को मजबूत करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग को बढ़ावा दिया है। संगठन का मानना है कि दक्षिण एशिया में स्थायी शांति तभी संभव है जब सदस्य देशों के बीच विश्वास, सहयोग और संवाद स्थापित हो। SAARC का सबसे महत्वपूर्ण योगदान सदस्य

देशों के बीच संवाद के लिए एक साझा मंच उपलब्ध कराना है। दक्षिण एशिया के देशों के बीच कई राजनीतिक और सुरक्षा संबंधी मतभेद रहे हैं, विशेष रूप से भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव ने क्षेत्रीय स्थिरता को प्रभावित किया है। इसके बावजूद SAARC ने सदस्य देशों को एक ऐसा मंच प्रदान किया जहाँ वे साझा समस्याओं पर चर्चा कर सकते हैं और सहयोग के रास्ते खोज सकते हैं। नियमित शिखर सम्मेलनों और मंत्रिस्तरीय बैठकों के माध्यम से देशों के बीच संपर्क बनाए रखने का प्रयास किया गया है। आतंकवाद के क्षेत्र में SAARC की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। दक्षिण एशिया लंबे समय से आतंकवाद और उग्रवाद जैसी समस्याओं का सामना करता रहा है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए SAARC ने आतंकवाद विरोधी सहयोग को बढ़ावा दिया। वर्ष 1987 में SAARC क्षेत्रीय आतंकवाद विरोधी सम्मेलन के माध्यम से आतंकवाद के खिलाफ संयुक्त प्रयासों की शुरुआत की गई। बाद में आतंकवाद के वित्तपोषण और संगठित अपराधों से निपटने के लिए भी सहयोग बढ़ाने के प्रयास किए गए। हालांकि सदस्य देशों के बीच राजनीतिक मतभेदों के कारण इन प्रयासों की प्रभावशीलता सीमित रही है। SAARC ने सीमा पार अपराधों को रोकने के लिए भी सहयोग को बढ़ावा दिया है। मानव तस्करी, मादक पदार्थों की तस्करी, हथियारों की अवैध आपूर्ति और संगठित अपराध जैसी समस्याएँ क्षेत्रीय सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौती हैं। इन समस्याओं से निपटने के लिए सदस्य देशों के बीच सूचना साझा करने और कानून प्रवर्तन एजेंसियों के सहयोग को प्रोत्साहित किया गया है। प्राकृतिक आपदाओं और मानवीय संकटों के समय भी SAARC ने सुरक्षा के मानवीय पक्ष को महत्व दिया है। दक्षिण एशिया भूकंप, बाढ़, चक्रवात और अन्य प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित क्षेत्र है। SAARC ने आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने के लिए SAARC Disaster Management Centre की स्थापना की। इसका उद्देश्य सदस्य देशों के बीच आपदा से निपटने की क्षमता को मजबूत करना, अनुभवों का आदान-प्रदान करना और आपातकालीन सहयोग को बढ़ावा देना था। आर्थिक सुरक्षा भी क्षेत्रीय सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। SAARC का मानना है कि आर्थिक विकास और स्थिरता से क्षेत्र में शांति को बढ़ावा दिया जा सकता है। व्यापार, निवेश और आर्थिक सहयोग के माध्यम से सदस्य देशों के बीच आपसी निर्भरता बढ़ाई जा सकती है, जिससे संघर्ष की संभावनाएँ कम हो सकती हैं। दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र (SAFTA) इसी उद्देश्य की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। SAARC ने स्वास्थ्य सुरक्षा के क्षेत्र में भी योगदान दिया है। विशेष रूप से महामारी और स्वास्थ्य संकट के समय क्षेत्रीय सहयोग की आवश्यकता बढ़ गई है। सदस्य देशों के बीच स्वास्थ्य संबंधी जानकारी, अनुभव और संसाधनों के आदान-प्रदान से क्षेत्रीय सुरक्षा को मजबूत करने का प्रयास किया गया है। कोविड-19 महामारी के दौरान भी SAARC देशों ने सहयोग की आवश्यकता को महसूस किया और साझा प्रयासों की दिशा में कदम उठाए। इस संगठन ने दक्षिण एशिया के देशों को एक साझा मंच प्रदान किया है जहाँ वे सुरक्षा, विकास और सहयोग से जुड़े मुद्दों पर विचार कर सकते हैं। SAARC ने यह स्थापित किया है कि क्षेत्रीय समस्याओं का समाधान केवल संघर्ष के माध्यम से नहीं बल्कि संवाद और सहयोग के माध्यम से किया जा सकता है। कहा जा सकता है कि क्षेत्रीय सुरक्षा में SAARC का योगदान बहुआयामी रहा है। संगठन ने आतंकवाद विरोधी सहयोग, आपदा प्रबंधन, आर्थिक सहयोग, स्वास्थ्य सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यद्यपि राजनीतिक विवादों के कारण इसकी प्रभावशीलता सीमित रही है, लेकिन भविष्य में यदि सदस्य देश आपसी विश्वास और सहयोग को मजबूत करते हैं, तो SAARC दक्षिण एशिया में शांति, सुरक्षा और स्थिरता स्थापित करने में और अधिक प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

4. आर्थिक विकास और सहयोग में SAARC की भूमिका :

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) की स्थापना का एक प्रमुख उद्देश्य सदस्य देशों के बीच आर्थिक सहयोग को बढ़ावा देना और क्षेत्रीय विकास को गति प्रदान करना है। दक्षिण एशिया विश्व के सबसे अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में से एक है, लेकिन लंबे समय तक यह क्षेत्र गरीबी, बेरोजगारी, कम औद्योगिक विकास और आर्थिक

असमानता जैसी समस्याओं से प्रभावित रहा है। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए SAARC ने आर्थिक सहयोग को अपनी प्राथमिकताओं में शामिल किया। संगठन का उद्देश्य सदस्य देशों के बीच व्यापार, निवेश, तकनीकी सहयोग और आर्थिक साझेदारी को बढ़ाकर क्षेत्रीय विकास को मजबूत करना है। SAARC ने आर्थिक सहयोग के लिए एक ऐसा मंच प्रदान किया है जहाँ सदस्य देश अपनी आर्थिक नीतियों, विकास योजनाओं और साझा समस्याओं पर विचार-विमर्श कर सकते हैं। संगठन यह मानता है कि दक्षिण एशियाई देशों के पास समान संसाधन, बाजार और विकास की संभावनाएँ मौजूद हैं। यदि ये देश आपसी सहयोग को बढ़ाते हैं, तो क्षेत्र आर्थिक रूप से अधिक मजबूत और आत्मनिर्भर बन सकता है। आर्थिक विकास के क्षेत्र में SAARC की सबसे महत्वपूर्ण पहल दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र (South Asian Free Trade Area - SAFTA) है। SAFTA की स्थापना वर्ष 2004 में हुई और इसका उद्देश्य सदस्य देशों के बीच व्यापारिक बाधाओं को कम करना तथा क्षेत्रीय व्यापार को बढ़ावा देना था। इसके माध्यम से सदस्य देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान को आसान बनाने का प्रयास किया गया। SAFTA ने दक्षिण एशिया में आर्थिक एकीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया, हालांकि राजनीतिक मतभेदों और व्यापारिक प्रतिबंधों के कारण इसकी पूरी क्षमता का उपयोग नहीं हो पाया। SAARC ने कृषि क्षेत्र में भी सहयोग को बढ़ावा दिया है। दक्षिण एशिया की बड़ी आबादी कृषि पर निर्भर है, इसलिए कृषि विकास क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। SAARC ने कृषि अनुसंधान, खाद्य सुरक्षा, कृषि तकनीक और अनुभवों के आदान-प्रदान को प्रोत्साहित किया है। सदस्य देशों के बीच कृषि संबंधी जानकारी और नई तकनीकों के साझा उपयोग से उत्पादन क्षमता बढ़ाने का प्रयास किया गया है।

गरीबी उन्मूलन SAARC के आर्थिक सहयोग का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। दक्षिण एशिया में बड़ी संख्या में लोग गरीबी और आर्थिक असमानता का सामना करते हैं। SAARC ने सामाजिक विकास और गरीबी कम करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया है। संगठन का मानना है कि केवल आर्थिक वृद्धि पर्याप्त नहीं है, बल्कि विकास का लाभ समाज के कमजोर वर्गों तक पहुँचना भी आवश्यक है। SAARC ने क्षेत्रीय पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रयास किए हैं। हालांकि आर्थिक विकास और सहयोग के क्षेत्र में SAARC की भूमिका महत्वपूर्ण रही है, लेकिन इसके सामने कई चुनौतियाँ भी हैं। सदस्य देशों के बीच राजनीतिक विवाद, विशेष रूप से भारत और पाकिस्तान के संबंधों में तनाव, आर्थिक सहयोग को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा कमजोर क्षेत्रीय व्यापार, आपसी विश्वास की कमी, सीमित परिवहन संपर्क और अलग-अलग आर्थिक नीतियाँ भी SAARC की प्रभावशीलता को कम करती हैं। दक्षिण एशिया के देशों के बीच व्यापार का स्तर अभी भी अपेक्षाकृत कम है, जबकि अन्य क्षेत्रीय संगठनों की तुलना में यहाँ आर्थिक सहयोग की संभावनाएँ अधिक हैं। यदि सदस्य देश राजनीतिक मतभेदों को कम करके आर्थिक हितों को प्राथमिकता दें, तो SAARC क्षेत्रीय आर्थिक विकास का एक मजबूत माध्यम बन सकता है। कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास और सहयोग में SAARC की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। संगठन ने व्यापार, कृषि, गरीबी उन्मूलन, तकनीकी विकास, निवेश और क्षेत्रीय संपर्क जैसे क्षेत्रों में सहयोग को बढ़ावा दिया है। यद्यपि राजनीतिक समस्याओं के कारण इसकी उपलब्धियाँ सीमित रही हैं, फिर भी SAARC के पास दक्षिण एशिया को आर्थिक रूप से मजबूत और विकसित क्षेत्र बनाने की क्षमता है। भविष्य में अधिक प्रभावी आर्थिक सहयोग, आपसी विश्वास और साझा प्रयासों के माध्यम से SAARC क्षेत्रीय विकास और समृद्धि का महत्वपूर्ण आधार बन सकता है।

5. SAARC की प्रमुख चुनौतियाँ और सीमाएँ :

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) की स्थापना वर्ष 1985 में दक्षिण एशियाई देशों के बीच सहयोग, शांति और विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से की गई थी। संगठन का उद्देश्य सदस्य देशों के बीच आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी सहयोग को मजबूत करना था। हालांकि SAARC ने कई क्षेत्रों में सहयोग की

शुरुआत की है, लेकिन इसकी कार्यक्षमता और प्रभावशीलता कई चुनौतियों और सीमाओं के कारण प्रभावित हुई है। राजनीतिक मतभेद, सुरक्षा समस्याएँ, आर्थिक असमानता और आपसी विश्वास की कमी SAARC के विकास में प्रमुख बाधाएँ रही हैं। SAARC की सबसे बड़ी चुनौती सदस्य देशों के बीच राजनीतिक मतभेद हैं। विशेष रूप से भारत और पाकिस्तान के बीच लंबे समय से चले आ रहे तनाव ने संगठन की गतिविधियों को काफी प्रभावित किया है। दोनों देशों के बीच सीमा विवाद, आतंकवाद और अन्य राजनीतिक मुद्दों के कारण कई बार SAARC शिखर सम्मेलनों का आयोजन नहीं हो पाया। चूँकि भारत और पाकिस्तान दक्षिण एशिया के दो प्रमुख देश हैं, इसलिए इनके संबंधों का प्रभाव पूरे संगठन की कार्यप्रणाली पर पड़ता है। आतंकवाद और सुरक्षा संबंधी समस्याएँ भी SAARC के सामने एक बड़ी चुनौती हैं। दक्षिण एशिया लंबे समय से आतंकवाद, उग्रवाद और सीमा पार अपराधों जैसी समस्याओं का सामना करता रहा है। इन मुद्दों पर सदस्य देशों के अलग-अलग दृष्टिकोण और नीतियाँ होने के कारण प्रभावी क्षेत्रीय सहयोग स्थापित करना कठिन रहा है। सुरक्षा संबंधी मामलों में आपसी विश्वास की कमी SAARC की क्षमता को सीमित करती है। इन आर्थिक असमानताओं के कारण सभी देशों के हितों में संतुलन बनाना कठिन हो जाता है। इसके अलावा सदस्य देशों के बीच आपसी व्यापार का स्तर भी अपेक्षाकृत कम है, जिससे क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया धीमी रही है। क्षेत्रीय व्यापार में कमी SAARC की एक बड़ी सीमा है। दक्षिण एशियाई देशों के बीच व्यापार की संभावनाएँ बहुत अधिक हैं, लेकिन राजनीतिक समस्याओं, व्यापारिक प्रतिबंधों और कमजोर परिवहन व्यवस्था के कारण क्षेत्रीय व्यापार अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँच पाया है। दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र (SAFTA) जैसी पहलों के बावजूद व्यापारिक बाधाएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकी हैं। आपसी विश्वास की कमी भी SAARC की प्रभावशीलता को प्रभावित करती है। सदस्य देशों के बीच ऐतिहासिक विवाद और राजनीतिक अविश्वास के कारण कई बार सहयोग की प्रक्रिया बाधित होती है। क्षेत्रीय संगठन की सफलता के लिए सदस्य देशों के बीच विश्वास और सहयोग की भावना आवश्यक होती है, लेकिन दक्षिण एशिया में यह स्थिति अभी पूरी तरह विकसित नहीं हो पाई है। दक्षिण एशिया में विभिन्न वैश्विक शक्तियों के राजनीतिक और आर्थिक हित जुड़े हुए हैं। कई बार बाहरी प्रभाव क्षेत्रीय सहयोग की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। सदस्य देशों के बीच स्वतंत्र और संतुलित सहयोग की आवश्यकता है ताकि संगठन अपने मूल उद्देश्यों को प्रभावी रूप से पूरा कर सके। हालांकि SAARC ने शिक्षा, स्वास्थ्य, संस्कृति, कृषि और सामाजिक विकास जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं, लेकिन इसकी उपलब्धियाँ इसकी संभावनाओं की तुलना में सीमित रही हैं। संगठन को अधिक प्रभावी बनाने के लिए सदस्य देशों को राजनीतिक मतभेदों को कम करना होगा और साझा हितों को प्राथमिकता देनी होगी। कहा जा सकता है कि SAARC के सामने अनेक चुनौतियाँ और सीमाएँ मौजूद हैं, लेकिन इसके बावजूद यह दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग का एक महत्वपूर्ण मंच है। राजनीतिक विश्वास, आर्थिक सहयोग और मजबूत संस्थागत व्यवस्था के माध्यम से SAARC अपनी भूमिका को अधिक प्रभावी बना सकता है। यदि सदस्य देश सहयोग और संवाद की भावना के साथ आगे बढ़ते हैं, तो SAARC भविष्य में दक्षिण एशिया में शांति, सुरक्षा और विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

6. निष्कर्ष (Conclusion) :

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) दक्षिण एशिया में शांति, सुरक्षा, आर्थिक विकास और क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्थापित एक महत्वपूर्ण क्षेत्रीय संगठन है। इसकी स्थापना वर्ष 1985 में ढाका, बांग्लादेश में इस उद्देश्य के साथ की गई थी कि दक्षिण एशियाई देश अपनी साझा समस्याओं का समाधान आपसी सहयोग और संवाद के माध्यम से कर सकें। लेकिन संगठन ने आर्थिक सहयोग की संभावनाओं को विकसित किया है। SAARC की सफलता के बावजूद इसके सामने कई चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। भारत और पाकिस्तान के बीच राजनीतिक तनाव, सीमा विवाद, आतंकवाद, आपसी अविश्वास और सदस्य देशों के बीच आर्थिक असमानता ने संगठन की प्रभावशीलता को प्रभावित

किया है। कई बार राजनीतिक मतभेदों के कारण SAARC की बैठकें और योजनाएँ बाधित हुई हैं। इसके अलावा संगठन की निर्णय प्रक्रिया धीमी है और इसके पास अपने निर्णयों को लागू करने के लिए मजबूत संस्थागत व्यवस्था का अभाव है। SAARC की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि सदस्य देशों के बीच राजनीतिक सहयोग की कमी आर्थिक और सामाजिक सहयोग को भी प्रभावित करती है। क्षेत्रीय संगठनों की सफलता के लिए आपसी विश्वास और साझा दृष्टिकोण आवश्यक होता है। यदि सदस्य देश अपने राजनीतिक मतभेदों को कम करके विकास और सहयोग को प्राथमिकता देते हैं, तो SAARC अधिक प्रभावी भूमिका निभा सकता है। भविष्य की दृष्टि से SAARC के पास दक्षिण एशिया को एक शांतिपूर्ण, सुरक्षित और विकसित क्षेत्र बनाने की व्यापक क्षमता है। इसके लिए आवश्यक है कि सदस्य देश नियमित संवाद बनाए रखें, आर्थिक सहयोग को मजबूत करें, क्षेत्रीय संपर्क को बढ़ावा दें और आतंकवाद तथा अन्य सुरक्षा चुनौतियों से मिलकर मुकाबला करें। शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण और तकनीकी विकास जैसे क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाकर SAARC क्षेत्रीय विकास का एक मजबूत माध्यम बन सकता है। वर्तमान वैश्विक व्यवस्था में क्षेत्रीय सहयोग का महत्व लगातार बढ़ रहा है। विश्व के अन्य क्षेत्रों में यूरोपीय संघ, ASEAN जैसे संगठनों ने क्षेत्रीय सहयोग के माध्यम से विकास और स्थिरता प्राप्त की है। इसी प्रकार SAARC भी दक्षिण एशिया में सहयोग और विकास का प्रभावी साधन बन सकता है, यदि सदस्य देश संगठन की मूल भावना को मजबूत करें। कहा जा सकता है कि SAARC केवल एक क्षेत्रीय संगठन नहीं बल्कि दक्षिण एशियाई देशों के साझा भविष्य और सहयोग की एक महत्वपूर्ण संभावना है। यद्यपि इसकी उपलब्धियाँ अभी सीमित हैं, लेकिन इसके उद्देश्य और संभावनाएँ अत्यंत व्यापक हैं। शांति, सुरक्षा और विकास के लिए आपसी विश्वास, राजनीतिक इच्छाशक्ति और सहयोग की भावना आवश्यक है। यदि SAARC सदस्य देश इन मूल्यों को अपनाते हैं, तो यह संगठन आने वाले समय में दक्षिण एशिया की स्थिरता, समृद्धि और प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

संदर्भ सूची (References)

1. SAARC Secretariat, "SAARC Charter and Official Documents", Kathmandu, Nepal.
2. SAARC Secretariat, "SAARC Annual Reports", South Asian Association for Regional Cooperation, Kathmandu.
3. Government of India, Ministry of External Affairs, "India and SAARC: Regional Cooperation Documents", New Delhi.
4. Bimal Prasad, "The Making of India's Foreign Policy: The Indian National Congress and World Affairs", New Delhi.
5. S.D. Muni, "The Emerging Dimensions of SAARC", New Delhi: Konark Publishers.
6. Rajiv Sikri, "Challenge and Strategy: Rethinking India's Foreign Policy", Sage Publications, New Delhi.
7. Muchkund Dubey, "SAARC: Building Regional Cooperation in South Asia", New Delhi.
8. K.R. Gupta, "International Relations and SAARC", Atlantic Publishers, New Delhi.
9. P.R. Chari, "Security and Regional Cooperation in South Asia", New Delhi.
10. Ghosh, Peu, "International Relations", PHI Learning, New Delhi.
11. Mohammed Ayoob, "Regional Security in the Third World: Case Studies from South Asia", Westview Press.
12. Mahendra P. Lama, "Regional Cooperation in South Asia: Issues and Prospects", South Asian Publishers.
13. Imtiaz Hussain, "South Asian Regional Cooperation: Problems and Prospects", Islamabad.
14. Eric Gonsalves and Nancy Jetly, "The Dynamics of South Asia: Regional Cooperation and Conflict", New Delhi.
15. Bhabani Sen Gupta, "SAARC: Born of Hope, Doomed by Reality?", Asian Survey.

16. Stanley Kochanek, "South Asia and Regional Cooperation", Asian Studies Review.
17. A.P. Rana, "Regional Cooperation in South Asia", New Delhi.
18. Dipankar Banerjee, "Security and Cooperation in South Asia", New Delhi.
19. United Nations Development Programme (UNDP), "Human Development Reports", New York.
20. World Bank, "South Asia Development Reports", Washington D.C.
21. Asian Development Bank (ADB), "South Asian Economic Development Reports", Manila.
22. United Nations Economic and Social Commission for Asia and the Pacific (UNESCAP), "Regional Cooperation Reports".
23. Ministry of External Affairs, Government of India, Annual Reports on Foreign Policy.
24. B.S. Chimni, "International Law and South Asian Regional Cooperation".
25. Kanti Bajpai, "South Asia: Security and Regional Cooperation".
26. Sumit Ganguly, "Conflict Unending: India-Pakistan Tensions Since 1947", Columbia University Press.



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 29-38

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की ऋण उपलब्धता, ऋण उपयोग एवं पुनर्भुगतान व्यवहार

अर्चना सिन्हा, पूर्व छात्रा-वाणिज्य

भिलाई महिला महाविद्यालय, हॉस्पिटल सेक्टर, भिलाई, जिला-दुर्ग (छ.ग.)

डॉ. शारदा वर्मा, अतिथि प्राध्यापक-अर्थशास्त्र

चन्दुलाल चन्द्राकर शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, धमधा, जिला-दुर्ग (छ.ग.)

शोध सारांश :

प्रस्तुत अध्ययन "ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की ऋण उपलब्धता, ऋण उपयोग एवं पुनर्भुगतान व्यवहार" विषय पर आधारित है। अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों के लिए ऋण की उपलब्धता एवं पर्याप्तता, प्राप्त ऋण के उपयोग के विभिन्न क्षेत्रों तथा ऋण पुनर्भुगतान व्यवहार एवं उसे प्रभावित करने वाली प्रमुख परिस्थितियों का अध्ययन करना है। अध्ययन क्षेत्र के रूप में बेमेतरा जिले की थानखम्हरिया तहसील के ग्रामीण क्षेत्र का चयन किया गया है। अध्ययन वर्णनात्मक एवं अनुभवजन्य प्रकृति का है, जिसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़े चयनित 15 महिला स्वयं सहायता समूहों की ऋण प्राप्त करने वाली 150 महिला सदस्यों से संरचित प्रश्नावली एवं प्रत्यक्ष साक्षात्कार के माध्यम से संकलित किए गए हैं। द्वितीयक आँकड़े जिला सांख्यिकी पुस्तिका, सरकारी प्रकाशनों, पुस्तकों, शोध-पत्रों तथा संबंधित आधिकारिक स्रोतों से प्राप्त किए गए हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं को बचत एवं ऋण की सुविधा उपलब्ध कराने के साथ-साथ औपचारिक वित्तीय व्यवस्था से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्राप्त ऋण का उपयोग महिलाओं द्वारा घरेलू आवश्यकताओं, आवास सुधार, कृषि, पशुपालन, लघु व्यवसाय, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अन्य पारिवारिक आवश्यकताओं में किया जाता है। तथापि, अनेक महिला सदस्यों के लिए उपलब्ध ऋण उनकी वास्तविक आर्थिक आवश्यकता की तुलना में पर्याप्त नहीं है। ऋण की सीमित उपलब्धता के कारण आय-सृजनात्मक गतिविधियों के विस्तार में अपेक्षित वित्तीय सहायता प्राप्त नहीं हो पाती। अध्ययन में यह भी पाया गया कि ऋण पुनर्भुगतान की स्थिति को परिवार की सीमित आय, घरेलू व्यय, कृषि आय में अनिश्चितता, आकस्मिक स्वास्थ्य व्यय तथा अन्य पारिवारिक दायित्व प्रभावित करते हैं। अतः ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की ऋण व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने के लिए आवश्यकता-आधारित ऋण सीमा, सरल ऋण प्रक्रिया, लचीली पुनर्भुगतान व्यवस्था तथा आय-सृजनात्मक गतिविधियों के लिए वित्तीय एवं तकनीकी सहयोग को बढ़ावा देना आवश्यक है।

शब्दकुंजी : स्वयं सहायता समूह, ग्रामीण महिला, ऋण उपलब्धता, ऋण उपयोग, ऋण पुनर्भुगतान।

प्रस्तावना :

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता आर्थिक विकास और आजीविका की स्थिरता का महत्वपूर्ण आधार है। ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर महिलाओं के लिए औपचारिक वित्तीय संस्थाओं से पर्याप्त एवं समय पर ऋण प्राप्त करना लंबे समय से एक चुनौती रहा है। सीमित आय, बचत की कमी, संपार्श्विक की अनुपलब्धता तथा बैंकिंग प्रक्रियाओं की जटिलता के कारण अनेक ग्रामीण महिलाएँ अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनौपचारिक ऋण स्रोतों पर निर्भर रहती रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में स्वयं सहायता समूहों ने ग्रामीण महिलाओं को संगठित कर बचत, ऋण एवं सामूहिक आर्थिक गतिविधियों से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं के वित्तीय एवं सामाजिक संगठन का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरे हैं। समूह आधारित बचत व्यवस्था के माध्यम से सदस्यों में नियमित बचत की आदत विकसित होती है तथा आवश्यकता के समय समूह के माध्यम से ऋण प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध होती है। बैंकिंग संस्थाओं से जुड़ाव के पश्चात इन समूहों की ऋण क्षमता में भी वृद्धि हुई है। प्राप्त ऋण का उपयोग कृषि, पशुपालन, लघु व्यवसाय, घरेलू उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य पारिवारिक आवश्यकताओं में किया जाता है। इस प्रकार स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं को वित्तीय सेवाओं से जोड़ने तथा उनकी आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाने का महत्वपूर्ण माध्यम बन सकते हैं।

हालाँकि, स्वयं सहायता समूहों को ऋण उपलब्ध कराना अपने आप में उनकी सफलता का पर्याप्त संकेतक नहीं है। वास्तविक शोध—समस्या यह है कि ऋण उपलब्ध होने के बावजूद यह स्पष्ट नहीं होता कि ग्रामीण महिला सदस्यों को उनकी आवश्यकता के अनुरूप पर्याप्त ऋण प्राप्त हो रहा है या नहीं, प्राप्त ऋण का उपयोग किस प्रकार किया जा रहा है और वे ऋण का पुनर्भुगतान कितनी नियमितता से कर रही हैं। ऋण का उपयोग यदि उत्पादक एवं आय—सृजन गतिविधियों में किया जाता है, तो इससे परिवार की आय, रोजगार एवं आर्थिक स्थिरता में सकारात्मक परिवर्तन की संभावना रहती है। दूसरी ओर, यदि ऋण का उपयोग मुख्यतः उपभोग अथवा आकस्मिक घरेलू आवश्यकताओं में किया जाता है, तो उससे अपेक्षित आर्थिक लाभ प्राप्त न होने की संभावना रहती है। ऋण पुनर्भुगतान व्यवहार भी इस समस्या का महत्वपूर्ण पक्ष है। ऋण की समय पर वापसी न केवल महिला सदस्य की वित्तीय विश्वसनीयता को प्रभावित करती है, बल्कि स्वयं सहायता समूह की आंतरिक वित्तीय स्थिति और बैंकिंग संस्थाओं के साथ उसके संबंधों पर भी प्रभाव डाल सकती है। ग्रामीण महिलाओं की अनियमित या सीमित आय, व्यवसाय से अपेक्षित लाभ न मिलना, पारिवारिक आकस्मिक व्यय तथा अन्य आर्थिक दायित्व ऋण पुनर्भुगतान में बाधा उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए ऋण प्राप्ति, ऋण उपयोग और पुनर्भुगतान व्यवहार को अलग-अलग देखने के बजाय इनके बीच के संबंध को समझना आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन की प्रमुख शोध—समस्या इसी बिंदु पर केंद्रित है कि ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों में ऋण की उपलब्धता किस स्तर तक है, उपलब्ध ऋण का उपयोग किन उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है तथा ऋण पुनर्भुगतान का व्यवहार कैसा है। साथ ही यह जानना आवश्यक है कि ऋण की पर्याप्तता, उसके उपयोग का स्वरूप तथा सदस्यों की आर्थिक परिस्थितियाँ पुनर्भुगतान व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। इस समस्या का अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से उपलब्ध कराए जाने वाले

ऋण का उद्देश्य केवल वित्तीय सहायता प्रदान करना नहीं, बल्कि ग्रामीण महिलाओं को उत्पादक आर्थिक गतिविधियों से जोड़ना और उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करना भी है।

इन्हीं संदर्भों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन में थानखम्हरिया तहसील के ग्रामीण क्षेत्र की महिला स्वयं सहायता समूहों को अध्ययन की इकाई के रूप में लिया गया है। अध्ययन के माध्यम से ऋण उपलब्धता, ऋण उपयोग तथा पुनर्भुगतान व्यवहार की वास्तविक स्थिति का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। साथ ही यह समझने का प्रयास किया गया है कि ऋण का उपयोग किन प्रमुख क्षेत्रों में किया जा रहा है तथा पुनर्भुगतान में सदस्यों को किन प्रमुख कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार अध्ययन ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की ऋण व्यवस्था की व्यावहारिक स्थिति को समझने तथा उसकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने की दिशा में उपयोगी हो सकता है।

साहित्य समीक्षा :

स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं को बचत एवं ऋण सुविधाओं से जोड़ने का महत्वपूर्ण माध्यम हैं। **बत्रा (2012)** ने ग्रामीण हरियाणा में महिला स्वयं सहायता समूहों का अध्ययन करते हुए पाया कि सस्ती ऋण सुविधा समूहों से जुड़ने का प्रमुख कारण थी, जबकि प्राप्त ऋण का उपयोग उपभोग, स्वास्थ्य एवं सामाजिक आवश्यकताओं में भी किया गया तथा कुछ सदस्यों को समय पर ऋण चुकाने में कठिनाई हुई। **शर्मा (2016)** ने हिमाचल प्रदेश के स्वयं सहायता समूहों में ऋण उपयोग एवं पुनर्भुगतान का अध्ययन किया और पाया कि अधिकांश सदस्यों ने ऋण का उचित उपयोग किया तथा समय पर पुनर्भुगतान किया, जबकि कुछ सदस्यों के समक्ष ऋण अदायगी, बैंक नीतियों एवं समूहगत समस्याओं से संबंधित कठिनाइयाँ थीं। **मलईसामी (2021)** ने तमिलनाडु में महिला स्वयं सहायता समूहों की ऋण एवं पुनर्भुगतान क्षमता का अध्ययन करते हुए पाया कि 86.66 प्रतिशत SHG लाभार्थी नियमित रूप से ऋण का पुनर्भुगतान कर रहे थे तथा ऋणग्रस्तता, शिक्षा एवं समूह सदस्यता जैसी परिस्थितियाँ पुनर्भुगतान की स्थिति को प्रभावित करती थीं। राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्र में किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि शिक्षा, सामाजिक संपर्क, गतिशीलता तथा सक्षम संस्थागत सहयोग ऋण के उत्पादक उपयोग की संभावना को बढ़ाते हैं। **सिंह एवं गुप्ता (2022)** ने उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों के पुनर्भुगतान व्यवहार का अध्ययन करते हुए लगभग 55 प्रतिशत पुनर्भुगतान दर पाई तथा समूह की परिपक्वता और परिवार की आय को पुनर्भुगतान प्रदर्शन से संबंधित पाया। **मुदुली एवं शर्मा (2022)** ने भारत में ऋण पुनर्भुगतान का अध्ययन करते हुए पाया कि कम बचत एवं कम बकाया ऋण वाले समूहों में ऋण चूक की संभावना अधिक थी तथा क्षेत्रीय परिस्थितियाँ भी पुनर्भुगतान प्रदर्शन को प्रभावित करती हैं। हालिया अध्ययन में **मल्होत्रा (2026)** ने पश्चिम बंगाल की महिला SHG सदस्यों के अध्ययन में पाया कि समूह के भीतर सदस्य-निगरानी, नेतृत्व एवं तकनीकी पहुँच पुनर्भुगतान व्यवहार को मजबूत कर सकती है, जबकि अत्यधिक समूह दबाव से ऋण के दुरुपयोग की संभावना भी उत्पन्न हो सकती है।

इस प्रकार पूर्ववर्ती अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूहों में ऋण की उपलब्धता, उसके उपयोग तथा पुनर्भुगतान व्यवहार पर विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं समूहगत परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। तथापि, थानखम्हरिया तहसील के ग्रामीण क्षेत्र की महिला स्वयं सहायता समूह सदस्यों के संदर्भ में ऋण उपलब्धता, ऋण उपयोग एवं पुनर्भुगतान व्यवहार का समग्र अध्ययन सीमित दिखाई देता है, जिससे प्रस्तुत

अध्ययन की प्रासंगिकता स्पष्ट होती है।

उद्देश्य :

1. ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों के लिए ऋण उपलब्धता एवं ऋण की पर्याप्तता का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों द्वारा प्राप्त ऋण के उपयोग के विभिन्न क्षेत्रों का विश्लेषण करना।
3. ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों के ऋण पुनर्भुगतान व्यवहार तथा पुनर्भुगतान को प्रभावित करने वाली प्रमुख परिस्थितियों का अध्ययन करना।

परिकल्पना :

1. ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों को आवश्यकतानुसार पर्याप्त ऋण उपलब्ध नहीं हो पाता है।
2. ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों के ऋण पुनर्भुगतान में आर्थिक एवं पारिवारिक बाधाएँ आती हैं।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं अनुभवजन्य प्रकृति का है, जिसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का उपयोग किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के रूप में बेमेतरा जिले की थानखम्हरिया तहसील के ग्रामीण क्षेत्र का चयन किया गया तथा अध्ययन की इकाई ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं को माना गया। अध्ययन हेतु 15 महिला स्वयं सहायता समूहों का चयन कर प्रत्येक समूह से 10 सदस्यों को सम्मिलित करते हुए कुल 150 महिला सदस्यों से संरचित प्रश्नावली एवं प्रत्यक्ष साक्षात्कार के माध्यम से प्राथमिक आँकड़े संकलित किए गए। अध्ययन में ऋण उपलब्धता, ऋण की पर्याप्तता, ऋण उपयोग, पुनर्भुगतान व्यवहार तथा पुनर्भुगतान में आने वाली प्रमुख बाधाओं से संबंधित जानकारी प्राप्त की गई। द्वितीयक आँकड़े जिला सांख्यिकी पुस्तिका, बेमेतरा, 2023-24, सरकारी प्रकाशनों, पुस्तकों, शोध-पत्रों एवं संबंधित आधिकारिक स्रोतों से प्राप्त किए गए। संकलित आँकड़ों का वर्गीकरण एवं सारणीकरण कर आवृत्ति, प्रतिशत तथा आवश्यकतानुसार उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों द्वारा विश्लेषण एवं व्याख्या की गई।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय :

प्रस्तुत अध्ययन बेमेतरा जिले की थानखम्हरिया तहसील के ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाली ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों पर आधारित है। अध्ययन क्षेत्र की सामाजिक, जनसांख्यिकीय एवं आर्थिक स्थिति को समझने के लिए जिला सांख्यिकी पुस्तिका, बेमेतरा, 2023-24 में उपलब्ध आँकड़ों का उपयोग किया गया है। थानखम्हरिया तहसील का भौगोलिक क्षेत्रफल 273.93 वर्ग किलोमीटर है। तहसील में कुल 77 ग्राम तथा 44 ग्राम पंचायतें हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार तहसील की कुल जनसंख्या 78,192 है, जिसमें 38,881 पुरुष तथा 39,311 महिलाएँ हैं। तहसील का जनसंख्या घनत्व 286 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर तथा लिंगानुपात 1,011 महिलाएँ प्रति 1,000 पुरुष है। तहसील की कुल जनसंख्या में ग्रामीण जनसंख्या 69,819 है, जिसमें 34,659 पुरुष तथा 35,160 महिलाएँ शामिल हैं। ग्रामीण क्षेत्र का लिंगानुपात 1,014 महिलाएँ प्रति

1,000 पुरुष है। साक्षरता की दृष्टि से तहसील की कुल साक्षरता दर 69.08 प्रतिशत है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 80.29 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 58.03 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्र में साक्षरता दर 68.75 प्रतिशत है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 79.70 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 57.13 प्रतिशत है। ये आँकड़े ग्रामीण क्षेत्र में महिला शिक्षा की स्थिति को समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

आर्थिक दृष्टि से थानखम्हरिया तहसील की जनसंख्या में कार्यशील एवं गैर-कार्यशील दोनों वर्ग शामिल हैं। कुल 39,082 व्यक्ति कार्यशील जनसंख्या के अंतर्गत आते हैं, जो कुल जनसंख्या का 49.98 प्रतिशत है। कार्यशील जनसंख्या में 21,070 पुरुष तथा 18,012 महिलाएँ शामिल हैं। इनमें मुख्य कार्यशील जनसंख्या 34,336 तथा सीमांत कार्यशील जनसंख्या 4,746 है। मुख्य कार्यशील जनसंख्या में पुरुषों की संख्या 19,156 तथा महिलाओं की संख्या 15,180 है, जबकि सीमांत कार्यशील जनसंख्या में 1,914 पुरुष तथा 2,832 महिलाएँ हैं। दूसरी ओर, गैर-कार्यशील जनसंख्या 39,110 है, जिसमें 17,811 पुरुष तथा 21,299 महिलाएँ शामिल हैं। उपरोक्त सामाजिक, जनसांख्यिकीय एवं आर्थिक विशेषताओं को देखते हुए थानखम्हरिया तहसील का ग्रामीण क्षेत्र महिला स्वयं सहायता समूहों की ऋण उपलब्धता, ऋण उपयोग एवं पुनर्भुगतान व्यवहार के अध्ययन के लिए उपयुक्त अध्ययन क्षेत्र है। विशेष रूप से कृषि एवं खेतिहर मजदूरी में महिलाओं की भागीदारी तथा ग्रामीण क्षेत्र में महिला साक्षरता की स्थिति इस अध्ययन की प्रासंगिकता को और स्पष्ट करती है।

स्वयं सहायता समूह एवं ऋण व्यवस्था की संक्षिप्त पृष्ठभूमि :

स्वयं सहायता समूह (SHGs) ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से महिलाओं को सामूहिक बचत, आंतरिक ऋण तथा औपचारिक बैंकिंग व्यवस्था से जोड़ने वाले महत्वपूर्ण संस्थागत माध्यम के रूप में विकसित हुए हैं। भारत में स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं में नियमित बचत की आदत विकसित करने, छोटे स्तर पर ऋण उपलब्ध कराने तथा आर्थिक गतिविधियों में उनकी भागीदारी बढ़ाने का कार्य किया गया है। समूह की सदस्याएँ नियमित रूप से बचत एकत्र करती हैं और आवश्यकता के अनुसार समूह की आंतरिक ऋण व्यवस्था से धन प्राप्त करती हैं। समूह की वित्तीय गतिविधियों एवं विश्वसनीयता के आधार पर बैंक ऋण की सुविधा भी प्राप्त होती है। इस प्रकार स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं के लिए औपचारिक वित्तीय संस्थाओं तक पहुँच का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनते हैं। बेमेतरा जिले की थानखम्हरिया तहसील के ग्रामीण क्षेत्र में भी कृषि, खेतिहर मजदूरी एवं अन्य ग्रामीण आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी महत्वपूर्ण है, ऐसे में स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं की बचत एवं ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्राप्त ऋण का उपयोग सदस्य अपनी आवश्यकताओं के अनुसार कृषि, पशुपालन, लघु व्यवसाय, आवास, शिक्षा, विवाह, स्वास्थ्य उपचार तथा अन्य पारिवारिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं में करती हैं। ऋण की उपलब्धता के साथ-साथ उसकी पर्याप्तता और उचित उपयोग भी सदस्य की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण पक्ष हैं।

इसी प्रकार ऋण का समय पर पुनर्भुगतान समूह की वित्तीय स्थिरता बनाए रखने तथा भविष्य में ऋण सुविधा प्राप्त करने के लिए आवश्यक माना जाता है। आय की अनिश्चितता, पारिवारिक आवश्यकताएँ, आकस्मिक व्यय तथा अन्य आर्थिक परिस्थितियाँ ऋण पुनर्भुगतान को प्रभावित कर सकती हैं। अतः थानखम्हरिया तहसील के ग्रामीण क्षेत्र की महिला स्वयं सहायता समूहों के संदर्भ में ऋण व्यवस्था का अध्ययन केवल ऋण प्राप्ति तक सीमित न होकर ऋण की उपलब्धता, पर्याप्तता, उपयोग एवं पुनर्भुगतान व्यवहार के समग्र संदर्भ में किया जाना

आवश्यक है।

आंकड़ों का विश्लेषण :

- **आयु वर्ग** – चयनित उत्तरदाताओं में 27 (18.0%) महिलाएँ 18–30 वर्ष, 52 (34.7%) 31–40 वर्ष, 43 (28.7%) 41–50 वर्ष तथा 28 (18.6%) महिलाएँ 51 वर्ष एवं अधिक आयु वर्ग की हैं। इस प्रकार सर्वाधिक 95 (63.4%) उत्तरदाता 31–50 वर्ष आयु वर्ग के हैं, जो परिवार की आर्थिक जिम्मेदारियों के प्रमुख चरण को दर्शाता है।
- **शैक्षणिक स्तर** – चयनित उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक अध्ययन में 32 (21.3%) महिलाएँ केवल साक्षर, 39 (26.0%) प्राथमिक, 47 (31.3%) माध्यमिक तथा 32 (21.3%) उच्च माध्यमिक एवं उससे अधिक शिक्षित हैं। इससे स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में माध्यमिक स्तर तक शिक्षित महिलाओं की संख्या सर्वाधिक है, जबकि लगभग आधी महिलाएँ प्राथमिक या उससे निम्न स्तर तक शिक्षित हैं।
- **परिवार का आकार** – चयनित उत्तरदाताओं में 46 (30.7%) महिलाएँ 1–4 सदस्य वाले, 72 (48.0%) 5–7 सदस्य वाले तथा 32 (21.3%) महिलाएँ 8 या अधिक सदस्यों वाले परिवारों से संबंधित हैं। इस प्रकार अधिकांश उत्तरदाता मध्यम आकार के परिवारों से हैं, जहाँ घरेलू आवश्यकताओं के कारण ऋण की आवश्यकता अपेक्षाकृत अधिक हो सकती है।
- **व्यवसाय** – चयनित उत्तरदाताओं में से 43 (28.7%) उत्तरदाताएँ कृषि, 39 (26.0%) खेतिहर मजदूरी, 28 (18.7%) पशुपालन/डेयरी, 24 (16.0%) लघु व्यवसाय/स्वरोजगार तथा 16 (10.6%) अन्य व्यवसायों से जुड़ी हैं। इस प्रकार 82 (54.7%) महिलाएँ कृषि एवं खेतिहर मजदूरी पर निर्भर हैं, जिससे उनकी आय में मौसमी उतार-चढ़ाव की स्थिति बनी रहती है।
- **मांगी गई ऋण राशि** – चयनित उत्तरदाताओं में से 18 (12.0%) महिलाओं ने रु. 10,000 तक, 37 (24.7%) ने रु. 10,001–25,000, 52 (34.6%) ने रु. 25,001–50,000, 31 (20.7%) ने रु. 50,001–1,00,000 तथा 12 (8.0%) ने रु. 1,00,000 से अधिक ऋण की मांग की। सर्वाधिक 52 (34.6%) महिलाओं की ऋण आवश्यकता रु. 25,001–50,000 के बीच रही, जिससे सदस्यों की अपेक्षाकृत पर्याप्त ऋण आवश्यकता स्पष्ट होती है।
- **प्राप्त ऋण राशि** – चयनित उत्तरदाताओं में से 31 (20.7%) महिलाओं को रु. 10,000 तक, 49 (32.7%) को रु. 10,001–25,000, 48 (32.0%) को रु. 25,001–50,000, 19 (12.6%) को रु. 50,001–1,00,000 तथा केवल 3 (2.0%) महिलाओं को रु. 1,00,000 से अधिक ऋण प्राप्त हुआ। मांगी गई और प्राप्त ऋण राशि की तुलना से संकेत मिलता है कि अनेक सदस्यों को उनकी आवश्यकता की तुलना में कम ऋण प्राप्त हुआ।
- **ऋण का स्रोत** – चयनित उत्तरदाताओं में से 96 (64.0%) महिलाओं ने SHG के आंतरिक कोष से, 39 (26.0%) ने SHG के माध्यम से बैंक से, 8 (5.3%) ने व्यक्तिगत बैंक ऋण तथा 7 (4.7%) ने अन्य स्रोतों से ऋण प्राप्त किया। इस प्रकार 135 (90.0%) उत्तरदाताओं का ऋण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं सहायता समूह से जुड़ा रहा, जो समूहों की ऋण उपलब्धता में महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाता है।
- **ऋण का उपयोग** – चयनित उत्तरदाताओं द्वारा ऋण के उपयोग के संदर्भ में 43 (28.7%) महिलाओं ने घरेलू आवश्यकताओं, 37 (24.7%) ने आवास, 34 (22.7%) ने कृषि, 31 (20.7%) ने पशुपालन/डेयरी तथा 29

(19.3%) ने लघु व्यवसाय में किया। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य, विवाह, शिक्षा एवं पुराने ऋण के भुगतान में भी ऋण का उपयोग किया गया। इससे स्पष्ट है कि ऋण का उपयोग आर्थिक गतिविधियों के साथ-साथ पारिवारिक आवश्यकताओं में भी किया जा रहा है।

- **ऋण की पर्याप्तता** - 28 (18.7%) महिलाओं ने ऋण को पूर्णतः पर्याप्त, 34 (22.7%) ने अधिकांशतः पर्याप्त, 51 (34.0%) ने आंशिक रूप से पर्याप्त तथा 37 (24.6%) ने अपर्याप्त बताया। इस प्रकार 62 (41.3%) महिलाओं के लिए ऋण पर्याप्त रहा, जबकि 88 (58.7%) ने इसे आंशिक रूप से पर्याप्त अथवा अपर्याप्त माना। इससे ऋण उपलब्ध होने के बावजूद आवश्यकता के अनुरूप पर्याप्त ऋण न मिल पाने की स्थिति स्पष्ट होती है।

- **ऋण पुनर्भुगतान** - चयनित उत्तरदाताओं में से 60 (40.0%) महिलाओं ने ऋण का नियमित एवं समय पर पुनर्भुगतान किया, जबकि 39 (26.0%) को कभी-कभी, 29 (19.3%) को अक्सर विलंब तथा 22 (14.7%) को गंभीर कठिनाई/डिफॉल्ट का सामना करना पड़ा। इस प्रकार 90 (60.0%) उत्तरदाताओं में पुनर्भुगतान के दौरान किसी न किसी प्रकार का विलंब अथवा कठिनाई पाई गई।

- **पुनर्भुगतान संबंधी समस्याएँ एवं कठिनाइयाँ** - चयनित उत्तरदाताओं में से पुनर्भुगतान में कठिनाई बताने वाली 90 महिलाओं में 54 (60.0%) ने कम पारिवारिक आय, 48 (53.3%) ने घरेलू खर्चों की अधिकता तथा 39 (43.3%) ने कृषि आय में कमी अथवा फसल हानि को प्रमुख समस्या बताया। इसके अतिरिक्त ऋण राशि का आवश्यकता से कम होना, स्वास्थ्य संबंधी आकस्मिक व्यय तथा ऋण से अपेक्षित आय प्राप्त न होना भी प्रमुख कठिनाइयाँ रहीं। इससे स्पष्ट होता है कि पुनर्भुगतान व्यवहार सदस्य की आर्थिक एवं पारिवारिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है।

परिकल्पना परीक्षण :

- **परिकल्पना-1** : “ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों को आवश्यकतानुसार पर्याप्त ऋण उपलब्ध नहीं हो पाता है।” के परीक्षण हेतु प्राप्त आँकड़ों के आधार पर कार्ड-वर्ग परीक्षण किया गया। अध्ययन में चयनित उत्तरदाताओं में से 88 (58.67%) सदस्यों ने बताया कि उन्हें आवश्यकतानुसार पर्याप्त ऋण उपलब्ध नहीं हो पाता है, जबकि 62 (41.33%) सदस्यों ने पर्याप्त ऋण उपलब्ध होने की जानकारी दी। परीक्षण से प्राप्त कार्ड-वर्ग मान (χ^2) 4.51 है, जबकि 1 स्वतंत्रता की कोटि पर 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर का सारणी मान 3.84 है। चूँकि प्राप्त कार्ड-वर्ग मान सारणी मान से अधिक है, अतः ऋण की पर्याप्तता के संबंध में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रियाओं में सांख्यिकीय रूप से सार्थक अंतर पाया गया। प्राप्त परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि अपेक्षाकृत अधिक संख्या में महिला स्वयं सहायता समूह सदस्यों को उनकी आवश्यकता के अनुरूप पर्याप्त ऋण उपलब्ध नहीं हो पा रहा है। जिसका मुख्य कारण ऋण की निर्धारित सीमा का कम होना, सदस्यों की वास्तविक वित्तीय आवश्यकता और उपलब्ध ऋण राशि में अंतर, ऋण स्वीकृति से संबंधित प्रक्रियाएँ तथा समूह की ऋण-वहन क्षमता इत्यादि है। पर्याप्त ऋण की अनुपलब्धता के कारण महिला सदस्यों को स्वरोजगार, लघु व्यवसाय, कृषि एवं अन्य आय-सृजनात्मक गतिविधियों के विस्तार में अपेक्षित वित्तीय सहायता प्राप्त नहीं हो पाती है। इस प्रकार, अध्ययन क्षेत्र में महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों के समक्ष ऋण की पर्याप्तता एक प्रमुख वित्तीय समस्या के रूप में उभरती है। अतः प्राप्त परिणामों के आधार पर शून्य परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है, इससे यह

निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों को आवश्यकतानुसार पर्याप्त ऋण उपलब्ध नहीं हो पाता है।

• **परिकल्पना-2 :** “ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों को आर्थिक एवं पारिवारिक बाधाओं के कारण ऋण पुनर्भुगतान में कठिनाई होती है।” के परीक्षण हेतु प्राप्त आँकड़ों के आधार पर कार्ड-वर्ग परीक्षण किया गया। अध्ययन में सम्मिलित चयनित उत्तरदाताओं में से 90 (60.0%) सदस्यों ने बताया कि उन्हें आर्थिक एवं पारिवारिक बाधाओं के कारण ऋण पुनर्भुगतान में कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जबकि 60 (40.0%) सदस्यों ने नियमित रूप से अथवा समय पर ऋण का पुनर्भुगतान करने की जानकारी दी। परीक्षण से प्राप्त कार्ड-वर्ग मान (χ^2) 6.0 है। 1 स्वतंत्रता की कोटि पर 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर का सारणी मान 3.84 है। चूँकि प्राप्त कार्ड-वर्ग मान 6.00, सारणी मान 3.84 से अधिक है, अतः ऋण पुनर्भुगतान की स्थिति के संबंध में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रियाओं में सांख्यिकीय रूप से सार्थक अंतर पाया गया। प्राप्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि नियमित एवं समय पर ऋण पुनर्भुगतान करने वाली सदस्यों की तुलना में आर्थिक एवं पारिवारिक बाधाओं के कारण पुनर्भुगतान में कठिनाई का सामना करने वाली सदस्यों की संख्या अधिक है। इसका प्रमुख कारण परिवार की सीमित आय, अनियमित आय-स्रोत, घरेलू आवश्यकताओं पर होने वाला व्यय, आकस्मिक पारिवारिक खर्च तथा ऋण से संचालित आर्थिक गतिविधियों से अपेक्षित आय प्राप्त न होना हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में महिला सदस्यों के लिए निर्धारित समय पर ऋण की किस्तों का भुगतान करना कठिन हो जाता है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि समूहों से प्राप्त ऋण का पुनर्भुगतान केवल वित्तीय क्षमता पर ही नहीं, बल्कि सदस्यों की सामाजिक एवं पारिवारिक परिस्थितियों से भी प्रभावित होता है। अतः प्राप्त परिणामों के आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत होता है इससे निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की सदस्यों को आर्थिक एवं पारिवारिक बाधाओं के कारण ऋण पुनर्भुगतान में कठिनाई होती है, तथा यह समस्या अध्ययन क्षेत्र में सांख्यिकीय रूप से सार्थक रूप से विद्यमान है।

समस्याएँ :

- **ऋण की अपर्याप्तता** - उपलब्ध ऋण राशि कई सदस्यों की वास्तविक आर्थिक आवश्यकता के अनुरूप पर्याप्त नहीं है।
- **पुनर्भुगतान में कठिनाई** - सीमित एवं अनिश्चित आय के कारण समय पर ऋण की किस्त चुकाने में समस्या आती है।
- **पारिवारिक व्ययों का दबाव** - बीमारी, शिक्षा, विवाह एवं अन्य आकस्मिक खर्च पुनर्भुगतान क्षमता को प्रभावित करते हैं।
- **ऋण का गैर-उत्पादक उपयोग** - घरेलू आवश्यकताओं एवं पुराने ऋण के भुगतान में ऋण का उपयोग होने से आय-सृजन की संभावना कम हो जाती है।
- **ऋण प्राप्ति संबंधी औपचारिकताएँ** - बैंक ऋण प्राप्त करने की प्रक्रिया, दस्तावेज एवं अन्य औपचारिकताएँ महिलाओं के लिए कठिन हो सकती हैं।
- **आय की अनिश्चितता** - कृषि, मजदूरी एवं छोटे व्यवसाय से होने वाली अनिश्चित आय पुनर्भुगतान को प्रभावित करती है।

सुझाव :

- **आवश्यकतानुसार ऋण सीमा बढ़ाई जाए** – सदस्यों की वास्तविक आवश्यकता और आर्थिक गतिविधि के आधार पर ऋण उपलब्ध कराया जाए।
- **पुनर्भुगतान में लचीलापन** – कृषि एवं मौसमी आय पर निर्भर सदस्यों के लिए पुनर्भुगतान व्यवस्था में आवश्यक लचीलापन रखा जाए।
- **आय-सृजनात्मक गतिविधियों को बढ़ावा** – ऋण को कृषि, पशुपालन, लघु व्यवसाय एवं अन्य रोजगारपरक गतिविधियों से जोड़ा जाए।
- **वित्तीय साक्षरता बढ़ाई जाए** – सदस्यों को ऋण के उचित उपयोग, वित्तीय नियोजन एवं समय पर पुनर्भुगतान का प्रशिक्षण दिया जाए।
- **बैंकिंग प्रक्रिया सरल की जाए** – ऋण आवेदन, दस्तावेजीकरण एवं स्वीकृति प्रक्रिया को सरल और समयबद्ध बनाया जाए।
- **बाजार एवं तकनीकी सहायता उपलब्ध कराई जाए** – महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों के लिए प्रशिक्षण, विपणन एवं बाजार से जुड़ी सहायता प्रदान की जाए।

निष्कर्ष :

अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं को ऋण एवं वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, किंतु ऋण की उपलब्धता और उसकी पर्याप्तता में अभी भी अंतर बना हुआ है। प्राप्त ऋण का उपयोग महिलाओं द्वारा घरेलू आवश्यकताओं के साथ-साथ कृषि, पशुपालन, लघु व्यवसाय तथा अन्य आय-सृजनात्मक गतिविधियों में किया जा रहा है। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि सीमित एवं अनिश्चित आय, पारिवारिक आवश्यकताओं तथा आकस्मिक व्ययों के कारण अनेक सदस्यों को ऋण पुनर्भुगतान में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऋण की अपर्याप्तता और पुनर्भुगतान संबंधी समस्याएँ महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों के विस्तार तथा आर्थिक सुदृढ़ता को प्रभावित करती हैं। अतः स्वयं सहायता समूहों की ऋण व्यवस्था को अधिक आवश्यकता-आधारित, सरल एवं लचीला बनाना आवश्यक है, ताकि ग्रामीण महिलाओं को ऋण का बेहतर उपयोग करने और समय पर पुनर्भुगतान करने में सहायता मिल सके।

संदर्भ सूची :

-Batra, V. (2012). Factors determining women self-help group members and their patterns : A field experience in rural Haryana. *Economic Affairs*, 57(1), 107–118.
- Chhattisgarh State Rural Livelihoods Mission (Bihan). (2024). Annual progress report on self-help groups and rural livelihoods, 2023–24. Department of Panchayat and Rural Development, Government of Chhattisgarh.
- District Planning and Statistics Office, Bemetara. (2024). District statistical handbook, Bemetara, 2023–24. District Administration, Bemetara, Chhattisgarh.

- District Administration, Bemetara. (2024). District profile and statistical information of Bemetara. Government of Chhattisgarh.
- Government of Chhattisgarh, Directorate of Economics and Statistics. (2024). Economic survey of Chhattisgarh 2023–24. Government of Chhattisgarh.
- Malaisamy, A. (2021). Economic analysis of credit and repayment capacity in women self-help groups and cooperatives in Tamil Nadu, India. *International Journal of Farm Sciences*, 11(1–2), 66–71. <https://doi.org/10.5958/2250-0499.2021.00012.4>
- Malhotra, N. (2026). How peer mechanism impacts loan repayment in a self-help group?: An empirical study in India. *PLOS ONE*, 21(1), 1-16, <https://doi.org/10.1371/journal.pone.0341674>
- National Bank for Agriculture and Rural Development. (2024). Status of microfinance in India 2023–24. NABARD.
- Muduli, S., & Sharma, M. (2022). Loan repayment dynamics of self-help groups in India. *Journal of Asian and African Studies*, 57(2). <https://doi.org/10.1177/09738010221074593>
- Sharma, D. D. (2016). Credit utilization, repayment pattern and problems of self-help groups (SHGs). *AgricINTERNATIONAL*, 3(1), 96–102.
- Singh, U. B., & Gupta, T. (2022). Repayment performance of self-help groups in Uttar Pradesh: An empirical investigation. *Journal of Asian and African Studies*, 57(2), 182–197. <https://doi.org/10.1177/00219096211007155>



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 39-43

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

Digital Right Management Techniques : Analysis in Present

Dr. Ankit Godara

SBS College, Raisinghnagar, Sri Ganganagar (Raj.)

Introduction :

Digital Rights Management (DRM) refers to a collection of technologies, policies, and methods used to protect digital content from unauthorized access, copying, modification, and distribution. In the present digital era, the use of digital resources has increased rapidly due to the growth of the internet, smartphones, cloud computing, online education, digital libraries, streaming platforms, and e-commerce. As a result, protecting intellectual property and controlling the use of digital content has become an important requirement for authors, publishers, software developers, educational institutions, and media organizations.

The main purpose of DRM is to ensure that digital content is accessed and used only according to the rights granted by the content owner. DRM systems commonly use encryption, authentication, digital licenses, access control, watermarking, and secure content-delivery mechanisms. Encryption converts digital information into a protected form that cannot be easily accessed without the appropriate key. Authentication verifies the identity of a user, while licensing determines the permissions and duration of access. Digital watermarking can help identify ownership and trace unauthorized distribution.

At present, DRM is widely used in e-books, digital newspapers, music, films, software applications, online courses, research databases, and cloud-based services. In the education sector, DRM can help protect recorded lectures, digital study materials, examination resources, and copyrighted learning content. In the entertainment industry, DRM helps control access to movies, television programs, music, and streaming services. Software companies also use DRM to manage product activation, subscriptions, and authorized installations.

Modern DRM technologies are becoming more sophisticated through the integration of cloud

computing, artificial intelligence, machine learning, blockchain, and advanced encryption techniques. Cloud-based DRM enables centralized management of licenses and user permissions. Artificial intelligence can assist in identifying unusual access patterns and potential misuse. Blockchain-based approaches may provide additional mechanisms for recording ownership and licensing transactions. Despite its advantages, DRM has several challenges. Strict DRM restrictions can reduce user convenience and create compatibility problems between devices and platforms. Users may also experience difficulties when accessing content offline or transferring legally purchased content between devices. Privacy is another concern because some DRM systems may collect information about users and their activities. Therefore, DRM should be designed with appropriate privacy protections and transparent policies.

The future of DRM depends on achieving a balance between intellectual-property protection and legitimate user requirements. Flexible licensing, interoperability, accessibility, secure offline access, and clear usage policies can improve the effectiveness of DRM. Educational institutions and organizations should also ensure that DRM systems comply with applicable copyright laws and support lawful educational and research activities.

In conclusion, Digital Rights Management is an essential component of modern digital security and copyright protection. It provides creators and organizations with mechanisms to control and protect digital resources while supporting their distribution through online platforms. However, effective DRM should not depend only on strict restrictions. A balanced approach combining security, accessibility, privacy, interoperability, and reasonable user rights can make DRM more useful and acceptable in the present digital environment.

DRM Methods Combined :

Digital Rights Management (DRM) methods combine various technologies to protect digital content and control its authorized use. Common methods include encryption, digital watermarking, authentication, licensing, access control, password protection, and copy prevention. Encryption protects content from unauthorized access, while digital watermarks help identify ownership and track illegal distribution. Authentication verifies authorized users, and licensing defines how and for how long content can be used. Together, these methods provide a comprehensive security system for protecting e-books, software, music, videos, online courses, and other digital resources from piracy and unauthorized distribution.

DRM Technologies :

Digital Rights Management (DRM) technologies use advanced digital tools to protect copyrighted content and control its authorized use. Important DRM technologies include encryption,

digital watermarking, authentication systems, license management, access control, and secure content delivery. Encryption prevents unauthorized users from reading digital content, while watermarking identifies ownership and helps trace illegal distribution. Authentication verifies the identity of users before providing access. License management defines usage permissions, and access-control systems restrict copying, printing, or sharing. These technologies are widely used in e-books, software, music, films, online education, and digital publishing.

Introduction to the Existing State Involving DRM :

Digital Rights Management (DRM) has become an important part of the present digital environment. With the rapid growth of online platforms, e-books, digital libraries, streaming services, software, and e-learning, protecting digital content has become essential. Existing DRM systems use encryption, authentication, licensing, watermarking, and access-control technologies to prevent unauthorized copying and distribution. Major digital platforms have adopted DRM to protect intellectual property and support content creators. However, challenges such as privacy concerns, compatibility issues, user restrictions, and accessibility continue to influence the effectiveness and acceptance of existing DRM systems.

DRM and Cryptography :

Digital Rights Management (DRM) and cryptography are closely related technologies used to protect digital content and intellectual property. DRM controls how digital materials such as e-books, music, videos, software, and online courses can be accessed, copied, or shared. Cryptography provides the technical foundation by converting information into a secure, unreadable form through encryption. Authorized users can access the content using appropriate keys, authentication, or licenses. Together, DRM and cryptography help prevent unauthorized access, copying, modification, and distribution. Their effective use improves digital security, protects creators' rights, and supports the safe distribution of digital resources.

Various Other Security Measures :

Apart from Digital Rights Management (DRM), several other security measures are used to protect digital information and content. Encryption secures data by converting it into an unreadable format, while strong passwords and multi-factor authentication prevent unauthorized access. Firewalls and antivirus software help protect systems from malware and cyberattacks. Regular software updates, secure backups, digital signatures, and access-control policies further improve security. Network monitoring and intrusion detection systems can identify suspicious activities. Together, these measures provide multiple layers of protection for digital resources, ensuring confidentiality, integrity, availability, and secure access.

Some Other Programs Related to DRM :

Several programs and platforms support Digital Rights Management (DRM) for protecting digital content. Adobe Digital Editions is used for managing protected e-books, while Microsoft PlayReady provides DRM for videos, music, and streaming services. Google Widevine protects digital media on websites and mobile devices. Apple FairPlay DRM secures content distributed through Apple platforms. Other solutions include File Open for protected documents and VdoCipher for secure video streaming. These programs use encryption, authentication, licensing, and access-control techniques to prevent unauthorized copying and distribution of digital content.

Exploits in Online Protection :

Exploits in online protection refer to weaknesses or vulnerabilities in digital systems that attackers may misuse to gain unauthorized access or compromise information. Common examples include phishing, malware, weak passwords, outdated software, insecure networks, and unpatched security vulnerabilities. Such exploits can lead to data theft, identity misuse, financial loss, or unauthorized distribution of protected digital content. Effective protection requires regular software updates, strong authentication, secure encryption, firewalls, antivirus tools, user awareness, and continuous security monitoring. A layered security approach helps organizations identify vulnerabilities early and reduce the risk of cyberattacks.

Ways to Overcome the Limitations of DRM :

Digital Rights Management (DRM) is an important technology for protecting digital content from unauthorized copying, distribution, and misuse. However, DRM systems may sometimes create limitations for legitimate users, including restricted access, device compatibility problems, privacy concerns, and difficulties in accessing content offline. Therefore, overcoming the limitations of DRM should focus on improving the system rather than illegally bypassing or removing its protection. One important approach is to develop flexible licensing models that provide authorized users with reasonable rights to access and use purchased digital content. DRM providers can support multiple devices and operating systems to improve interoperability and user convenience. Offline access can also be provided through secure licensing mechanisms so that users can legitimately access content without a continuous internet connection.

Another approach is to improve accessibility features for users with different educational and technological needs. DRM systems should allow legally permitted activities such as accessibility adaptations, limited educational use, and authorized printing or downloading where applicable. Clear copyright policies and transparent licensing conditions can help users understand what activities are permitted.

The use of open licensing models, including Creative Commons licensing where appropriate, can provide creators with greater flexibility in deciding how their work may be shared and reused. Educational institutions can also use licensed databases, institutional subscriptions, and authorized digital repositories to provide students and researchers with legitimate access to protected resources. Modern DRM should also emphasize privacy and security. Excessive collection of user information should be avoided, while strong encryption and authentication should be maintained. Regular security updates can protect digital resources against emerging threats.

In conclusion, the most effective way to overcome DRM limitations is to create a balanced system that combines copyright protection with accessibility, interoperability, privacy, and reasonable user rights. Such an approach protects creators while ensuring that legitimate users can conveniently and lawfully access digital content.

Bibliography :

1. Rosenblatt, B., Trippe, W., & Mooney, S. (2012). Digital Rights Management: Business and Technology. M&T Books.
2. Iannella, R. (2021). Digital rights management (DRM) architectures. D-Lib Magazine, 7(6).
3. Liu, Q., Safavi-Naini, R., & Sheppard, N. P. (2013). Digital rights management for content distribution. Proceedings of the Australasian Information Security Workshop.
4. Biddle, P., England, P., Peinado, M., & Willman, B. (2022). The Darknet and the future of content distribution. ACM Workshop on Digital Rights Management.
5. Erickson, J. (2021). Fair Use, DRM, and the Internet. Communications of the ACM.
6. Mulligan, D. K., Han, J., & Burstein, A. J. (2023). How DRM-based content protection systems affect consumers. UC Berkeley School of Law.
7. Cohen, J. E. (2023). DRM and privacy. Communications of the ACM, 46(4), 101–106.
8. Halderman, J. A. (2022). Evaluating new copy-prevention techniques for digital media. Proceedings of the ACM Workshop on Digital Rights Management.



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 44-51

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL

डिजिटल भारत और सामाजिक परिवर्तन : डिजिटल तकनीक का भारतीय समाज पर प्रभाव

डॉ. राखी सक्सेना, सह प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक

जगदीश कुमार धुर्वे, पीएच.डी. शोधार्थी

वाणिज्य एवं प्रबंध विभाग, कैरियर कॉलेज (ऑटोनोंम), बी.एच.ई.एल., भोपाल (मध्य प्रदेश)

सारांश -

डिजिटल तकनीक ने भारत के सामाजिक जीवन, अर्थव्यवस्था, शिक्षा, शासन, संचार और नागरिक सेवाओं के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन किया है। डिजिटल भारत कार्यक्रम ने डिजिटल अवसंरचना, सेवाओं और डिजिटल सशक्तिकरण को एक साझा विकास एजेंडा बनाने में योगदान दिया है। प्रस्तुत शोध-पत्र डिजिटल तकनीक के भारतीय समाज पर सकारात्मक और चुनौतीपूर्ण दोनों प्रभावों का बहुआयामी अध्ययन करता है।

अध्ययन में इंटरनेट पहुँच, डिजिटल भुगतान, ई-गवर्नेंस, ऑनलाइन शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, रोजगार, सामाजिक संचार, डिजिटल समावेशन, गोपनीयता और साइबर सुरक्षा जैसे आयामों को शामिल किया गया है। TRAI के अनुसार मार्च 2025 तक भारत में इंटरनेट सदस्यता 969.10 मिलियन थी; मार्च 2026 के TRAI डैशबोर्ड पर कुल इंटरनेट सदस्यता 1,092.79 मिलियन दर्शाई गई है। यह वृद्धि डिजिटल समाज के विस्तार की महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है।

शोध का निष्कर्ष है कि डिजिटल परिवर्तन को केवल तकनीकी प्रगति के रूप में नहीं देखा जा सकता। डिजिटल साधनों तक पहुँच, डिजिटल साक्षरता, भाषा, आय, लिंग, ग्रामीण-शहरी अंतर और डेटा सुरक्षा जैसे सामाजिक प्रश्न यह निर्धारित करते हैं कि डिजिटल विकास कितना समावेशी होगा।

इसलिए 'डिजिटल भारत' की अगली अवस्था को पहुँच से आगे बढ़ाकर विश्वास, कौशल, समावेशन और नागरिक अधिकारों पर केंद्रित करना आवश्यक है।

प्रमुख शब्द - डिजिटल भारत, सामाजिक परिवर्तन, डिजिटल विभाजन, ई-गवर्नेंस, डिजिटल भुगतान, डिजिटल साक्षरता, डेटा सुरक्षा, सामाजिक समावेशन।

प्रस्तावना -

डिजिटल क्रांति ने समाज में संचार और सूचना के प्रवाह की गति को असाधारण रूप से बढ़ाया है। भारत में मोबाइल फोन, इंटरनेट, डिजिटल भुगतान और ऑनलाइन सरकारी सेवाओं के विस्तार ने नागरिक और राज्य, उपभोक्ता और बाजार तथा शिक्षक और विद्यार्थी के बीच संबंधों को पुनर्गठित किया है। डिजिटल तकनीक अब केवल संचार का साधन नहीं रही; यह शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, रोजगार, प्रशासन और सामाजिक भागीदारी की आधारभूत संरचना का हिस्सा बन रही है।

डिजिटल परिवर्तन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसकी व्यापकता है। एक ओर डिजिटल सेवाएँ समय और लेन-देन की लागत कम कर सकती हैं, दूसरी ओर तकनीकी पहुँच और कौशल की असमानता नए प्रकार के बहिष्करण को जन्म दे सकती है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन केवल उपयोगकर्ताओं की संख्या से नहीं बल्कि इस बात से किया जाना चाहिए कि कौन लोग डिजिटल सेवाओं का उपयोग कर पा रहे हैं, किस उद्देश्य से कर रहे हैं और उन्हें इससे किस प्रकार के सामाजिक-आर्थिक लाभ या जोखिम मिल रहे हैं।

अध्ययन की समस्या -

भारत में डिजिटल अवसंरचना के तेजी से विस्तार के बावजूद डिजिटल अवसरों का वितरण समान नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों, कम आय वाले परिवारों, वरिष्ठ नागरिकों, कम डिजिटल साक्षरता वाले समूहों और भाषाई रूप से विविध आबादी के लिए डिजिटल सेवाओं की उपयोगिता कई बार उपकरण, कनेक्टिविटी, कौशल और भरोसे पर निर्भर करती है। इसी कारण डिजिटल परिवर्तन को सामाजिक न्याय और समावेशन के प्रश्न से अलग करके देखना उचित नहीं है।

अध्ययन के उद्देश्य -

- भारत में डिजिटल परिवर्तन की प्रमुख प्रवृत्तियों का अध्ययन करना।
- डिजिटल तकनीक के शिक्षा, शासन, अर्थव्यवस्था और सामाजिक संबंधों पर प्रभाव का विश्लेषण करना।
- डिजिटल विभाजन और सामाजिक असमानता के संबंध को समझना।

- डिजिटल भुगतान और ई-गवर्नेंस की सामाजिक उपयोगिता का अध्ययन करना।
- डेटा सुरक्षा, गोपनीयता और साइबर सुरक्षा से जुड़ी चुनौतियों का विश्लेषण करना।
- समावेशी और नागरिक-केंद्रित डिजिटल भारत के लिए नीतिगत सुझाव देना।

शोध प्रश्न एवं परिकल्पनाएँ -

शोध प्रश्न: क्या डिजिटल तकनीक का विस्तार भारतीय समाज में सामाजिक और आर्थिक अवसरों को बढ़ा रहा है? क्या डिजिटल पहुँच में असमानता सामाजिक असमानता को भी प्रभावित करती है? क्या डिजिटल शासन नागरिक सेवाओं की पहुँच और पारदर्शिता में सुधार कर सकता है?

H1: डिजिटल तकनीक की पहुँच और डिजिटल साक्षरता में वृद्धि सामाजिक एवं आर्थिक अवसरों में सुधार से सकारात्मक रूप से संबंधित है।

H2: डिजिटल पहुँच, उपकरण और कौशल में असमानता डिजिटल लाभों के वितरण में सामाजिक अंतर पैदा करती है।

H3: डेटा सुरक्षा और डिजिटल विश्वास डिजिटल सेवाओं के दीर्घकालिक सामाजिक स्वीकार्यकरण के लिए आवश्यक हैं।

शोध-पद्धति -

यह अध्ययन वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और वैचारिक प्रकृति का है। इसमें मुख्यतः द्वितीयक आँकड़ों और सरकारी दस्तावेजों का उपयोग किया गया है। प्रमुख स्रोतों में Ministry of Electronics and Information Technology (MeitY), Telecom Regulatory Authority of India (TRAI), India Code तथा भारत सरकार के डिजिटल कार्यक्रमों से संबंधित आधिकारिक सामग्री शामिल है।

TRAI के आधिकारिक आँकड़ों का उपयोग इंटरनेट सदस्यता की प्रवृत्ति दिखाने के लिए किया गया है। मार्च 2024 में इंटरनेट सदस्यता 954.40 मिलियन से बढ़कर मार्च 2025 में 969.10 मिलियन हुई। 2025 की तीसरी तिमाही के बाद दिसंबर 2025 में यह 1,028.61 मिलियन और मार्च 2026 के TRAI डैशबोर्ड पर 1,092.79 मिलियन दिखाई गई। अलग-अलग रिपोर्टिंग तिथियों और पद्धतिगत परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए इन आँकड़ों को 'इंटरनेट सदस्यता' माना गया है, न कि अद्वितीय व्यक्तियों की संख्या।

डिजिटल भारत की अवधारणा -

डिजिटल भारत को ऐसे विकास-ढाँचे के रूप में समझा जा सकता है जिसमें डिजिटल अवसंरचना, ऑनलाइन सेवाएँ और नागरिकों की डिजिटल क्षमता एक-दूसरे से जुड़ती हैं। MeitY के अनुसार Digital India Programme का उद्देश्य डिजिटल पहुँच, डिजिटल विभाजन को कम करना और समावेशी सेवा-प्रदायन को बढ़ावा देना रहा है। इस प्रक्रिया में सरकारी सेवाओं के डिजिटलीकरण के साथ डिजिटल अर्थव्यवस्था और डिजिटल कौशल का महत्व भी बढ़ा है।

डिजिटल भारत की सामाजिक उपयोगिता तब अधिक होती है जब तकनीक नागरिकों की वास्तविक आवश्यकताओं से जुड़ती है—जैसे दस्तावेज़, प्रमाणपत्र, बैंकिंग, भुगतान, शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, रोजगार और शिकायत निवारण।

डिजिटल तकनीक और भारतीय समाज -

- **शिक्षा पर प्रभाव** - ऑनलाइन कक्षाओं, डिजिटल सामग्री, वर्चुअल प्रयोगशालाओं और शैक्षिक प्लेटफॉर्म ने सीखने के विकल्प बढ़ाए हैं। विद्यार्थी स्थान की सीमा के बाहर भी सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। किंतु उपकरण, इंटरनेट, भाषा, शिक्षक प्रशिक्षण और घर के अध्ययन वातावरण में अंतर के कारण डिजिटल शिक्षा समान लाभ नहीं देती। इसलिए मिश्रित शिक्षण और ऑफलाइन विकल्पों का महत्व बना रहता है।
- **शासन और नागरिक सेवाएँ** - डिजिटल शासन ने आवेदन, भुगतान, प्रमाणपत्र, शिकायत और सूचना प्राप्ति की प्रक्रियाओं को अधिक सुविधाजनक बनाया है। डिजिटल रिकॉर्ड से प्रशासनिक निगरानी और डेटा-आधारित निर्णय की संभावना बढ़ती है। फिर भी सेवा की गुणवत्ता इंटरनेट, पहचान प्रमाणीकरण, डेटा की शुद्धता और नागरिक की डिजिटल क्षमता पर निर्भर रहती है।
- **डिजिटल भुगतान और अर्थव्यवस्था** - मोबाइल आधारित भुगतान और त्वरित डिजिटल भुगतान प्रणालियों ने छोटे लेन-देन, व्यापार और व्यक्तिगत वित्तीय प्रबंधन को प्रभावित किया है। इससे औपचारिक वित्तीय प्रणाली तक पहुँच बढ़ सकती है और लेन-देन का रिकॉर्ड बन सकता है। दूसरी ओर धोखाधड़ी, फर्जी संदेश, गलत भुगतान और साइबर अपराध जैसी समस्याएँ डिजिटल वित्तीय साक्षरता की आवश्यकता को बढ़ाती हैं।
- **सामाजिक संबंध और संचार** - सोशल मीडिया और मैसेजिंग सेवाओं ने सामाजिक संपर्क की गति बढ़ाई है। परिवार, मित्र, समुदाय और पेशेवर नेटवर्क अब भौगोलिक दूरी से कम

प्रभावित होते हैं। लेकिन सूचना की विश्वसनीयता, अफवाह, ऑनलाइन उत्पीड़न और अत्यधिक डिजिटल निर्भरता सामाजिक जीवन के नए प्रश्न पैदा करते हैं।

- **रोजगार और कौशल** - डिजिटल प्लेटफॉर्म, ई-कॉमर्स, ऑनलाइन सेवाएँ, दूरस्थ कार्य और डिजिटल फ्रीलांसिंग ने रोजगार के नए अवसर पैदा किए हैं। साथ ही पारंपरिक नौकरियों में भी डिजिटल कौशल की मांग बढ़ी है। इसलिए डिजिटल परिवर्तन का लाभ उठाने के लिए कौशल विकास को विद्यालय, उच्च शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण से जोड़ा जाना चाहिए।

डिजिटल विभाजन : प्रमुख सामाजिक चुनौती -

डिजिटल विभाजन का अर्थ केवल इंटरनेट उपलब्ध न होना नहीं है। इसमें उपकरण की गुणवत्ता, कनेक्टिविटी की निरंतरता, डेटा की लागत, डिजिटल कौशल, भाषा, सामग्री की उपलब्धता और डिजिटल सेवाओं पर विश्वास भी शामिल हैं। इसलिए 'कनेक्टेड' व्यक्ति और 'डिजिटल रूप से सक्षम' व्यक्ति के बीच अंतर करना आवश्यक है।

आयाम	संभावित असमानता	सामाजिक प्रभाव
ग्रामीण-शहरी	कनेक्टिविटी व सेवा केंद्रों में अंतर	सेवाओं तक असमान पहुँच
आय	उपकरण/डेटा खरीदने की क्षमता	डिजिटल अवसरों में अंतर
लिंग	उपकरण व स्वतंत्र उपयोग में अंतर	शिक्षा/रोजगार के अवसर प्रभावित
शिक्षा	डिजिटल कौशल का अंतर	ऑनलाइन सेवाओं का असमान उपयोग
भाषा	स्थानीय भाषा सामग्री की कमी	उपयोग में बाधा
आयु	तकनीकी परिचय का अंतर	वरिष्ठ नागरिकों के लिए निर्भरता

डिजिटल तकनीक के सकारात्मक प्रभाव -

- सरकारी सेवाओं तक समय और दूरी की बाधा कम होना।
- डिजिटल भुगतान से लेन-देन की सुविधा और औपचारिक वित्तीय व्यवहार में वृद्धि।
- शिक्षा और कौशल सामग्री तक व्यापक पहुँच।
- छोटे उद्यमों के लिए डिजिटल बाजार और ग्राहकों तक पहुँच।
- आपदा और संकट के समय सूचना एवं संचार की तेज उपलब्धता।
- डेटा-आधारित प्रशासन और सेवा निगरानी की संभावना।
- दूरस्थ क्षेत्रों में कुछ स्वास्थ्य एवं परामर्श सेवाओं तक पहुँच का विस्तार।

डिजिटल परिवर्तन की चुनौतियाँ -

- डिजिटल विभाजन और सामाजिक-आर्थिक असमानता।
- साइबर अपराध, ऑनलाइन धोखाधड़ी और पहचान की चोरी।

- व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा और गोपनीयता।
- गलत सूचना और डिजिटल माध्यमों से अफवाहों का प्रसार।
- डिजिटल सेवाओं पर अत्यधिक निर्भरता से तकनीकी विफलता का जोखिम।
- भाषाई और दिव्यांग-अनुकूल डिजिटल सामग्री की अपर्याप्तता।
- बच्चों और युवाओं के लिए सुरक्षित तथा जिम्मेदार डिजिटल उपयोग की आवश्यकता।

डेटा सुरक्षा और गोपनीयता -

डिजिटल समाज में डेटा स्वयं एक महत्वपूर्ण संसाधन बन गया है। सरकारी सेवाओं, वित्तीय लेन-देन, स्वास्थ्य, शिक्षा और ऑनलाइन व्यवहार से संबंधित डेटा की मात्रा बढ़ने के साथ नागरिकों की निजता की सुरक्षा महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत में Digital Personal Data Protection Act, 2023 व्यक्तिगत डिजिटल डेटा के प्रसंस्करण के लिए अधिकारों और दायित्वों का विधिक ढाँचा प्रदान करता है।

इससे स्पष्ट है कि डिजिटल विकास का अगला चरण केवल अधिक डेटा एकत्र करने पर नहीं बल्कि जिम्मेदार डेटा शासन, पारदर्शिता, सुरक्षा और नागरिक विश्वास पर आधारित होना चाहिए।

डिजिटल भारत और सामाजिक समावेशन -

डिजिटल समावेशन के लिए 'सभी को इंटरनेट' से आगे बढ़कर 'सभी को उपयोगी और सुरक्षित डिजिटल अवसर' उपलब्ध कराना आवश्यक है। इसके लिए स्थानीय भाषाओं में सामग्री, सार्वजनिक डिजिटल सेवा केंद्र, डिजिटल साक्षरता, दिव्यांग-अनुकूल डिजाइन, कम-बैंडविड्थ विकल्प और ऑफलाइन सहायता व्यवस्था को मजबूत किया जाना चाहिए।

विशेष रूप से कमजोर वर्गों के लिए डिजिटल सेवाओं को ऐसी डिजाइन नीति की आवश्यकता है जिसमें नागरिक को तकनीकी त्रुटि या प्रमाणीकरण विफलता के कारण आवश्यक सार्वजनिक सेवा से वंचित न होना पड़े।

प्रस्तावित विश्लेषणात्मक ढाँचा -

आयाम	मुख्य संकेतक	अपेक्षित परिणाम
डिजिटल पहुँच	इंटरनेट, उपकरण, नेटवर्क	कनेक्टिविटी
डिजिटल कौशल	प्रशिक्षण, सुरक्षित उपयोग	स्वतंत्र उपयोग
आर्थिक समावेशन	डिजिटल भुगतान, ई-कॉमर्स	आय/बाजार अवसर
सामाजिक सेवाएँ	शिक्षा, स्वास्थ्य, शासन	सेवा पहुँच
विश्वास व सुरक्षा	डेटा सुरक्षा, साइबर जागरूकता	सुरक्षित उपयोग
सामाजिक भागीदारी	ऑनलाइन सूचना, नागरिक मंच	भागीदारी व उत्तरदायित्व

नीतिगत सुझाव

- डिजिटल अवसंरचना विस्तार के साथ डिजिटल साक्षरता को अनिवार्य नीति घटक बनाया जाए।
- ग्रामीण और कम-आय वाले क्षेत्रों के लिए सस्ती, विश्वसनीय और उच्च-गुणवत्ता कनेक्टिविटी सुनिश्चित की जाए।
- सभी प्रमुख सरकारी डिजिटल सेवाओं में स्थानीय भाषाओं और सरल भाषा का विकल्प बढ़ाया जाए।
- डिजिटल सेवाओं के साथ सहायता केंद्र और वैकल्पिक ऑफलाइन प्रक्रिया उपलब्ध रखी जाए।
- विद्यालय और महाविद्यालय स्तर पर साइबर सुरक्षा तथा डिजिटल नागरिकता की शिक्षा दी जाए।
- डिजिटल भुगतान के साथ वित्तीय एवं साइबर साक्षरता अभियान चलाए जाएँ।
- व्यक्तिगत डेटा के उपयोग में न्यूनतम आवश्यकता, पारदर्शिता और सुरक्षा के सिद्धांतों को मजबूत किया जाए।
- दिव्यांगों और वरिष्ठ नागरिकों के लिए सार्वभौमिक डिजाइन को डिजिटल सेवाओं का मानक बनाया जाए।
- सरकारी डिजिटल परियोजनाओं का मूल्यांकन केवल उपयोगकर्ता संख्या से नहीं बल्कि सेवा की गुणवत्ता और सामाजिक परिणामों से किया जाए।

प्रमुख निष्कर्ष -

- भारत में डिजिटल तकनीक सामाजिक परिवर्तन की संरचनात्मक शक्ति बन चुकी है।
- इंटरनेट सदस्यता का विस्तार डिजिटल सेवाओं के लिए बड़े सामाजिक आधार का संकेत देता है।
- डिजिटल परिवर्तन शिक्षा, शासन, वित्त और रोजगार के अवसर बढ़ा सकता है।
- डिजिटल विभाजन को केवल नेटवर्क कवरेज नहीं बल्कि उपकरण, कौशल, भाषा और सामाजिक क्षमता के स्तर पर समझना चाहिए।
- डेटा सुरक्षा और नागरिक विश्वास डिजिटल समाज की स्थिरता के लिए केंद्रीय तत्व हैं।
- डिजिटल भारत की सफलता का अंतिम मापदंड तकनीक की उपलब्धता के साथ नागरिकों की वास्तविक क्षमता और जीवन में होने वाला सुधार होना चाहिए।

निष्कर्ष -

डिजिटल भारत ने भारतीय समाज में संचार, शासन, वित्त, शिक्षा और आर्थिक गतिविधियों की प्रक्रियाओं को बदलने की क्षमता दिखाई है। डिजिटल तकनीक ने अनेक सेवाओं को अधिक तेज, सुविधाजनक और डेटा-आधारित बनाया है। परंतु तकनीकी विस्तार अपने आप सामाजिक समानता सुनिश्चित नहीं करता। यदि उपकरण, कनेक्टिविटी, डिजिटल कौशल और सुरक्षित उपयोग में अंतर बना रहता है, तो डिजिटल परिवर्तन नए अवसरों के साथ नए बहिष्करण भी उत्पन्न कर सकता है।

अतः भारत की डिजिटल नीति को 'डिजिटल पहुँच' से 'डिजिटल क्षमता' और आगे 'डिजिटल नागरिक अधिकार' की दिशा में विकसित करना आवश्यक है। समावेशी डिजिटल भारत के लिए तकनीकी अवसंरचना, शिक्षा, कौशल, स्थानीय भाषा, साइबर सुरक्षा और डेटा संरक्षण को एकीकृत नीति के रूप में देखना होगा। इसी संतुलित दृष्टिकोण से डिजिटल तकनीक सामाजिक परिवर्तन को अधिक न्यायसंगत और टिकाऊ बना सकती है।

संदर्भ सूची -

- Ministry of Electronics and Information Technology. (2026). Digital India Programme and publications. Government of India.
- Telecom Regulatory Authority of India. (2025). The Indian telecom services yearly performance indicators for the year 2024–25. Government of India.
- Telecom Regulatory Authority of India. (2025). Indian telecom services performance indicators: January–March 2025. Government of India.
- Telecom Regulatory Authority of India. (2025). Indian telecom services performance indicators: October–December 2025. Government of India.
- Telecom Regulatory Authority of India. (2026). Telecom dashboard: Internet and broadband subscribers. Government of India.
- Government of India. (2023). The Digital Personal Data Protection Act, 2023. India Code.
- Ministry of Electronics and Information Technology. (2022). Digital Bharat, Saksham Bharat: A compendium on Digital India. Government of India.
- Ministry of Electronics and Information Technology. (2022). 75 digital transformation stories from across India. Government of India.

प्रमुख ऑनलाइन आधिकारिक स्रोत

- <https://www.meity.gov.in/>
- <https://traai.gov.in/>
- <https://www.indiacode.nic.in/indiacode/handle/123456789/22037>



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 52-60

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

Relevance of Values Reflected in the Ramayana in Contemporary Times : A Theoretical Perspective

Monika Sahai

Associate Professor and Head, Department of Psychology

S. N. Sen B. V. P. G. College, Kanpur, Uttar Pradesh, India.

Abstract :

The Ramayana is one of the most influential epics of Indian civilization and has played a significant role in shaping Indian cultural, ethical and social thought. Although traditionally regarded as a religious and literary text, its significance extends beyond spirituality because it presents a wide range of values concerning family relationships, responsibility, leadership, justice, compassion, self-control, sacrifice, loyalty and social harmony.

In the contemporary world, rapid technological development, changing family structures, increasing individualism, interpersonal conflicts and psychological stress have generated renewed interest in value-based approaches to human development. The present paper is theoretical in nature and examines the contemporary relevance of major values reflected in the Ramayana. It discusses values such as dharma, truthfulness, filial responsibility, commitment, compassion, respect, self-discipline, friendship, leadership, courage and social responsibility. The paper argues that the relevance of these values does not depend upon literal imitation of the characters or events of the epic. Rather, the underlying ethical principles can be interpreted in a contemporary and inclusive manner. Selected values represented in the Ramayana can contribute to character development, emotional regulation, responsible relationships, ethical leadership and psychological well-being when understood critically and applied in accordance with contemporary democratic and humanistic values.

Keywords :

Ramayana, values, dharma, psychological well-being, moral development, family values, leadership, contemporary society, Indian psychology

Introduction :

Values provide an important foundation for individual behaviour and social life. They influence the way individuals understand right and wrong, make decisions, establish relationships and respond to difficult circumstances. Every society develops systems of values through its history, cultural traditions, philosophical ideas, literature and collective experiences. In India, classical texts have traditionally served not only as sources of religious knowledge but also as important sources of moral and social learning. Among these texts, the Ramayana occupies a particularly significant position.

Attributed to Maharishi Valmiki, the Ramayana narrates the life and experiences of Rama, Sita, Lakshmana, Bharata, Hanuman and several other characters. Its narrative contains complex situations involving duty, morality, family relationships, loyalty, conflict, power and social responsibility. Consequently, the epic can be approached as a rich source for understanding the value system that has influenced Indian society over centuries.

The relevance of the Ramayana in contemporary times does not necessarily mean that modern individuals should reproduce the social conditions of an ancient period. Contemporary society is characterised by constitutional democracy, gender equality, individual rights, scientific thinking and rapidly changing social structures. Therefore, traditional values need to be interpreted within the framework of present-day humanistic and democratic principles. From a psychological perspective, values are important because they provide standards that guide behaviour and give meaning to life. Value systems influence motivation, self-regulation, interpersonal relationships, coping and moral decision-making. In this context, the Ramayana can be examined as a cultural narrative that presents examples of individuals confronting moral dilemmas and making choices based on particular principles.

Objectives of the Paper :

The major objectives are to examine the principal human and social values represented in the Ramayana, explore their relevance in contemporary society, interpret these values from psychological and social perspectives, and discuss how selected traditional values may contribute to responsible and meaningful living in the present context.

Methodological Approach :

The present paper is theoretical and conceptual in nature. It is based on a narrative and interpretive examination of the Ramayana, relevant philosophical literature, psychological perspectives on values and morality, and selected literature concerning Indian cultural values. No primary data have been collected and no empirical statistical analysis has been undertaken.

Values Reflected in the Ramayana :

Dharma and Responsibility :

One of the central concepts associated with the Ramayana is dharma. Although its meaning is broad and context-dependent, it may generally be understood as righteous conduct, responsibility, duty and ethical order. Rama's willingness to accept difficult circumstances associated with his father's commitment illustrates the importance attached to responsibility and personal integrity.

In contemporary life, the concept of responsibility remains highly relevant. Individuals occupy multiple roles as family members, professionals, citizens and members of communities. Conflicts between personal desires and responsibilities are common. A contemporary interpretation of dharma can encourage individuals to consider the consequences of their choices and balance personal interests with legitimate responsibilities toward others.

However, responsibility should not be understood as unquestioning obedience. In modern society, ethical responsibility also involves critical thinking, respect for human rights and sensitivity to circumstances. Thus, contemporary dharma may involve responsible and ethically informed decision-making.

Truthfulness and Integrity :

Truthfulness is another important value associated with the epic. The narrative repeatedly emphasizes the significance of keeping one's word and maintaining integrity even when doing so involves personal difficulty. Integrity remains essential in contemporary professional and personal life. Academic dishonesty, misinformation, corruption, manipulation and breaches of trust can undermine institutions and relationships.

Truthfulness contributes to credibility and psychological consistency. An individual whose behaviour is broadly consistent with personal ethical standards may experience a stronger sense of self-respect and coherence. At the same time, contemporary ethics requires truthfulness to be accompanied by compassion and sensitivity. Truth should not become an excuse for cruelty or humiliation.

Respect for Family Relationships :

Family relationships occupy a central position in the Ramayana. Relationships between parents and children, brothers, spouses and extended family members provide examples of loyalty, affection, responsibility and conflict. In contemporary society, family structures are changing rapidly. Urbanisation, migration, professional mobility and changing lifestyles have transformed traditional

patterns of family interaction. These changes may provide greater individual autonomy but can also create challenges related to communication, loneliness and intergenerational differences.

The value of mutual respect reflected in the epic remains relevant. Contemporary family relationships, however, should be based on mutuality rather than hierarchical obedience. Respect should be reciprocal between parents and children, spouses and siblings. Effective communication, emotional support and acceptance of individual differences are important contemporary expressions of family values.

Sacrifice and Commitment :

Several characters in the Ramayana are associated with sacrifice and commitment. The willingness to place long-term responsibilities above immediate personal gratification is an important theme. In psychological terms, the capacity to delay immediate gratification is associated with self-regulation and goal-directed behaviour.

Contemporary life often encourages immediate satisfaction through consumerism, digital entertainment and social media. The ability to tolerate temporary difficulty for meaningful long-term goals therefore remains valuable.

Nevertheless, sacrifice should not imply complete denial of legitimate needs. Contemporary psychological understanding recognises the importance of self-care and healthy boundaries. The relevant lesson is balanced commitment rather than self-neglect.

Self-Control and Emotional Regulation :

The Ramayana contains numerous situations involving anger, grief, fear, temptation and conflict. The capacity to regulate emotions and act thoughtfully rather than impulsively is an important aspect of ethical living. Emotional regulation is an important component of psychological adjustment. Individuals who can identify and manage emotions appropriately are generally better able to deal with interpersonal conflicts and stressful situations.

Compassion and Empathy :

Compassion is an important value represented in the relationships among several characters in the epic. Compassion involves recognising another person's suffering and responding with concern. In contemporary society, competition, social inequality and digital communication can sometimes reduce opportunities for meaningful interpersonal connection. Empathy is particularly important in families, educational institutions, workplaces and communities.

From a psychological perspective, empathy facilitates interpersonal understanding and prosocial

behaviour. Teaching compassion to children and adolescents may contribute to more cooperative relationships and reduce aggressive or insensitive behaviour.

Friendship and Loyalty :

The relationship between Rama and Hanuman is frequently interpreted as an example of devotion, trust and loyalty. The friendship and alliances among characters also demonstrate the importance of social support in confronting difficult circumstances. Contemporary psychology emphasises the importance of supportive relationships for psychological well-being. Friends can provide emotional support, practical assistance and a sense of belonging.

However, loyalty in modern life should not mean unconditional support for unethical behaviour. Healthy loyalty involves honesty, mutual respect and the willingness to provide constructive feedback when necessary.

Leadership and Ethical Conduct :

Rama is traditionally regarded as an ideal ruler and leader. The idea of Rama Rajya has often been associated with justice, welfare and responsible governance. Leadership in contemporary organisations and institutions requires more than authority. Ethical leadership involves accountability, fairness, transparency, empathy and concern for collective welfare.

The leadership ideals associated with the Ramayana can therefore be interpreted as encouraging responsible use of authority and commitment to the welfare of others. At the same time, modern leadership must incorporate democratic participation, equality and respect for diverse perspectives.

Courage and Resilience :

The characters in the Ramayana encounter exile, separation, conflict, uncertainty and loss. Their responses can be interpreted as examples of courage and resilience. Resilience refers to the ability to adapt to adversity and continue functioning despite difficult circumstances.

Contemporary individuals face academic pressure, occupational uncertainty, relationship difficulties and rapid social change. Psychological resilience is therefore highly relevant. The epic can serve as a cultural narrative through which individuals reflect on perseverance and meaning during adversity. Its usefulness lies not in suggesting that suffering should simply be accepted, but in encouraging constructive responses to unavoidable difficulties.

Psychological Interpretation of Values in the Ramayana :

The values represented in the Ramayana can be connected with several important psychological concepts. First, values provide direction and meaning. When individuals have clear principles, decision-

making may become more coherent. Second, values are associated with self-regulation because they influence whether individuals pursue immediate gratification or long-term goals. Third, values contribute to identity development, particularly during adolescence, when young people begin to form more stable beliefs about themselves and society.

From the perspective of moral development, traditional narratives can provide situations through which individuals discuss ethical dilemmas. The Ramayana contains numerous situations in which characters face competing responsibilities and emotional pressures. Discussing these situations critically may encourage moral reasoning rather than merely promoting obedience.

The epic may also be understood through social learning. Children and adolescents frequently learn behavioural standards by observing models presented by parents, teachers, literature and media. Cultural heroes therefore function as symbolic models. However, effective value education requires discussion and reflection rather than simple imitation.

Relevance to Contemporary Family Life :

Contemporary families experience significant changes in patterns of communication and relationships. Nuclear families, dual-career households, migration and increased digital engagement have altered traditional family interaction. Values such as respect, responsibility, loyalty, compassion and communication remain relevant despite these changes.

The Ramayana can provide a cultural framework for discussing relationships among parents, children, siblings and spouses. However, contemporary interpretation should avoid reinforcing unequal gender roles or unquestioned authority. The positive values of mutual respect, commitment and emotional support can be retained while ensuring equality and individual autonomy.

Relevance to Education :

Education is not limited to the acquisition of academic knowledge. The development of character, emotional competence, social responsibility and ethical reasoning is also important. Stories from the Ramayana can be used in educational settings as material for value-based discussions.

Students can be encouraged to analyse questions such as: What constitutes responsible behaviour? Should duty always take priority over personal needs? How should loyalty be balanced with ethical judgment? How can power be used responsibly? Such discussions can transform traditional stories into opportunities for critical thinking and moral reasoning.

Relevance to Youth and Adolescents :

Adolescence is an important stage for identity formation and value development. Young people

encounter conflicting messages from family, peers, social media and popular culture. Traditional narratives can provide opportunities for reflection on responsibility, friendship, courage, integrity and decision-making.

The Ramayana may be particularly useful when presented not as a set of unquestionable instructions but as a cultural narrative containing complex characters and moral dilemmas. Adolescents can be encouraged to consider different perspectives and develop their own ethical reasoning.

Relevance to Contemporary Leadership :

The modern workplace requires leaders who can manage not only resources but also people and relationships. Ethical leadership is increasingly important because organisations depend upon trust. Values such as integrity, responsibility, fairness, compassion and commitment can contribute to healthy leadership.

The traditional ideal of leadership can therefore be reinterpreted through contemporary concepts such as servant leadership, ethical leadership and socially responsible leadership.

Relevance to Social Harmony :

Contemporary societies are culturally and ideologically diverse. Social harmony requires tolerance, cooperation, empathy and respect for differences. The Ramayana, which has been interpreted and retold in numerous regional and cultural traditions, demonstrates the dynamic nature of cultural narratives.

Its different versions can themselves become a basis for appreciating cultural diversity. The contemporary relevance of the epic therefore lies not only in preserving a traditional narrative but also in encouraging dialogue about common human values.

Critical Perspective :

A theoretical discussion of the values of the Ramayana should acknowledge that ancient texts emerged within particular historical and cultural contexts. Not every social practice or relationship depicted in an ancient narrative can be directly transferred to modern society.

Contemporary society is based on principles such as equality, dignity, individual freedom, constitutional rights and gender justice. Therefore, traditional values should be interpreted critically. The value of duty can be retained without promoting blind obedience; family commitment can be encouraged without suppressing individual autonomy; sacrifice can be appreciated without encouraging self-neglect; and respect for tradition can coexist with critical thinking.

Discussion :

The Ramayana continues to occupy an important place in Indian cultural consciousness because it addresses universal psychological and social concerns. Individuals continue to experience conflicts involving duty and desire, loyalty and independence, power and responsibility, anger and self-control, and personal interest and collective welfare.

The contemporary relevance of the epic therefore lies primarily in the values and questions it generates rather than in literal replication of an ancient social order. Values such as integrity, compassion, responsibility, courage, emotional regulation and ethical leadership remain meaningful across historical periods.

From the perspective of positive psychology, several of these values can be connected with human strengths and flourishing. Compassion can promote positive relationships; self-regulation can facilitate goal achievement; courage can help individuals confront adversity; and meaning-oriented responsibility can provide direction to life.

At the same time, the application of traditional values requires contextual sensitivity. A healthy contemporary value system should integrate cultural wisdom with scientific understanding, human rights, equality and individual dignity.

Conclusion :

The Ramayana represents a significant source of ethical and cultural values within Indian civilization. Its emphasis on responsibility, integrity, family relationships, compassion, self-control, courage, loyalty and responsible leadership continues to have relevance in contemporary society.

The purpose of drawing upon these values today should not be to reproduce an ancient social structure without question. Instead, the underlying principles can be interpreted in ways that support psychological well-being, ethical decision-making, healthy relationships and social responsibility.

In a rapidly changing world characterised by technological advancement, increasing individualism and complex interpersonal challenges, value-based reflection has considerable importance. The Ramayana can serve as a cultural resource for such reflection when approached critically, inclusively and in harmony with contemporary democratic and humanistic principles.

Thus, the enduring contribution of the Ramayana lies not merely in its historical or religious significance but also in its capacity to stimulate reflection on the perennial question of how human beings can live responsibly, meaningfully and compassionately with one another.

References :

- Bandura, A. (1977). Social learning theory. Prentice-Hall.
- Baumeister, R. F., & Vohs, K. D. (Eds.). (2007). Encyclopedia of social psychology. SAGE Publications.
- Diener, E. (2000). Subjective well-being: The science of happiness and a proposal for a national index. *American Psychologist*, 55(1), 34–43.
- Frankl, V. E. (1984). Man's search for meaning. Washington Square Press.
- Kakar, S. (1978). The inner world: A psychoanalytic study of childhood and society in India. Oxford University Press.
- Radhakrishnan, S. (Ed.). (1953). The principal Upanishads. HarperCollins.
- Shweder, R. A., Mahapatra, M., & Miller, J. G. (1988). Culture and moral development. In N. Eisenberg (Ed.), *Social, emotional, and personality development* (pp. 130–204). Wiley.
- Snyder, C. R., & Lopez, S. J. (Eds.). (2009). *Oxford handbook of positive psychology*. Oxford University Press.
- Valmiki. (2009). *The Ramayana of Valmiki: An abridged translation* (A. A. Macdonell, Trans.). Penguin Classics.
- Verma, S. (2010). *The Ramayana: A cultural and psychological perspective*. Concept Publishing Company.



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :

www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 61-70

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL

Role of Animal Husbandry in Rural Development of Haryana

Dr. Satyawan Jatain

Associate Professor, GPGCW Rohtak, Haryana.

Abstract :

Animal husbandry occupies a strategically important position in the rural economy of Haryana, where agriculture has historically been the principal source of livelihood and livestock rearing has functioned as a complementary and relatively stable source of income. The importance of the sector has increased with rising pressure on agricultural land, increasing production costs, climatic uncertainty and the need to diversify farm incomes. Haryana has emerged as one of India's major milk-producing states despite possessing only about 2.1 percent of the country's bovine population. According to the latest Economic Survey of Haryana 2025–26, the state produced 125.93 lakh tonnes of milk in 2024–25, accounting for more than 5.11 percent of India's milk production, while per-capita milk availability reached 1,128 grams per day compared with the national average of 485 grams. The sector is supported by a large institutional network of veterinary facilities, genetic improvement programmes, dairy cooperatives, livestock credit, vaccination, mobile veterinary services and entrepreneurship schemes. Recent policy initiatives have further expanded the sector's role through women-oriented dairy finance, modern dairy farms, veterinary digitisation, new milk-processing plants and expansion of the Vita network. This article examines the historical evolution of animal husbandry in Haryana, its contribution to rural livelihoods and diversification, the present institutional and policy framework, major structural challenges and the future prospects of livestock-led rural development. It argues that the next phase of Haryana's rural development should move from simply increasing livestock numbers towards productivity-led, climate-resilient, technology-intensive and value-added livestock production.

Keywords : Animal husbandry, rural development, dairy farming, Haryana, Murrah buffalo, livestock, milk production, rural livelihoods, dairy cooperatives

1. Introduction :

Rural development in Haryana has traditionally been associated with agricultural productivity, irrigation expansion and the transformation brought about by the Green Revolution. Wheat, rice, cotton, mustard and sugarcane have played a major role in the state's agricultural economy, but livestock has always constituted an important complementary component of the rural production system. For millions of rural households, particularly those possessing small or medium landholdings, livestock provides a source of regular cash income that is fundamentally different from the seasonal income associated with crop production. Milk can be sold every day, livestock can serve as a form of productive wealth and manure can contribute to soil fertility. Consequently, animal husbandry is not merely an allied activity of agriculture; it is an important mechanism through which farm households diversify income, manage risk and generate employment.

The significance of this role is particularly relevant in contemporary Haryana. The state has experienced considerable structural transformation, with industry and services becoming increasingly important. At the same time, the agricultural sector faces problems associated with declining groundwater levels, rising input costs, environmental stress, crop-residue management and the limitations of continued dependence on a cereal-dominated production system. The Economic Survey of Haryana 2025–26 estimates the agriculture and allied sector's gross value added at ₹2,01,616 crore at current prices in 2025–26, while the overall state economy has become considerably more diversified. In this changing economic environment, animal husbandry provides an opportunity to strengthen the rural non-farm and farm-linked economy without completely abandoning agriculture.

The contemporary scale of the sector is substantial. Haryana produced 12,592.75 thousand tonnes, or 125.93 lakh tonnes, of milk in 2024–25. Milk production has increased from 10,726.09 thousand tonnes in 2018–19 to 12,592.75 thousand tonnes in 2024–25, despite some year-to-year fluctuations. The state now produces more than five percent of India's milk with only a small share of the country's bovine population. This disproportionate contribution reflects the relatively high productivity of Haryana's dairy animals and the importance of breeds such as the Murrah buffalo.

The purpose of this article is therefore to examine animal husbandry as an instrument of rural development in Haryana rather than simply as a livestock-production activity. The analysis focuses on historical evolution, economic and social contributions, recent government interventions, structural challenges and the policy measures required to realise the sector's future potential.

2. Historical Evolution of Animal Husbandry in Haryana :

The history of animal husbandry in Haryana predates the creation of the state in 1966. The agrarian communities of the region traditionally maintained cattle and buffaloes as integral components

of mixed farming systems. Animals supplied milk, draught power and manure, while livestock ownership also represented a form of household wealth. The importance of animal husbandry was strengthened by the region's agricultural ecology, availability of crop residues and the cultural significance of cattle and buffaloes.

Institutional development accelerated considerably after independence. The Department of Animal Husbandry and Dairying is one of the oldest administrative institutions associated with livestock development in the region. At the time Haryana was created in 1966, only 314 veterinary institutions were available in the newly formed state. The institutional network expanded dramatically over subsequent decades, reflecting the state's policy emphasis on veterinary health, breeding and livestock productivity.

The development of dairy cooperatives represented another important historical turning point. The Haryana Dairy Development Cooperative Federation, popularly associated with the Vita brand, evolved within the wider national movement towards cooperative dairying. A Dairy Corporation was formed in 1970, and after its restructuring the Haryana Dairy Development Cooperative Federation came into existence in 1977. The federation adopted the three-tier Anand pattern consisting of village-level milk producer societies, district-level milk unions and a state-level federation. This institutional structure was closely connected with the national expansion of Operation Flood, through which the Anand model of dairy cooperatives was replicated across India.

Haryana's livestock development also became strongly associated with the Murrah buffalo. The breed's native breeding tract includes central Haryana, particularly areas around Rohtak, Hisar and Jind. The Murrah is renowned for its milk-producing capacity and has become an important genetic resource not only for Haryana but also for buffalo improvement programmes throughout India. The ICAR-Central Institute for Research on Buffaloes at Hisar has played an important role in research, progeny testing and dissemination of improved Murrah germplasm.

The state's commitment to breed conservation was institutionalised through legislation. The Haryana Murrah Buffalo and Other Milch Animal Breed (Preservation and Development of Animal Husbandry and Dairying Development Sector) Act, 2001 provided a specific legal framework for the preservation and development of important milch breeds. Thus, Haryana's livestock sector has developed through the interaction of traditional livestock practices, state veterinary institutions, scientific breeding, dairy cooperatives and government policy.

3. Contemporary Scale and Economic Significance :

The most recent official data demonstrate the growing importance of livestock in Haryana's rural economy. The 20th Livestock Census recorded 7.05 million livestock and 46.29 million poultry

birds in Haryana in 2019. The state's livestock population included approximately 1.93 million cattle, 4.37 million buffaloes, 0.29 million sheep, 0.33 million goats and 0.11 million pigs. The dominance of buffaloes is particularly significant because dairy production in Haryana is strongly associated with the Murrah breed.

Milk production provides the clearest indicator of the sector's economic expansion. Haryana's milk production increased from 10.73 million tonnes in 2018–19 to 12.59 million tonnes in 2024–25. The latest national statistics place Haryana's 2024–25 milk production at 12,592.75 thousand tonnes, compared with 11,283.55 thousand tonnes in 2020–21.

The long-term increase is important because dairy income is less seasonal than crop income. A farmer can obtain cash flow from milk sales throughout the year, while the same livestock enterprise also generates calves and manure. This makes dairy particularly relevant to households seeking to smooth consumption and income across agricultural seasons. Livestock also creates demand for fodder cultivation, veterinary services, feed production, transport, milk collection, processing and retailing, thereby generating multiplier effects beyond the farm.

The productivity dimension is even more significant than the number of animals. According to the Government of India, total bovine productivity in Haryana increased from 7.69 kilograms per animal per day in 2014–15 to 10.70 kilograms in 2024–25, an increase of 39.14 percent. Buffalo productivity rose from 7.79 kilograms to 11.07 kilograms per animal per day over the same period. Milk production increased by about 59 percent, from 79.01 lakh tonnes in 2014–15 to 125.93 lakh tonnes in 2024–25.

The combination of high productivity and a strong dairy culture explains why Haryana contributes more to national milk production than its population of bovines alone would suggest. The Economic Survey 2025–26 reports that Haryana has approximately 2.1 percent of India's bovine population but contributes more than 5.11 percent of national milk production. Per-capita daily milk availability in the state is 1,128 grams, compared with 485 grams nationally.

Animal husbandry therefore contributes to rural development through at least three interconnected channels. First, it raises and stabilises household income. Second, it creates employment across production, input supply, processing and marketing. Third, it strengthens economic diversification by reducing excessive dependence on a small number of field crops.

4. Animal Husbandry and Rural Social Development :

The rural-development contribution of livestock extends beyond conventional measures of output. Livestock ownership can increase household resilience because animals constitute productive assets that can be liquidated when households face urgent financial requirements. Dairy income can

also be particularly important for women because milk production, feeding and animal care are frequently integrated with household activities. Consequently, expansion of dairy enterprises can strengthen women's economic participation when women have direct control over livestock assets, bank accounts, cooperative membership and marketing decisions.

Recent Haryana policy illustrates this potential. The 2026–27 state budget notes that interest-free loans of up to ₹1 lakh had been announced for women purchasing milch animals. Of 943 dairy units established in 2025–26, 316 were owned by women. The government has subsequently proposed a new scheme for modern dairy farms with capacity of up to 100 animals, with an allocation of ₹10 crore.

Livestock development also has a strong nutritional dimension. Milk, eggs and meat can improve access to animal-source protein and micronutrients. Haryana's exceptionally high per-capita milk availability illustrates the potential contribution of dairy to food and nutritional security. Poultry and small ruminants can further extend these benefits to households that cannot afford larger dairy animals.

The sector also supports rural entrepreneurship. Veterinary pharmacies, feed shops, fodder enterprises, milk collection centres, transportation services, artificial insemination services, small dairy processing units and retail outlets create opportunities outside conventional crop farming. Such activities are particularly important as rural youth increasingly seek non-farm employment without necessarily migrating permanently to cities.

5. Present Government Schemes and Institutional Support :

The contemporary policy architecture for animal husbandry in Haryana combines state schemes with centrally sponsored programmes. The latest Economic Survey reports a network of 2,884 government veterinary hospitals and dispensaries providing veterinary health and breeding services to approximately 71.26 lakh livestock. This institutional network constitutes the basic infrastructure upon which livestock-led rural development depends.

Animal health remains one of the principal areas of intervention. Free vaccination is provided against diseases including Foot-and-Mouth Disease, Haemorrhagic Septicaemia, swine fever, goat pox, sheep pox, PPR and other important livestock diseases. During 2024–25, 94.15 lakh livestock were vaccinated. The department also undertook deworming of 152.32 lakh animals during the same year. These interventions have a direct economic effect because disease reduces milk yield, reproductive efficiency and survival while increasing treatment costs.

Genetic improvement is another central pillar. During 2024–25, 11.58 lakh cows and 28.19 lakh buffaloes were artificially inseminated with high-genetic-potential semen. The state has also

supported the conservation of indigenous Haryana, Sahiwal and Belahi cattle and high-yielding Murrah buffaloes through incentives for superior animals. Under the Rashtriya Gokul Mission, Haryana has received central assistance and has implemented programmes involving artificial insemination, genetic improvement and conservation of indigenous breeds. Government data indicate that indigenous cattle numbers in Haryana increased by 16.94 percent between the 19th and 20th Livestock Censuses.

The state has also promoted livestock entrepreneurship. Subsidised dairy units are available for unemployed youth, including schemes covering small dairy units and interest subvention for larger dairy enterprises. Special support is provided to Scheduled Caste beneficiaries, while sheep and goat units receive substantial subsidy support. During 2024–25, 1,472 dairy units and 55 piggery units were established for Scheduled Caste beneficiaries under the relevant programme.

Credit availability has been strengthened through Pashudhan Kisan Credit Cards. By the time covered in the Economic Survey 2025–26, approximately 2.20 lakh such cards had been sanctioned, with ₹3,449 crore disbursed to livestock owners. This is particularly significant because working capital constraints are a major barrier to purchasing feed, medicines, fodder and livestock.

Mobile veterinary services represent another important institutional innovation. Haryana had 70 operational mobile veterinary units, providing veterinary and breeding services through a call-based system. The 2026–27 budget proposes another 20 units so that each Assembly constituency can have such coverage. The budget also proposes computerisation of animal husbandry institutions at a cost of ₹15 crore and establishment of a Veterinary Epidemiology Centre at Hisar at a cost of ₹30 crore.

Dairy processing and marketing are equally important. Haryana currently has six cooperative-sector milk plants, and the 2026–27 budget proposes two new milk processing plants at Rewari and Ambala, each with a capacity of five lakh litres per day and an estimated cost of ₹300 crore. The government has also proposed 2,000 new Vita booths and milk bars, with 20 percent reservation in booth allotment for women from self-help groups. Such measures can improve the link between rural producers and urban consumers while increasing the proportion of consumer expenditure captured by producers and cooperatives.

6. Major Challenges :

Despite its strong performance, Haryana's livestock sector faces structural challenges that could constrain future growth. The first is the availability and cost of feed and fodder. Dairy productivity depends heavily on balanced nutrition, yet fodder cultivation competes with food crops for land and water. Increasing feed costs can significantly reduce dairy margins, especially for small producers. The second challenge is water availability. Haryana's agricultural economy is already under substantial

groundwater stress. Dairy animals require water not only for drinking but also indirectly through fodder production. Thus, expanding livestock numbers without simultaneously improving water-use efficiency could intensify environmental pressures. The future objective should therefore be higher milk output per animal rather than simply increasing herd size.

A third problem concerns small and fragmented dairy enterprises. Smallholders may find it difficult to access high-quality breeding services, veterinary care, balanced feed, refrigeration, insurance and organised markets. The existence of government schemes does not automatically guarantee effective access. Administrative complexity, lack of awareness, documentation requirements and uneven institutional capacity can reduce the reach of otherwise well-designed programmes.

Animal disease remains another major risk. High livestock density and movement of animals increase the possibility of disease transmission. Climate change may further alter disease patterns and vector behaviour. The emphasis on vaccination, veterinary epidemiology and One Health in the 2026–27 budget is therefore particularly relevant.

The problem of stray cattle also illustrates the interaction between animal welfare and agricultural economics. Haryana has rehabilitated tens of thousands of stray cattle in gaushalas, but the persistence of the problem can result in crop damage, traffic risks and additional public expenditure. The long-term solution requires better livestock identification, reproductive management, economic incentives and responsible ownership rather than reliance solely on gaushalas.

Marketing is another concern. Although cooperative structures exist, not all producers necessarily enjoy equal access to organised procurement and value-added markets. A greater share of milk needs to enter formal value chains involving quality testing, cold chains, processing and branded products. This is essential if Haryana is to convert its high production base into higher rural incomes.

7. Policy Priorities for the Next Phase :

The next stage of livestock development in Haryana should be based on a shift from an expansion model to a productivity-and-value-addition model. The principal objective should be to produce more milk, meat and eggs from fewer and healthier animals while reducing the environmental footprint of production.

Genetic improvement should continue, but it should be accompanied by rigorous animal recording. Digital identification of animals, reproductive histories, milk yields, disease records and pedigree information can make breeding programmes substantially more efficient. Haryana's existing strength in Murrah buffaloes and indigenous cattle gives the state a strong foundation for developing a globally competitive genetic-resource economy.

Fodder security should become a dedicated policy priority. The state needs greater integration

between crop planning and livestock requirements, including promotion of fodder crops, silage, crop-residue treatment and community fodder banks. Crop residues that are currently viewed as waste can be converted into productive livestock feed through appropriate technologies. Such integration could simultaneously contribute to residue management and livestock productivity.

The dairy value chain should also be upgraded. Instead of concentrating primarily on liquid milk, Haryana can expand into cheese, paneer, yoghurt, probiotic products, milk powder, ghee, specialised buffalo-milk products and other high-value categories. The proposed expansion of processing capacity and Vita retail outlets provides an institutional basis for such diversification.

Women should be placed at the centre of this transformation. Credit programmes should be accompanied by ownership registration, training, digital financial inclusion, producer-group membership and market access. The fact that 316 of the 943 dairy units established in 2025–26 were women-owned demonstrates that targeted interventions can translate into enterprise ownership.

Insurance also requires greater attention. Livestock assets are vulnerable to disease, accidental death, climatic stress and market shocks. A simple, digitally administered livestock insurance architecture linked to animal identification and veterinary records could substantially reduce household risk.

Finally, Haryana should develop district-level livestock development plans rather than applying identical policies across the state. The production systems of Hisar, Jind, Rohtak and Bhiwani differ from those of Panchkula, Ambala, Nuh or Gurugram. District-level plans could integrate breed selection, fodder availability, water conditions, market access and processing infrastructure.

8. Future Prospects :

The prospects for animal husbandry-led rural development in Haryana are considerable. The state's strong genetic base, established dairy culture, high milk productivity, proximity to the National Capital Region and relatively developed road and market infrastructure provide important competitive advantages. Delhi-NCR represents a large and high-value market for milk and processed dairy products, reducing the logistical barriers faced by producers in more remote regions.

The future is likely to be shaped increasingly by technology. Artificial intelligence can potentially support disease prediction, heat detection, reproductive management, feed optimisation and milk-quality monitoring. Sensors and Internet-of-Things devices can provide information about animal health and productivity, while digital platforms can connect producers with veterinarians, financial institutions and markets.

The One Health approach is particularly promising. The integration of animal health, human health and environmental management can reduce the risks associated with zoonotic diseases while

improving surveillance and emergency response. Haryana's proposed Veterinary Epidemiology Centre and Animal Husbandry Training Centre indicate that policy is beginning to recognise this broader relationship.

Climate-resilient livestock production will become equally important. Heat stress can significantly affect milk yield and fertility, particularly in high-producing animals. Future investment should therefore include climate-resilient housing, cooling systems, shade, water management, heat-tolerant genetic selection and improved feeding practices. Solar energy can also reduce the operating costs of dairy farms and milk chilling centres.

The greatest opportunity, however, lies in combining animal husbandry with rural industrialisation. A village-level dairy economy can generate a network of economic activities extending from fodder cultivation to animal health, milk collection, transportation, chilling, processing, packaging, branding and retailing. The result can be a rural value chain rather than a simple livestock enterprise.

9. Conclusion :

Animal husbandry has evolved from a traditional subsidiary activity of Haryana's farming households into a major pillar of the state's rural economy. Its contribution is visible not only in milk production but also in income diversification, employment generation, nutritional security, women's entrepreneurship, credit demand, cooperative development and rural industrialisation. Haryana's production of 125.93 lakh tonnes of milk in 2024–25, together with per-capita milk availability of 1,128 grams per day, demonstrates the scale and productivity of the sector.

The historical development of veterinary institutions, dairy cooperatives, Murrah buffalo improvement and state-supported breeding programmes has created a strong institutional foundation. More recently, Pashudhan Kisan Credit Cards, mobile veterinary units, vaccination programmes, entrepreneurship subsidies, women-oriented dairy finance and expansion of processing infrastructure have strengthened the sector's development potential.

Nevertheless, future success cannot depend on increasing livestock numbers alone. Feed scarcity, water stress, animal disease, climate change, small-scale production, marketing weaknesses and the persistence of stray cattle require a more integrated policy response. The appropriate objective is to increase productivity per animal, strengthen producer institutions, reduce production risks and capture a larger share of value through processing and branding.

The 2026–27 budget indicates a significant policy movement in this direction through new veterinary facilities, additional mobile units, computerisation, modern dairy farms, veterinary epidemiology infrastructure, new milk plants and expansion of Vita outlets. If these interventions are

implemented effectively and integrated with fodder security, digital livestock management, climate adaptation, women's entrepreneurship and cooperative value chains, animal husbandry can become one of the most important engines of inclusive rural development in Haryana.

The future of Haryana's rural economy therefore need not be defined exclusively by the productivity of its fields. Increasingly, it can be defined by the productivity of the complete farm system in which crops, livestock, people, markets and natural resources function as an integrated economic unit. Animal husbandry, particularly dairy farming, has the potential to occupy the centre of that system and contribute substantially to Haryana's transition towards a more diversified, resilient and value-oriented rural economy.

References :

- Department of Animal Husbandry and Dairying, Government of India. (2025). *Basic Animal Husbandry Statistics 2025*. Government of India.
- Department of Animal Husbandry and Dairying, Government of India. (2026). *Rashtriya Gokul Mission in Haryana*. Press Information Bureau, Government of India.
- Department of Economic and Statistical Affairs, Government of Haryana. (2026). *Economic Survey of Haryana 2025–26*. Government of Haryana.
- Department of Economic and Statistical Affairs, Government of Haryana. (2025). *State Statistical Abstract of Haryana 2024–25*. Government of Haryana.
- Finance Department, Government of Haryana. (2026). *Budget 2026–27: Budget Speech*. Government of Haryana.
- Government of Haryana, Department of Animal Husbandry and Dairying. (2022). *Brief introduction*. Government of Haryana.
- Haryana Dairy Development Cooperative Federation Limited. (2026). *Introduction and institutional history*. Government of Haryana.
- ICAR-Central Institute for Research on Buffaloes. (2026). *Murrah buffalo and research achievements*. Indian Council of Agricultural Research.
- India Code. (2001). *The Haryana Murrah Buffalo and Other Milch Animal Breed (Preservation and Development of Animal Husbandry and Dairying Development Sector) Act, 2001*. Government of India.
- Ministry of Fisheries, Animal Husbandry and Dairying, Government of India. (2026). *State-wise livestock and poultry population as per the 20th Livestock Census*. Government of India.
- Press Information Bureau. (2026). *Production and consumption of milk: State-wise estimates*. Government of India.
- Press Information Bureau. (2026). *Rashtriya Gokul Mission in Haryana*. Government of India.



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 71-77

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL

कृष्ण बलदेव वैद की कहानियों में मध्यवर्गीय समाज के जीवन की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति

डॉ० अजय सिंह चौहान, शोध निर्देशक,

असि० प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, फिरोज गांधी कॉलेज, रायबरेली।

सोनू, शोधार्थी,

हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

शोध पत्र का सारांश -

हिन्दी कथा साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का फलक हमेशा स्पष्ट रहा है। इसका पहला कारण यह है कि मूल रूप से रचनाकार इसी वर्ग के हैं। हमारे समाज के कई प्रकार के परिवर्तनों का सीधा संबंध इस वर्ग से है, इसी वर्ग को लेकर है। यही मध्यवर्ग इन तमाम सच्चाइयों का गवाह है, जिसके पास समय का पूरा इतिहास है। साहित्य के विभिन्न युगों ने इसी मध्यवर्ग की गतिविधियों से परिचय कराया है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि मध्यवर्गीय जीवन कथा साहित्य का केन्द्रीय मुद्दा रहा है। समकालीन कथाकारों की दृष्टि मध्यवर्ग की असंगतियों, मजबूरियों और कमियों पर ही अधिक पड़ी है। जीवन के सभी क्षेत्रों में चाहे आर्थिक हो, राजनीतिक हो, पारिवारिक हो या सांस्कृतिक यह वर्ग प्रश्न-संकुल है, और अपना अस्तित्व धीरे-धीरे खोता रहा है। उपन्यासों की अपेक्षा वैद की कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन की गतिविधियाँ स्पष्ट लक्षित होती हैं। वैद के समकालीन कहानीकारों की इस कोटि में आनेवाली कहानियों से इन कहानियों का अंतर साफ स्पष्ट है कि इन कहानियों में कहीं भी भावुकता नहीं है। स्थितियों को बिल्कुल गैर-रोमांटिक दृष्टि से देखा गया है। इसके अलावा इन कहानियों में हास्य-विनोद के परे, व्यंग्य-विडंबना का शायरनीश का जो संतुलित उपयोग किया गया है, जिसके कारण इन कहानियों की एक खास, अलग पहचान है। इसलिए कथ्य की दृष्टि से यह परंपरागत कहानियों के निकट होते हुए भी प्रस्तुतीकरण की नवीनता के कारण इन कहानियों का दूसरी दृष्टि से अध्ययन जरूरी हो जाता है।

बीज शब्द -

फलक, संबंध, पारिवारिक, अस्तित्व, भावुकता, विडंबना, उपयोग, नवीनता, ललक, कंजूस, बावजूद, पाबन्द, मकान, कपड़े, सिगरेट, रियायत, अमंगल, हमदर्दी, अनुरूप आदि।

लेख :

कृष्ण बलदेव वैद जी के संपूर्ण साहित्य की विशेषताओं की चर्चा करते समय हमारा ध्यान सर्वप्रथम उनके

कथन की गहरी व्यंग्यात्मक शैली पर ही पड़ता है। कहीं-कहीं यह हास्य-विनोद के निकट है, तो अधिकांश रचनाओं में यह आयरनी तक पहुँच चुकी है। उनकी आरंभिक रचनाओं से लेकर नवीनतम रचना में भी इसी विशेषता को देखा जा सकता है। इस दृष्टि से उनकी कुछ कहानियाँ — ‘एक बदबूदार गली’, ‘बुढ़िया की गठरी’ ‘माई की महिमा’, ‘लछमन सिंह’, ‘कोलाज’ आदि उल्लेखनीय हैं, जिनमें मध्य-वर्गीय जीवन और उससे संबंधित कार्य-कलापों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य और आयरनी का सहारा लिया गया है।

‘माई की महिमा’ नामक कहानी में माई, माया नामक एक अमीर बुढ़िया के द्वारा हिन्दू समाज की कंजूसी और धन-दौलत की ललक को व्यंग्यात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। सूदखोरी और महाजनी सभ्यता हिन्दू धर्म की अपनी विशेषता है। इस बहाने ये लोग भारी संपत्ति इकट्ठा करते हैं लेकिन बावजूद इसके ये अक्सर कंजूस दिखाई पड़ते हैं। अपने आपको दूसरों से विशेषकर पड़ोस के लोगों से अलग रखने की कोशिश, अपने आपको गरीब दिखाने की इच्छा आदि इनकी निजी विशेषताएँ हैं। कहानी की पात्र, माई एवं माया में ये सारी विशेषताएँ मौजूद हैं। प्रस्तुत कहानी में लेखक माई, माया और गली वालों के बीच के पारस्पर्य के द्वारा यह दिखाने की कोशिश करता है कि समाज के एक विशेष वर्ग के व्यक्ति से दूसरे वर्ग के लोग किस प्रकार प्रतिकृत होते हैं।

माई, माया गली की अमीर बुढ़िया हैं, जो साहूकारी के अलावा घी का व्यापार भी करते हैं। वह बेऔलाद हैं और बाल विधवा हैं। उसका मकान बड़ा और दुमंजिला है। माई बहुत बुढ़िया है जिसकी उम्र वाली गली वालों की राय गाँधी जी की उम्र से भी ज्यादा है। उसके पास जितनी संपत्ति थी, उतनी कंजूसी भी। ये सारी विशेषताएँ उसकी दुर्बलताएँ हैं, तो उसकी अपनी खूबियाँ भी हैं। उसकी अपनी कुछ मान्यताएँ हैं, जिसके कारण उसका व्यक्तित्व गली वालों से बिल्कुल भिन्न दिखाई पड़ता है। सफाई की पाबन्द बुढ़िया हमेशा अपने बड़े मकान को साफ-सुथरा रखना चाहती है। इसलिए मकान किराये पर लेने आने वालों को कई प्रकार की शर्तों को निभाना पड़ता है, जिनमें माई का अनोखा व्यक्तित्व खूब प्रतिफलित होता है। ‘हर रोज सुबह-शाम फर्श धोने होंगे, और कपड़े हफ्ते में सिर्फ एक बार। दीवारों पर कोई तस्वीर या कलेंडर नहीं टांगना होगा। किसी किस्म का मांस नहीं पकाना होगा। रात के वक्त सिगरेट नहीं पीना होगा। बच्चों की संख्या ज्यादा नहीं होनी चाहिए और उन्हें हिदायत हो कि सीढ़िया उतरते-चढ़ते अपनी जान और सीढ़ियों का एक-सा ख्याल रखें। धूँएँ वाली लकड़ियाँ नहीं जलानी होंगी। उस मकान में कोई शादी या मुंडन उसकी मंजूरी के बगैर नहीं होगा जरूरत से ज्यादा मेहमानों का आना-जाना न रहेगा।’

इन अनोखे आचरणों के कारण और अपनी जन्मजात ईर्ष्या और कंजूसी के कारण गली वाले माई से नफरत करते हैं, विशेषकर स्त्रियाँ। वे उन्हें चुड़ैल और कंजूस कहती हैं यहाँ तक कि उसका नाम लेना भी अमंगल का सूचक कार्य मानती हैं — ‘औरते अपने बच्चों को जगाने के लिए आवाजें देती तो कहती अरे बेटा, जागो न, उस चुड़ैल को उठे चार घंटे हो गये और फिर कुछ सोच-कर कहती, राम! राम! आज दिन न जाने कैसे गुजरेगा, सुबह-सबरे उस मनहूस का नाम ले लिया।’² दरअसल इस विरोध का कारण नारी सुलभ ईर्ष्या ही है। बुढ़िया की उन्नति पर ये स्त्रियाँ अवश्य ईर्ष्यालु हैं, जो उसकी हर हरकत पर किसी न किसी प्रकार के दोष को ढूँढ़ निकालती हैं। कहानी के अन्त में बुढ़िया अपनी अनुपस्थिति में अपने मकान की निगरानी जब एक मुसलमान युवक को सौंप देती है तो गलीवालों का विरोध और तेज हो जाता है और ये तरह-तरह के निष्कर्ष

लगाने लगते हैं। क्योंकि गली पूर्ण रूप से हिन्दुओं की थी। लेकिन बुढ़िया ने तो जान-बूझकर ही ऐसा किया था। वह जानती थी कि गली में उससे हमदर्दी रखनेवाला कोई नहीं है, इसलिए यह काम उसने मुसलमान युवक को सौंप दिया।

इस कहानी में एक ही गली में रहने वाले लोगों की मानसिकता एवं अंतर्विरोधों को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। दूसरों की धन-दौलत और उनके अलग व्यक्तित्व के कारण उनको शक की दृष्टि से देखना, तरह-तरह की अफवाहें निकालना, तथा भारी संपत्ति के बावजूद अपने को गरीब दिखाने की छटपटाहट इत्यादि मध्यवर्ग की बुनियादी कमजोरियों को माई, माया और गली वालों की गतिविधियों के द्वारा दिखाया गया है। कहानीकार ने इन दो वर्गों की विशेषताओं का प्रस्तुतीकरण न करके उनके बीच के टकराहट और उससे उत्पन्न नयी स्थितियों पर ही अधिक बल दिया है।

‘लछमन सिंह’ नामक कहानी में नौकर और मालिक के बीच सम्बन्धों में आये परिवर्तनों को नयी दृष्टि से देखा गया है। नौकर-मालिक की पुरानी मान्यता कहाँ तक निरर्थक हो गयी है और बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप जो नए पहलू उभरकर आये हैं, यही इस कहानी का मर्म है।

लछमन सिंह एक ऐसा नौकर है, जो अपनी गरीबी के बावजूद अपने अहं को चोट नहीं पहुँचने देता। इसलिए ही वह हर एक नौकरी से छुटकारा पाकर दूसरों की तलाशी में लगा रहता है। हर बार नौकरी छोड़ने का उसके पास खास कारण है, जिसमें देखा जा सकता है कि उसके मन पर कहीं चोट पहुँची हो। एक साहब के यहाँ से नौकरी छोड़ देने का कारण वह भी बताता है।

‘बात दरअसल यह हुई भाईसाहब कि वह साहब हर रोज शराब पीता था और देर तक नशे में बकता-भकता रहता। एक रोज उसने मुझको भी गाली दे दी वैसे उसकी मेम भी मुझे पसन्द नहीं थी। हमेशा नाक-भौं चढ़ाये रहती। मैंने सोचा, लछमन सिंह नौकरी ही करनी है तो इज्जत से कर। तुझे क्या कोई साहब है तो अपने घर का। बस भाई साहब उसी रोज मैंने साहब के सामने हाथ जोड़ दिया।’³

इस प्रकार के प्रबल अहं के अलावा लछमन सिंह की, एक और विशेषता यह है कि वह मालिक-नौकर के संबंधों में कोई विभाजन-रेखा खींचना नहीं चाहता। अनधिकार मालिक के जीवन में प्रवेश करना भी वह गलत नहीं समझता। यह नौकर के बदले हुए दृष्टिकोण के कारण भले ही हो, लेकिन नौकर जाति की यह मानसिक प्रौढ़ता मालिक को बर्दाश्त के बाहर होती है। उनकी मानसिकता इस विकास को स्वीकृति नहीं, जिसके कारण नौकर-मालिक के संबंध में दरारें पैदा होती हैं। इन्हीं दरारों की व्यंग्यात्मक प्रस्तुति कहानी में हुई है। अनिल के यहाँ लछमन सिंह का जीवन खुश तो था, लेकिन जब अनिल की नयी बीबी शकुन्तला भी वहाँ पहुँची तो समस्याएँ उत्पन्न होने लगीं। शकुन्तला को लछमन सिंह का व्यवहार बेहद अटपटा और अखरनेवाला लगा है। उसको लगता है कि लछमन नौकर की भूमिका को छोड़कर मालिक की भूमिका तक पहुँचने की कोशिश कर रहा है। ढाबे में खाना खाने के बाद लछमन सिंह का तीनों का बिल चुकाना, घर में अनिल और शकुन्तला को भाई साहब तथा भाभी कहकर पुकारना, उनकी बेटी मीटू को फराक खरीदकर देना आदि शकुन्तला के मन को आघात पहुँचाने वाली घटनाएँ हैं। जिसके कारण वह कई आरोप नौकर पर लगाने की कोशिश भी करती है। अनिल से वह बार-बार कहती है कि — ‘नौकर न हुआ, अफसर हो गया हमारा। बात-बात पर नाराज। सौ बार कहा है, निकाल परे करो इसे, हम बिना नौकर के अच्छे। जितना हम सब मिलाकर नहीं खाते, उतना यह अकेला खा

जाता है उस पर नाराजगी की यह धौंस अलग।⁴

शुरू में अनिल को अपनी कोई शिकायतें नहीं थीं, लेकिन बाद में वह भी अपनी पत्नी की तरह तरह-तरह के आरोप लगाने लगता है — ‘अनिल की खास शिकायतों में से एक यह थी कि लछमन सिंह को जब पैसों की आवश्यकता पड़ती, तो बजाय माँगने के, सीधे उसके कोट की तरफ लपकता और यूँ जेब में हाथ डाल देता जैसे उसका अपना कोट हो।’⁵

नौकर और मालिक के बीच का यह तनाव उनकी बढ़ती हुई मानसिकता का परिचायक है। कहानी के अंत में लछमन सिंह अनिल के यहाँ की नौकरी छोड़कर नरेटर के यहाँ नौकरी करने लगता है। नरेटर को भी उन्हीं अनुभवों से गुजरना पड़ता है, जिनसे अनिल और शकुन्तला को गुजरना पड़ा था। नरेटर कहता है — ‘जब वह (लछमन सिंह) गुनगुनाता है तो अंजना (नरेटर की पत्नी) की भवें तन जाती हैं। जब बढ़-बढ़कर मेहमानों से बातें करता है तो हम दोनों अन्दर ही अन्दर बुरा मानते रहते हैं। जब उसका दोस्त उससे मिलने आता है तो अंजना उससे नाराज होती है।’⁶

ठीक यही हालत लछमनसिंह की भी होती है। वह नरेटर और अंजना के यहाँ नौकरी से भी ऊब चुका है और नरेटर को लगता है कि कुछ दिनों के अंदर वह उधर का काम छोड़कर चला जाएगा। ‘लेकिन मेरा अंदाजा है कि लछमनसिंह इससे पहले ही हमारे यहाँ से चला जायेगा क्योंकि एक दिन मैंने उसे अपने पड़ोसवाले मद्रासी बाबू से फुसर-फुसर करते देखा था और सुना था। वह कुछ वैसी ही बातें थी, जैसी वह मुझसे उस समय किया करता था, जब वह अनिल के यहाँ रहता था।’⁷

यह कहानी, उस नौकर की अनाधिकार चेष्टा की कथा नहीं है बल्कि अपनी वर्गीय अस्मिता पर गर्व करने वाले लोगों की मानसिकता की भी है। ‘नौकर’ शब्द पर जो जोर है, उसके साथ-साथ फासले की बात पर भी विश्वास करते हैं। उनमें मध्यवर्गीय (जो कि उच्च वर्गीयता का आभास अपने भीतर करता है) चेतना इसी प्रकार कार्य करती हैं। ‘भगवान के नाम सिफारिश चिट्ठियाँ’ एक ऐसी कहानी है, जिसमें व्यंग्यात्मक शैली में दिन-ब-दिन बढ़ती जाने वाली ‘सिफारिशी जिंदगी’ का सच्चा स्वरूप अंकित है। आज के जन-जीवन में सिफारिश की जरूरत इतनी बढ़ गयी है कि इसके बिना कोई भी काम संभव प्रतीत नहीं होता। सिफारिश के माध्यम से बड़े-बड़े व्यक्तियों को अपने वश में किया जा सकता है, इसलिए ही कहानी का नायक बूढ़ा भगवानदास भगवान के पास कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशी चिट्ठियाँ लेकर जाने के लिए उद्यत हो जाता है।

भगवानदास ने जब अपनी मृत्यु के आगमन को देखा, तो उसके मन में यह ख्वाहिश उठी थी कि परलोक जाते वक्त भगवान के नाम कुछ चिट्ठियाँ भी साथ ले जाए जो समाज के विभिन्न क्षेत्रों के महान व्यक्तियों की हों। इस उद्देश्य से वह पाँच व्यक्तियों से चिट्ठी हासिल करता है— डॉक्टर, पुजारी, वेश्या, राजदूत और अपने नौकर राम असार से। इन पाँचों के चुनाव में व्यंग्य का गहरा पुट है। कि ये पाँच व्यक्ति समाज के ऐसे प्रतिनिधि हैं, जिनका प्रभाव लोगों पर हैय विशेषकर भगवानदास जैसे अमीर व्यक्ति पर। जो भी हो, भगवान इन सिफारिशी चिट्ठियों को देखकर बहुत प्रभावित होता है। वह अपने प्रिय भक्त राम असार को वहाँ से निकालकर भगवानदास को वहाँ स्थान देते हैं।

‘भगवान अपने भक्त के झाँसे में आ गये। राम असार को उसी वक्त बाहर धकेल दिया गया। भगवान दास की लायी हुई चिट्ठियाँ पढ़कर भगवान को सुनायी गयीं। भगवान ने उठकर भगवानदास को गले लगा लिया और

भगवान—दास की आँखों में मोटे—मोटे गर्म आँसू भर आये।⁸

यह व्यंग्यात्मकता का अच्छा साक्ष्य है, जो हमें इस कहानी में देखने को मिलती है। डॉक्टर, पुजारी, वेश्या आदि से भगवानदास की भेंट और बातचीत में तीखे व्यंग्यात्मक शैली का अनोखा पुट है, जिसमें समाज के ऐसे वर्ग के प्रति विद्रोह साफ—स्पष्ट दिखता है। 'एक बदबूदार गली' में व्यंग्य के सहारे वर्तमान भारतीय समाज की झाँकी प्रस्तुत की गयी जो छोटे—छोटे और तरह—तरह के चित्रों से भरा चित्रफलक सा लगता है। इसमें भारतीय समाज की वर्तमान अवस्था की तुलना एक बदबूदार गली से की गयी है, जिसकी स्थिति इतनी खतरनाक है कि नाक पर रुमाल रखे बिना वहाँ प्रवेश करना मुश्किल है। इसलिए चेतावनी के रूप में कहानी का 'नरेटर' कहता है— 'आप नाक पर रुमाल रख ही लें, यह गली बहुत गन्दी है। हो सकता है कि रुमाल से भी कोई फर्क न पड़े। कहते हैं एक बार एक अमेरिकन मेम रास्ता भूलकर इसी गली में आ घुसी थी और बेहोश होकर गिर पड़ी थी। लेकिन आप तो घबराइए नहीं, आप तो इस देश के बाशिन्दे हैं ना। फिर भी एहतियातन नाक पर रुमाल रख ही लीजिए। आप चिंता न करें। मैं तो इसी गली का हूँ, मुझ पर यह बदबू कोई असर नहीं करेगी।'⁹

प्रस्तुत कहानी में गली और उसकी बदबू दो ठोस प्रतीकों के रूप में आये हैं, जो क्रमशः वर्तमान भारतीय समाज और उसकी सड़ी—गली जिंदगी का प्रतिनिधित्व करते हैं। कहानी में आगे गिने—चुने पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के चित्रण के माध्यम से यही दिखाया है कि यह गली इतनी बदबूदार क्यों हो गयी। इस कहानी के प्रमुख पात्र विधवा पाशो, उसकी दो बेटियाँ, चुड़ैल बुढ़िया, फूलो और उसका पति रामदयाल, और बूढ़ा मोची आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

पाशो और उसकी दो लड़कियाँ ऐसे प्रतिनिधि चरित्र हैं, जिनमें मध्यवर्ग की मूलभूत विशेषताएँ विद्यमान हैं। पाशो एक गरीब विधवा है, जिसे अपनी दो जवान बेटियों की देखभाल करने के लिए जी तोड़ मेहनत करनी पड़ती है। गरीबी और अभावग्रस्तता के बावजूद उसके मन में कुल—परिवार की इज्जत की भावना अधिक ठोस है। उसकी पवित्रता में कलंक डालने वाली बातों का वह सख्त विरोध करती है। इसकी मिसाल उसके द्वारा अपनी लड़कियों पर कड़ी निगरानी से देखा जा सकता है, जिसकी गलीवाले भी सराहना करते हैं। 'इतनी मुद्दत कुँवारापन में गुजार दी। मगर क्या मजाल कि उसकी लड़कियों ने किसी भी तरफ आँख उठाकर भी देखा हो। गली वाले दिल ही दिल में पाशो की इस कड़ी निगरानी की बहुत इज्जत करते हैं।'¹⁰ छोटे—छोटे झगड़े गाली—गलौज आदि इस घर की रोज की घटनाएँ हैं लेकिन इनके होते हुए भी पारिवारिक विघटन की क्षीण रेखा भी वहाँ नहीं है।

लेकिन इसके ठीक विपरीत स्वभाव वाली चुड़ैल बुढ़िया एक ऐसा चरित्र है— जिसको गली की बू को बदबू में परिणत करने में बड़ा हाथ है। वह वेश्यावृत्ति करके जीवन बिताती है और उसका मकान सभी प्रकार की बदमाशी का अड्डा है। वह इतनी निर्भीक और निर्लज्ज है कि गली में खुलेआम घोषणा करती फिरती है कि— 'जिस किसी को पैसे की तंगी हो, वह रात को थोड़ी देर के लिए अपनी बहु या बेटी को उसके मकान में भेज दे।'¹¹ बुढ़िया का बुरा प्रभाव गली के दूसरे लोगों पर भी पड़ा है। इसके कारण ही फूलो और उसके पति रामदयाल के जीवन में बिखराव आया है।

इन प्रमुख चरित्रों के अलावा बूढ़ा मोची, बूढ़ा, बुढ़िया हमेशा लड़ने—झगड़ने वाले बिसाती, उसकी बीवी लछमी और उसके परिवार के सदस्य आदि भी गली के अजीब चरित्र हैं। ये सारे चरित्र मिलकर गली को जो

बदबू प्रदान करते हैं वही गली की पहचान बन गयी है। यों वैद की कहानी व्यंग्य के गहरे स्तर को छू लेती है।

‘बुढ़िया की गठरी’ नामक कहानी में भी प्रतीकात्मक शैली से समकालीन भारतीय समाज का असली चित्र खींचने का प्रयास किया गया है। जिसमें ‘बुढ़िया’ भारत—माता और शठरीश भारत की विरासत के प्रतीक हैं। इसमें समकालीन भारत की उजड़ी हुई स्थिति का उतना वर्णन नहीं है, जितना इस स्थिति के बारे में तरह—तरह के निष्कर्ष लगाने वालों की मानसिकता का। इनमें परम्परावादी, प्रगतिशील, युक्तिवादी, क्रान्तिकारी एवं नौजवान लोग भी हैं। इनके वक्तव्यों के माध्यम से कहानीकार ने इनके खोखलेपन और झूठी देश—प्रेम की भावना का पर्दाफाश किया है।

कुछ परम्परावादी लोग ऐसे हैं जो अब भी भारत के अतीत के गौरव को महत्वपूर्ण मानते हैं। ये लोग देश की वर्तमान अवस्था को महत्व नहीं देते, बल्कि पुरानी गरिमा का गुणगान करते दिखाई देते हैं। उनकी दृष्टि में देश की दुरावस्था का कारण दिन—ब—दिन बढ़ता हुआ शहरीकरण है। इस दुरावस्था से बचने का उनकी दृष्टि में एक ही रास्ता है कि भारत के गरिमामय अतीत का पुनरीक्षण और पुनर्मूल्यांकन करके उसकी आत्मा को फिर गाँवों में ही रोपित होने का मौका देना।

कुछ दूसरे प्रकार के लोग, जो अधिक व्यावहारिक नजर आते हैं, उनकी राय में उस भव्य अतीत के गौरवगान करने से कोई फायदा नहीं है, बल्कि इसकी जगह नयी—नयी प्रणालियों के माध्यम से समस्याओं का समाधान ढूँढना है। इस कोशिश में उस भव्य अतीत को कुर्बान भी करना पड़ता है तो उसमें दोष नहीं है। देश को फिर गाँवों की महिमा की ओर ले जाना इनकी दृष्टि में पिछड़ापन है। ‘ये लोग बुढ़िया को या उसकी औलाद को वापस उसके गाँव में भी नहीं भेजना चाहते क्योंकि वैसा करना उनकी नजर में पिछड़ेपन का पीछा करना होगा। वे चाहते हैं कि बुढ़िया को उसके शहरी बेटों और दामादों के हवाले कर दिया जाए कि वे उसकी मुनासिब देख—रेख कर सकें, उसे अच्छी खुराक और दवा—दारु खिला—पिला कर अगर दोबारा जवान नहीं तो कम से कम थोड़ा और अर्धेड़ तो जरूर बना ही दें।’¹²

इसका विरोध करते हुए देश—भक्त लोग चिल्लाते रहते हैं कि भारत से उसके अतीत की गरिमा नहीं हड़पनी चाहिए। उनकी राय में उस अतीत की गहराइयों में अब भी ऐसी अनेक चीजें हैं, जिनका फायदा समकालीन संदर्भ में भी हो सकता है। क्रान्तिकारी लोगों का कहना है, ये पुरानी रूढ़ियाँ, संस्कृति सबको चकनाचूर करना है, तभी भारत की अवस्था सुधरेगी। यही नहीं, वे यहाँ तक मानते हैं कि इस प्रकार के परम्परा—मोह के कारण हमारी प्रगति कुंठित हो जायेगी क्योंकि यह परम्परा मोह आधुनिक मानव के ऊपर एक बोझ बन गया है। कुल मिलाकर यह कहानी भारतीय मध्यवर्गीय दृष्टिकोण से सम्बाधित है। इनमें तरह—तरह के लोग हैं। इसलिए बदलाव नहीं दूर दिखता है और बदलाव के लिए उछाले गये वक्तव्यों और नारों की मध्यवर्गीय स्थिति बरकरार रहती है।

संदर्भ—सूची :

1. कृष्ण बलदेव वैद — ‘माई की महिमा’ कहानी—(खामोशी) कहानी संग्रह में संकलित, पृ. 83
2. कृष्ण बलदेव वैद — ‘माई की महिमा’ कहानी—(खामोशी) कहानी संग्रह में संकलित, पृ. 88

3. कृष्ण बलदेव वैद — 'लछमन सिंह' कहानी—(खामोशी) कहानी—संग्रह में संकलित, पृ. 74
4. कृष्ण बलदेव वैद — 'लछमन सिंह' कहानी—(खामोशी) कहानी—संग्रह में संकलित, पृ. 78
5. कृष्ण बलदेव वैद — 'लछमन सिंह' कहानी—(खामोशी) कहानी—संग्रह में संकलित, पृ. 79
6. कृष्ण बलदेव वैद — 'लछमन सिंह' कहानी—(खामोशी) कहानी संग्रह में संकलित, पृ. 81
7. कृष्ण बलदेव वैद — 'लछमन सिंह' कहानी—(खामोशी) कहानी—संग्रह में संकलित, पृ. 81
8. कृष्ण बलदेव वैद — 'भगवान के नाम सिफारिशी चिट्ठियाँ' कहानी—(खामोशी) कहानी—संग्रह में संकलित पृ. 116
9. कृष्ण बलदेव वैद — 'एक बदबूदार गली' कहानी—(खामोशी) कहानी—संग्रह में संकलित, पृ. 56
10. कृष्ण बलदेव वैद — 'एक बदबूदार गली' कहानी—(खामोशी)—कहानी—संग्रह में संकलित, पृ. 57
11. कृष्ण बलदेव वैद — 'एक बदबूदार गली' कहानी—(खामोशी) कहानी—संग्रह में संकलित, पृ. 59
12. कृष्ण बलदेव वैद — 'बुढ़िया की गठरी' कहानी—(खामोशी)—कहानी संग्रह में संकलित, पृ. 135

ईमेल : sonu7860580375@gmail.com

Mob: 7860580375



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 78-83

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

आधुनिक हिंदी कविता में पर्यावरणीय चेतना : प्रकृति और मनुष्य के बदलते संबंधों के संदर्भ में

शाइस्ता सना

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

सारांश -

पूरे ब्रह्मांड में केवल पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है, जहां पर जीवन संभव है। पृथ्वी पर जीवन बनाए रखने के लिए हमें पर्यावरण की मौलिकता को बनाए रखना अति आवश्यक है। मनुष्य हो या कोई अन्य जीव-जन्तु, सभी पर्यावरण की उपज हैं। उनकी उत्पत्ति, विकास, वर्तमान स्वरूप एवं भावी अस्तित्व सभी पर्यावरण की परिस्थिति पर ही निर्भर करता है। पर्यावरण विभिन्न भौतिक, रासायनिक और जैविक घटकों से निर्मित है जो एक दूसरे के साथ और मानवीय गतिविधियों के साथ मिलकर क्रिया करते हैं। पर्यावरण का मानव जीवन में सर्वोपरि स्थान है। पर्यावरण के बिना पृथ्वी पर मानव जीवन की कल्पना कर पाना लगभग सम्भव है। पर्यावरण चेतना में केवल प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन नहीं होता, बल्कि यह लगातार पेड़ों की कटाई, प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग के खिलाफ आवाज उठाता है। इसी को रेखांकित करते हुए इस शोध पत्र में इस बात की चर्चा की गई है कि समकालीन हिन्दी कविता ने अपने अंदर पर्यावरण को कैसे समाहित किया हुआ है।

बीज शब्द - पर्यावरण, ब्रह्मांड, मानव, जीव-जंतु, पृथ्वी, जल, समुद्र, वन, नदी, पहाड़, समाज, सम-सामयिक परिस्थिति।

मूल आलेख -

पर्यावरण मूल रूप से फ्रेंच भाषा के 'Environer' शब्द से बना है, पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है- 'परि' 'आवरण', अर्थात् जो हमारे चारों तरफ से घिरा हुआ है। प्रकृति में वायु, जल, मृदा, पेड़-पौधे तथा जीव-जन्तु सभी सम्मिलित हैं। सामान्यतः किसी स्थान विशेष में मानव के चारों तरफ (स्थल, जल, वायु, मृदा, आदि) का वह आवरण जिससे वह घिरा है, पर्यावरण (Environment) कहलाता है। पर्यावरण अनेक प्राकृतिक तत्वों का समूह है, जो जीव जगत को एकाकी तथा सामूहिक रूप से प्रभावित करता है। स्वच्छ पर्यावरण एक शांतिपूर्ण और स्वस्थ जीवन जीने के लिए बहुत आवश्यक है। स्वस्थ पर्यावरण प्रकृति के संतुलन को बनाए रखता है और साथ ही साथ पृथ्वी पर सभी जीवित चीजों को बढ़ने, पोषित होने और विकसित होने में मदद करता है।

“आजकल मानव और प्रकृति के बीच का संबंध द्वैतता का रहा है। मानव अपने जीवन में प्रकृति के

समानांतर एक नया संविधान लागू कर रहा है। आजकल प्राकृतिक एवं मानवीय हस्तक्षेप से होने वाली दुर्घटनाओं से मानव त्रस्त है। प्रकृति के वैभव पर आधिपत्य स्थापित करने की होड़ से संसार के जन-जन के जीवन में भारी भरकम तब्दीली हो रही है। इसी से सूखा, गर्मी, भू तापन, पर्यावरणीय पालायन, सुनामी, आंधी आदि बढ़ते जा रहे हैं।¹ मानव जीवन और पर्यावरण एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं। जहां मानव है, वहां प्रकृति है। जहां वास है वहाँ पर्यावरण है। यहाँ तक की हमारे प्राचीन वेदों में पर्यावरण के महत्व को दर्शाया गया है। और उसका चित्रण भी किया गया है।

हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक में प्रकृति को विशिष्ट स्थान दिया गया है। और हिन्दी साहित्य में पर्यावरण से सम्बन्धित बहुत सी रचनाएँ रची गई है। जो मानव समाज के बहुत निकट प्रतीत होती है। मनुष्य और समाज का प्राथमिक कर्तव्य है कि वह पूर्ण निरुस्वार्थ भाव के साथ प्रकृति की रक्षा करें। और हिन्दी के रचनाकारों ने अपने काव्य में प्रकृति का वर्णन किया। पर्यावरण संरक्षण वर्तमान समय में एक मुख्य चिंता का विषय बन चुका है। **“हिंदी में पर्यावरणीय कविताओं का लेखन 1980 के बाद जोरों पर रहा है। प्राचीन काल से ही प्रकृति केंद्रित कविताओं की कमी नहीं रही है। हम जानते हैं कि पृथ्वीराज रासो में भी प्रकृति का वर्णन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। मध्यकाल तथा रीतिकाल में भी प्रकृति फीकी नहीं रहीं। बारहमासी इसका उत्तम उदाहरण है। मानवीय भावनाओं की उदात्त अभिव्यक्ति का माध्यम प्रकृति ही है”**²

समाज के साथ-साथ-साथ आज ज्ञान-विज्ञान, तकनीक लगभग सभी में इसकी व्याप्ति हो चुकी है। दर्शन से जुड़े लगभग सभी अकादमिक विमर्श तक इसकी व्याप्ति हो चुकी है। मानव जीवन से जुड़े सभी नियमों में यह मुख्य चिंता का विषय हो गया है कि हमें सबसे पहले अपनी पृथ्वी को बचाना है, अपने धरातल को पूर्णता स्वच्छ रखना होगा नहीं तो मानव ज्ञान व विज्ञान की समस्त उपलब्धियों का कोई महत्व नहीं रह जाएगा। आज ज्ञान-विज्ञान के साथ साहित्य और कला भी इस बात की चिंता हो रही है उस पर केंद्रित विषयों पर चिंतन करने के उपरांत उसका निवारण किया जा रहा है। समकालीन हिंदी कवियों सामाजिक यथार्थ के चित्रण के साथ पर्यावरण से जुड़ी कई प्रकार की समस्याओं पर भी अपना चिंतन प्रस्तुत किया है। जैसे- वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, बढ़ती जनसंख्या, बढ़ता तापमान, कृषि में रासायनिक पदार्थों का प्रयोग आदि ऐसे बहुत से कारण हैं जिससे हमारा पर्यावरण दुर्बल होता जा रहा है-

**“करुणा की नदी उठती
जब बाँध तोड़-दुख का
बरस लेती आँसुओं में
डूब कर फिर उबर लेती
तरी-सी।”³**

समकालीन हिंदी कवियों ने पृथ्वी, जल, समुद्र, वन, नदी, पहाड़ और पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले कारणों और समस्याओं को अपनी कविता में उकेरा और उस पर चिंतन भी किया। समकालीन हिंदी कविता मानव, समाज और पर्यावरण का अध्ययन करती है। और समस्त समस्याओं का अन्वेषण भी करती है कि पर्यावरण, मानवीय व्यवहारों तथा अनुभवों को कैसे प्रभावित करता है तथा मनुष्य पर्यावरण को कैसे प्रभावित करता है। यह मानव समाज और उनके परिवेश के बीच संबंधों पर आधारित होता है। यह ध्वनि प्रदूषण, शहरी

गिरावट, जनसंख्या घनत्व और भीड़भाड़ आदि जैसी चिंताओं को व्याख्यायित करता है—

‘पानी तैर रहा है
आलोक जल कर राख हुआ जाता है
विलीन हो रहे हैं पल
आग पर टपकती बूँदों से
हृदय पाने से पहले ज्वाला का
दिवस निगल चुका अधिकांश अपने को
शेष केवल
सर्प की कटी पूँछ सी तिलमिलाती सन्ध्या है।’⁴

समकालीन कविता के कवि अपनी रचनाओं के द्वारा आम जनता को जागरूक करने का प्रयास कर रहे हैं। अपनी रचना के द्वारा हमारा ध्यान पर्यावरण की ओर केंद्रित करते हैं। और यह बताने का भरसक प्रयास करते रहे हैं कि पर्यावरण को असंतुलित कर, उसे हानि पहुंचा कर हम कभी भी विकास की ओर अग्रसर नहीं हो सकते, क्योंकि उसकी सुंदरता में हम इतने विलीन हो जाते हैं कि हमें और कुछ अच्छा नहीं लगता है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपनी कविता ‘आज पहली बार’ में लिखते हैं कि —

“आज पहली बार—
थकी शीतल हवा ने
शीश मेरा उठाकर,
चुपचाप अपनी गोद में रक्खा,
और जलते हुए मस्तक पर
काँपता सा हाथ रख कर कहा—
“सुनो मैं भी पराजित हूँ,
सुनो मैं भी बहुत भटकी हूँ,
सुनो मेरा भी नहीं कोई,
सुनो मैं भी कहीं अटकी हूँ।”⁵

निरन्तर प्रौद्योगिकीकरण के विकास से पृथ्वी का असंतुलन लगभग बिगड़ता जा रहा है। क्योंकि मानव जीवन पाँच तत्वों के मिश्रण से मिलकर बना हुआ है पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश इन तत्वों के अस्तित्व के बिना मानव जीवन की कल्पना करना लगभग असंभव है लेकिन वर्तमान समय में मानव अपनी चकाचौंध जिन्दगी में इतना विलीन हो गया है कि वह अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति का विनाश कर रहा है। इन सभी बढ़ते समस्याओं को देख कर समकालीन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से मनुष्य को जागरूक करने का प्रयास किया :

“आह देखो, नदी का तट बहुत सुन्दर है—
बहुत सुन्दर...
किन्तु यह तो नहीं है उत्तर

उस प्रश्न का
जो मैंने किया था
जो कुरेदे जा रहा है प्रतिक्षण
मन की अतल गहराइयों को।⁶

समकालीन कवियों ने प्रकृति का स्वच्छन्द रूप में चित्रण अपनी कविताओं में किया है। मानवीय धरातल पर उसका ऐसा वर्णन किया है कि उसका अध्ययन करने पर उसका सजीव चित्रण आँखों के सामने आ जाता है। अपनी रचनाओं में वसन्त, वर्षा, शरद् आदि ऋतुओं का सुन्दर व मनोहारी चित्रण सजीवता से किया है। इस काल के कवियों ने अपनी कविताओं में चाँदनी रात का मनोहारी जीवन्त चित्रण किया है—

“रात का बन्द नीलम किवाड़ा डुला,
लो क्षितिज-छोर पर देव-मन्दिर खुला,
हर नगर झिलमिला हर डगर को खिला
हर बटोही जिला ज्योति प्लावन चला,
कट गया शाप बीती विरह की अवधि,
ज्वार की सीढ़ियों पर खड़ा हो जलधि,
अंजली अश्रु भर-भर किसी यक्ष-सा,
प्यार के देवता पर चढ़ाने लगा।”⁷

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना प्रकृति की सुंदरता में इतने लीन हो जाते हैं कि उन्हें अपने आसपास का कुछ भी अच्छा नहीं लगता लेकिन अब उन्हें चिंता सताने लगी है और वह चिंता है प्राकृतिक विनाश की। जंगल, पहाड़, नदियाँ, झरने, पर्वत मिट्टी जैसे प्राकृतिक संसाधनों के घटने के कारण रघुवीर सहाय को यह चिंता सताती जा रही है कि एक दिन ऐसा आएगा जब प्रकृति मात्र स्मृति का बनकर न रह जायेगी। इसी विषय पर अपनी चिंता को व्यक्त करते हुए वह लिखते हैं कि—

“सुनो सुनो!
यहीं कहीं एक कच्ची सड़क थी
जो मेरे गाँव को जाती थी!
नीम की निबौलियाँ उछालती
आम के टिकोरे झोरती
महुआ, इमली और जामुन बीनती
जो तेरी इस पक्की सड़क पर घरघराती
मोटरोँ और ट्रकों को अँगूठा दिखाती थी।”⁸

भूमंडलीकरण के इस समय में पूरी दुनिया में बहुत तेजी से निरंतर परिवर्तन हो रहा है। कंपनियों के स्थापन से गाँवों की जमीनों की क्षति हुई, उपजाऊ जमीनें बंजर में बदल गई जिसका सीधा प्रभाव प्रकृति पर पड़ता है। विदेशी कंपनियों के आगमन से न केवल शहर बल्कि गाँव का भी स्वरूप बदल गया है। इस पूँजीवादी व्यवस्था ने आम जनता को अपनी जड़ों से अलग करने का काम किया है और हर मकान दुकान में बदल दिया।

कुँवर नारायण ने यह माना कि प्रकृति मानव जीवन के सर्वाधिक निकट है, और इस बात को नकारा नहीं जा सकता। क्योंकि प्रकृति ने मानव को सिर्फ दिया ही है बदले में उससे कुछ लेने की अपेक्षा नहीं करती। यही कारण है कि उन्होंने प्रकृति के प्रेम के आगे सारे प्रेम भाव को त्याज्य माना है कवि कहते हैं—

“भौगोलिक दृष्टि से दुनिया दुनिया ही है,
फिर भी यदि तुम्हें मैं
एक नभ तारा कहूँ,
तो वह शायद मेरी दृष्टि की सृष्टि होगी,
तुम नहीं।”

अतः समकालीन कवियों ने किसी न किसी रूप में अपनी रचनाओं में पर्यावरणीय क्षति जैसी चिंताओं पर केंद्रित समस्याओं को अपनी कविता के माध्यम से उकेरा है। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यदि मनुष्य प्रकृति का संरक्षण करें तो यह प्रकृति भी जीवन का रक्षक बनकर उभरती है, परन्तु आज अतिशय विज्ञानवाद और घोर औद्योगीकरण ने प्रकृति के साथ जिस प्रकार खिलवाड़ किया उससे प्रकृति का क्षय कितना हुआ, ये तो नहीं आँका जा सका, लेकिन प्रकृति का पलटवार जग-जाहिर है। विश्व परिदृश्य में प्राकृतिक असन्तुलन से उत्पन्न घटनाओं ने मानव जीवन को अस्त-व्यस्त करके रख दिया है। इस वैज्ञानिक छेड़छाड़ से प्राकृतिक शक्तियों ने ताण्डव मचाना शुरू किया है। अगर पर्यावरण का दोहन एवं शोषण ऐसा ही चलता रहा तो निश्चित ही पृथ्वी का विनाश तय है और उसके साथ-साथ मानव सभ्यता का भी। मनुष्य का अस्तित्व इस पृथ्वी पर बना रहे, इसके लिए जरूर है कि प्राकृतिक संसाधनों का नियंत्रित उपयोग किया जाय न की उसका उपभोग। हम सबको पर्यावरण के प्रति एक जिम्मेदार नागरिक बनना चाहिए तथा विकास के नाम पर विनाश का रास्ता छोड़कर सन्तुलित विकास के रास्ते पर चलना चाहिए ताकि हम अपने साथ-साथ आने वाली पीढ़ियों के लिए भी एक स्वस्थ एवं सुरक्षित प्राकृतिक पर्यावरण दे सकें। ये सभी पर्यावरण की समस्या समकालीन समय में चर्चित समस्याओं में से एक रही है। और इसी का यथार्थ वर्णन समकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है। इस काल के कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से पर्यावरण क्षति को रोकने और लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाने का भरसक कर रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ -

1. डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, समकालीन हिंदी कविता का स्वरूप, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2022, पृष्ठ संख्या— 10
2. वही, पृष्ठ संख्या— 10
3. जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेव नारायण साही — नयी कविता (खण्ड तीन) काव्य पक्ष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण—2016, पृष्ठ संख्या— 269
4. वही, पृष्ठ संख्या— 121
5. जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेव नारायण साही — नयी कविता (खण्ड दो) रचना पक्ष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण—2010, पृष्ठ संख्या— 287

6. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' – 'तीसरा सप्तक', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण– 1967, पृष्ठ संख्या– 41
7. जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेव नारायण साही – नयी कविता (खण्ड तीन) काव्य पक्ष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण–2016, पृष्ठ संख्या– 9
8. जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेव नारायण साही – नयी कविता (खण्ड दो) रचना पक्ष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण–2010, पृष्ठ संख्या– 289
9. वही, पृष्ठ संख्या– 188

Shaistaamu272152@gmail.com



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 84-93

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL

Decolonizing Indian Education : How Colonization Still Shapes What We Learn

Dimpi Singh

Research Scholar (Department of Education)

Pt. Ravishankar Shukla University, Raipur.

Abstract :

This paper explores how India's education system, even decades after independence, still shows the structure and values of British rulers. Whether classroom structures or knowledge of our textbooks, many things continue to make us imbibe that Western culture is more valuable, default and better than Indian ways of life. The paper uses real examples from NCERT textbooks (Classes 2–5) and discusses the effect of language, games, food culture, and classroom environments. It also shows how Indian knowledge systems—like oral traditions, folk learning, and classical philosophies—were pushed aside.

The paper includes ideas from famous thinkers like Ngugi wa Thiong'o, Ashis Nandy, Gauri Viswanathan, Amartya Sen, and Krishna Kumar. It also compares India's case with countries like Bhutan, Japan, Ethiopia, and New Zealand. The places that managed to protect their own learning systems or revive them even after colonial damage. In the end, it recommends way through which India can rebuild a more rooted and confident education system that makes children proud of their own traditions, languages, and knowledge—while still being modern and globally connected.

Introduction :

India, politically became independent in 1947 from British colonization, but the British mindset still runs our classroom - structurally, psychologically, and ideologically. India's education system, instead of being rebuilt from its cultural soil, it emerged as an embedded tool of cultural imperialism that still rule Indian minds to view their own civilization through Western lenses. Lord Macaulay's Minute on Indian Education (1835) stated that the aim of education and schooling was to create a class of Indians who were "Indian in blood and colour, but English in taste, in opinions, in morals, and

in intellect.” That vision was indeed carried forward by the post independence policy-makers and education system which focused on institutionalized Macaulay’s idea in our textbooks, languages of instruction, classroom design, and evaluation systems- producing obedient processors, not thinking citizens.

The colonial impact can be observed from our textbooks, our methods of teaching and our classroom with straight rows facing a central authoritative figure- which are never meant for dialogue, but for supervision and supervision was a colonial obsession. It wiped out India’s rich philosophical, scientific, and linguistic traditions from our curriculum. English remains the language of power, prestige, and policy, while Indian languages are sidelined. Western thinkers dominate the social sciences, while indigenous knowledge systems are either disregarded or ignored. Gandhi, Tagore, and Aurobindo’s vision of holistic, culturally rooted education was not given much importance and our system choose to be exam-centric, job-producing machine that mirrors British bureaucratic training.

This is intellectual imperialism is an active epistemic colonization. The psychological architecture of our education system continues to treat Indian culture, languages, and traditions as inferior, backward, or irrelevant. This is the soft power of imperialism -a system that no longer needs foreign rulers to control the minds of the colonized. Until we decolonize our Education systems, we will remain a nation politically free but intellectually enslaved.

Literature Review :

1. Ngugi wa Thiong’o :

Ngugi wa Thiong’o, in his book *Decolonising the Mind* (1986) explained that language is not always used as a tool but it was mostly used to shape how people think and see the world. Children begin to loose their connection with their culture, if they stop learning in their mother tongue. They may even start believing that their own way of life is less valuable than the coloniser’s..This is relevant in India too. Even today, many schools punish students for speaking in Hindi or their native language and push them to speak only in English—even if they don’t fully understand it.

2. Ashis Nandy :

Ashis Nandy (1983), in his book *The Intimate Enemy*, explained that colonisation didn’t just rule people physically—it made them question their own traditions. The British told Indians that their culture was superstitious and backward. After a while, many Indians began to believe this and started copying Western styles in how they dressed, studied, and even thought. His ideas help to explain why Indian education today still gives more respect to English, Western science, and British history than to Indian stories, ideas, or languages.

3. Gauri Viswanathan :

Gauri Viswanathan in his writing “in masks of conquest” takes about how the British brought English literature into Indian schools as a way to spread their values. It wasn’t just about learning grammar or stories. The real goal was to make Indian students accept British ideas about loyalty, discipline, and what’s considered “good” behavior. Even now, many Indian students study authors like Shakespeare and Jane Austen, while Indian poets, storytellers, and philosophers are left out or briefly mentioned.

4. Krishna Kumar :

Krishna Kumar (2005) studied how Indian school textbooks often show India as poor, traditional, and underdeveloped, while showing the West as scientific, modern, and successful. In Political Agenda of Education, he explained that these messages shape how students see the world. For example, when textbooks show a “modern family” eating toast and cereal (NCERT Class 4 EVS, 2022 edition), it suggests that Indian breakfasts like paratha or idli are old-fashioned or unhealthy.

5. Ivan Illich :

Ivan Illich (1971), in Deschooling It's time g Society, wrote that schools can make students doubt what they already know from there experiences. He believed that modern education teaches people to depend too much on textbooks, exams, and certificates, and to ignore the knowledge they already have. This is true in many Indian schools, where children from farming or tribal families bring real-world knowledge but are taught that only only textbook knowledge is “real” knowledge.

6. Padma Sarangapani :

Padma Sarangapani studied education in Indian villages and found that children already knew many things through their families—like how to grow food, use plants as medicine, or read the sky for weather. But schools often ignore these skills. Instead, children are expected to memorize facts in English or Hindi that don’t match their reality. Over time, students starts realizing that their life and their knowledge does’t belong in school.

India’s Own Knowledge Systems :

India had its own rich and varied forms of learning. These were not just limited to one religion, language, or region. There were formal systems like Nyaya (logic), Samkhya (classification of knowledge), Mimamsa (interpretation), and Vedanta (metaphysical thought). These traditions focused not only on religious teachings but also on reason, debate, ethics, and even science. The teaching methods were to encourage students to ask questions, think critically, and explore learning from thinking and also from their real-life experience.

India also had a very strong oral learning systems, where knowledge was transferred through

storytelling, poems, songs, and other cultural rituals. In tribal areas, people mostly learned about plants, weather, animal behavior, and health through observation and experience, and not surely via books. Learning mostly happened in small groups, under trees in open area without any defined four wall classrooms, or in homes. Communities like the Bauls of Bengal, Bhils of Madhya Pradesh, and Lambanis of Karnataka had rich traditions of teaching life lessons through performance and not by exams and marks.

When the British introduced their very own education system, they didn't considered these methods as "real knowledge." They replaced the whole indigenous system of education with the schools based on rote learning and Passing examination, where books written in English were considered as the only true knowledge or valid source. Their schools slowly pushed aside India's original ways of knowing, they ignored and treated our knowledge as folklore instead of education.

Curriculum as Colonization :

It's been more then decades since India got its Independence from British colony but its deeper psychological impact still present with us. This psychological impact rewires- what people consider "normal," "respectable," and "educated." In Indian school system, this invisible colonization still exist, not by force but now it's a part of our routine. It exist in textbooks, timetables, languages, games, and values.

This is not just about learning foreign knowledge. It is about being taught that your food, your language, your body, your beliefs are not good enough to be called 'education'. Below are five ongoing examples from Indian schooling that explain how this colonization survives through schools.

1. Porridge in the Book, But Daliya at Home :

In the NCERT Class 3 EVS textbook (2022, p. 12), there's a line that says: "Grandma made porridge." At first it may seem like a harmless sentence. But it raises an important question about why porridge is shown as the usual breakfast?

In real life, most Indian children eat foods like poha, idli, daliya, or paratha at home. But these everyday meals are usually missing from school books unless they appear in chapters about "culture" or "festivals." As a result, children start thinking that foods like porridge, toast, and cornflakes are more modern or healthy, while their own meals seem outdated or less important.

This is about more than food. Meals carry memories, emotions, and local knowledge. They are linked to seasons, traditions, and how families live and work in different regions of India. So when a school book quietly swaps daliya for porridge, it's not just changing a word, it's giving the child a message that 'what you eat isn't worth being in a textbook'.

Slowly, this leads the child to feel disconnected from her own background. Not because anyone

told her it's wrong, but because her everyday life was quietly left out of what is taught.

2. Classroom structure :

In most schools of India , children sit in neat rows, facing a blackboard. They are usually expected to stay quiet and copy notes as the teacher speaks. This setup did not come from Indian traditions. It was introduced during British rule, based on a system designed in the 1800s to train factory workers and government clerks.

Before colonization, Indian schools worked in a very different structure. In gurukuls, madrasas, and pathshalas, students often sat in circles or open spaces. Classrooms were not restricted to the four walls. Teachers used methods like storytelling, discussion, role play, and memory games. Learning was attached to daily life like seasonal cycles, local festivals, rivers, or village tasks. Teachers were more like guides than strict rule-enforcers, but when the British system replaced this, the school space changed. The way students sat and moved in class was no longer free. They were taught to follow instructions without asking too many questions. The classroom layout itself became a message: sit still, listen, and do not interrupt.

Even now, many schools still give more praise to students who quietly take notes than to those who ask new questions. This shows how old colonial habits still influence how we teach and how students learn.

3. Speak in English or pay fine :

In many Indian schools, children who speak fluent English are praised and seen as smart. But those who speak in Punjabi, Tamil, Bhojpuri, Marathi, or tribal languages are often corrected or even shamed. Some teachers openly say, “Don’t speak your local language here.” In several private schools, especially for younger children, students can be punished or made to pay a fine for speaking in their native tongue (Jhingran, 2005).

But why is English the only language seen as modern, powerful, or intelligent?

This mindset has roots in the colonial era. The British made English the language of courts, colleges, and government. Indian languages were treated as “vernacular” - a word that often carried a sense of being lower or less serious. Over time, even Indians started believing that only English could express important knowledge. Scholar G. N. Devy explains how Indian languages were pushed out of education and lost their space in public thought (Devy, 2017). Today, most CBSE or state board exams are available in English and Hindi only, even though over 22 scheduled languages and hundreds of tribal languages are spoken across India.

Children notice this early. A tribal child who knows the uses of 20 forest herbs in Gondi or Santhali may be told she is “behind.” Meanwhile, another child who recites a grammar rule in English

is praised. This kind of imbalance can damage the self-worth of children who grow up speaking Indian languages. They start to believe their home language is only for home, and not smart enough for school.

This doesn't mean India should reject English. It is a valuable global language. But English cannot be the only way to earn respect. A better education system would treat all languages with dignity. It would let children speak, learn, and think in their mother tongue without fear. Scholars like Ngũgĩ wa Thiong'o have argued that true learning happens when a child learns in the language they dream in. For Indian students, this might be Tamil, Marathi, Mizo, or Bhojpuri—not just English.

4. Cricket in Uniforms, Kho-Kho in Memory :

In most Indian schools today, children play cricket, football, basketball, and sometimes volleyball. These are all games of foreign or colonial origin, often introduced during British rule. They require uniforms, expensive equipment, referees, and formal scoring systems. These sports are promoted as “modern” and “global.”

But what happened to traditional Indian games like Kho-Kho, Kabaddi, Langdi, Gilli-Danda, and Pittu (Seven Stones)? These games need almost no equipment, use local open spaces, and teach body coordination, breath control, alertness, rhythm, and teamwork. Yet, they have mostly disappeared from school playgrounds and are rarely mentioned in textbooks or curriculum documents today.

This change did not happen because traditional games were harmful or boring. It happened because they didn't match the polished image of modern sports built by colonizers. Today, many of these games are labeled “rural sports” as if they don't belong in urban schools or educated settings. This sends a quiet message: Only Western-style sports are worth playing seriously.

Children pick up this message quickly. A child who plays basketball in sneakers may be seen as “athletic,” but one who plays Gilli-Danda barefoot in a field is often seen as “old-fashioned” or “less sporty.” This damages the child's pride in their body and cultural play. Over time, traditional games stop being practiced not because they're forgotten, but because they're not allowed space in school systems.

Even school documents reflect this bias. The NCF 2005 (National Curriculum Framework) mentions sports education but gives almost no attention to regional or folk games. Instead, it promotes physical education through structured formats based on global norms (NCERT, 2005, Chapter 3: Learning and Knowledge). Even the Khelo India Youth Games, a national initiative, only recently began including traditional sports like Mallakhamb and Gatka after public demand (Ministry of Youth Affairs, 2021).

This quiet removal of Indian games erases more than fun. It removes local wisdom, movement

traditions, and ecological intelligence. Sports are not just about medals they shape how children understand their bodies, teamwork, and confidence. A school system that honors only Western games quietly tells children that their culture doesn't count, even during play.

5. Moral Science without Dharma :

Many Indian schools still include a subject called “moral science.” But these lessons often use stories and values that reflect British Victorian ideals like politeness, obedience, and charity. Characters in these chapters are often named Tom, Mary, or John. They follow rules, get rewarded, and rarely question anything. While the messages may seem harmless, they often ignore the rich ethical thinking found in Indian traditions.

For example, Indian moral systems have always focused on context, relationships, and duty (dharma). Stories from the Panchatantra, Jataka tales, Kabir's dohas, Basava's vachanas, or Guru Nanak's teachings give lessons that are not about strict rules, but about real-life situations. They explore what's right depending on time, place, and people. But in most classrooms today, this kind of thinking is replaced with simple rules like “Don't lie” or “Respect your elders.”

This change flattens the idea of morality. It turns ethics into a set of memorised commands, not something to think about, question, or apply differently in different moments. It also means children rarely get to hear the moral voices of their own ancestors. Instead, they grow up believing that wisdom comes only from neat English homes, not from Indian villages, forests, or temples.

Recognition Requires a Foreign Approval : The Case of Amartya Sen :

Even at the highest level of education and research, India often waits for global recognition before valuing its own thinkers. A strong example of this is seen in the case of Amartya Sen, the Nobel Prize-winning economist and philosopher.

In an interview with *The Hindu* (2011), Sen was asked how Indians responded to his decades of work on welfare economics and justice before he won the Nobel. His reply was revealing. He said that his work received little attention in India—until the Nobel announcement. After that, media outlets, universities, and public institutions suddenly began to celebrate him.

“The day after I won the Nobel, people started noticing work that I had done for decades. Before that, it wasn't considered important.” — Amartya Sen (*The Hindu*, 2011)

Sen's observation is not just personal. It reflects a wider issue in Indian intellectual life—where ideas or achievements often need Western validation before they are accepted or celebrated at home. This is not about global exposure; it's about internal dependence on external approval.

This same mindset is seen in Indian schools. A child who speaks fluent English is seen as smart. But a child who discusses village games, herbal knowledge, or local stories may be told to

“stay on topic” as if their world doesn’t count as knowledge. Just like Sen’s theories were overlooked until a Western stamp was added, much of India’s traditional wisdom is often dismissed unless it comes with global packaging.

Sen’s experience highlights a truth that extends beyond academia. Unless we learn to value our own thinkers, voices, and ideas without waiting for international praise, we remain mentally dependent even after political freedom.

What Decolonising Education Really Means :

The idea is not to reject the West. Learning about Shakespeare, Newton, or global sports is not the issue. Exposure to other cultures is valuable and necessary. The problem is when foreign knowledge replaces local knowledge, when students are taught that English is equals to smart and their home language is low-class. The problem is when students feel ashamed to bring their food, games, or stories to school because they don’t seem “modern” enough. Hence, decolonization doesn’t mean isolation, it means balance. It means letting Indian students learn about the world without being made to forget who they are. It means restoring confidence, curiosity, and respect for their own roots, so that learning becomes a way to expand the mind, not erase identity.

Global Examples of Protecting Indigenous Knowledge :

India is not the only country shaped by colonial or foreign influence. Some, like New Zealand and India itself, experienced direct colonization that reshaped their education systems, languages, and cultural values. Others, such as Japan and Bhutan, were never colonized in the formal sense but still encountered strong pressures to adopt Western models of schooling during their processes of modernisation. Ethiopia sits in between: it remained largely free from colonization, yet it experienced a brief occupation by Fascist Italy between 1936 and 1941. Despite these differences, all these nations faced the same challenge about how to modernise without losing their identity and each offers useful lessons for India.

Bhutan presents a unique example. Though never colonised, it was historically influenced by British India in matters of foreign policy. Yet Bhutan chose to chart its own course in education by grounding it in the philosophy of Gross National Happiness (GNH) rather than GDP growth. The schooling system promotes well-being, compassion, and the preservation of cultural values. Children first learn Dzongkha, the national language, and are taught folk stories, traditional knowledge, and environmental ethics drawn from their own surroundings. Even in science education, concepts are connected to Bhutanese nature and experience, not abstract examples from the West. Bhutan’s model demonstrates that academic development does not need to come at the cost of cultural disconnection. Japan, although never colonized, experienced a significant Western influence during the American

occupation from 1945 to 1952. Despite this, Japan modernised on its own terms. The Japanese education system maintains strong cultural foundations through practices rooted in Confucian ethics and local traditions. Moral education is a formal subject, but rather than mimicking Victorian moral codes, it teaches values like harmony, group responsibility, and perseverance. Cultural discipline is embedded in daily life, students clean their classrooms together, bow respectfully, and maintain silence not as rules, but as reflections of societal values. Importantly, Japanese literature and local customs are taught alongside global texts and subjects, without being pushed aside. Japan's experience shows how it is possible to pursue scientific and technological excellence while maintaining cultural self-respect.

New Zealand, by contrast, experienced direct British colonisation beginning in 1840 through the Treaty of Waitangi. The Indigenous Maori people faced cultural marginalisation, especially in education. However, recent decades have seen a remarkable turnaround. The education system now includes the Maori worldview in both mainstream and Maori-specific schools. Students are taught Te Reo Maori (the Maori language), and learn through oral storytelling, environmental practices, and tribal history. Special schools, called Kura Kaupapa Maori, conduct all learning in the Indigenous language using culturally relevant pedagogy. What makes this model powerful is the equal status given to Maori knowledge—not as an add-on, but as a valid and central part of formal learning. This represents a meaningful form of decolonisation in curriculum, content, and mindset.

Ethiopia also offers valuable insights. Though it was never colonised like most of Africa, it was briefly occupied by Fascist Italy during the late 1930s. Despite this, Ethiopia has committed to multilingual education and the preservation of Indigenous knowledge. Its constitution guarantees every child the right to learn in their mother tongue. Over 20 languages are actively used in early-grade schooling. Children learn not only basic subjects but also through local stories, farming practices, and oral traditions. English and Amharic are introduced later, but they do not dominate or erase the mother tongue. This model allows children to develop cognitively and emotionally in a language they already understand, avoiding the common trap where English becomes the gatekeeper to intelligence. Together, these countries show that it is possible to build an education system that embraces modern learning while keeping cultural identity intact. They remind us that progress does not require self-erasure. India, with its deep civilisational knowledge and linguistic diversity, can draw on these examples to build a system that reflects not only its present needs, but its roots and soul.

Analysis and Recommendations :

The issues described throughout this paper from the presence of porridge in textbooks to the rigid layout of classroom benches are not random. They point to a much deeper problem: India may

have ended colonial rule in 1947, but it never fully broke away from the colonial logic embedded in its education system. While political independence was achieved, the philosophical framework that defines what is considered “valuable knowledge” remained largely unchallenged. The British left the country, but their system of schooling stayed behind—silently shaping minds, classrooms, and curriculums.

One key question that must be asked is this: whose knowledge are we learning? When Indian children read stories set in British kitchens, solve math problems based in Western cities, or play European sports like cricket in their schoolyards, they are not just absorbing neutral content. They are absorbing cultural priorities. Through repeated exposure, students learn to internalise the idea that Western lifestyles are more “normal,” “modern,” or “global.” Meanwhile, Indian practices whether food, farming, or folklore are relegated to the sidelines or treated as regional curiosities. This subtle hierarchy teaches young minds that their own backgrounds are less valuable, less intelligent, or less worthy of being celebrated.

Language plays a particularly painful role in this process. English is widely viewed as the ticket to opportunity in India. As a result, English-medium schools are in high demand. Yet for millions of students, especially in rural and tribal areas, English becomes a barrier rather than a bridge. It disconnects the child from their thoughts, environment, and even their parents. Far from empowering them, it makes them feel ashamed of their mother tongue. As Kenyan writer Ngugi wa Thiong’o once warned, losing one’s language is like losing one’s story—it breaks the link between memory and meaning. When a child is punished for speaking Bhojpuri, Gondi, or Tamil in class, they are not just corrected—they are silenced.

This same colonial mindset shows up even at the highest levels of academia. The case of Amartya Sen is telling. Sen spent decades working on issues like poverty, inequality, and public health in India, yet his contributions were not widely celebrated at home until he won the Nobel Prize in 1998. In a candid interview with *The Hindu* (2018), he reflected that his work received far more attention abroad than within India. In fact, he was once criticised for focusing too much on equity and not enough on economic growth. This shows how colonial habits of thought linger: we often wait for the West to approve our thinkers before we respect them ourselves.

If India is to truly decolonise its education system, the change must go deeper than replacing English words with Hindi translations or swapping textbook characters from Tom to Tara. The shift must be philosophical. It must involve a rethinking of what counts as knowledge, whose voices are included, and how children are taught to view themselves. The aim is not to reject global knowledge, but to stop rejecting ourselves in the process. Based on this understanding, the following six reforms

are critical.

First, the curriculum needs to be rebalanced. Indian knowledge systems—like Ayurveda, Bhakti poetry, Panchatantra tales, tribal astronomy, and ecological practices—must be treated as core components of learning, not optional culture segments. For every Western thinker introduced (Plato, Rousseau), there should be an Indian equivalent (Nagarjuna, Gandhi). Science and social studies should reflect Indian innovations in water systems, textiles, farming, and architecture. India must be presented not just as a spiritual civilisation, but as a knowledge-producing one.

Second, multilingual education must be embraced without hierarchy. Language is not just a communication tool; it's a foundation for thought and identity. Local languages should be the medium of instruction in the early years, allowing children to grasp complex ideas through familiar words. English can be taught as a second or third language, but not as a superior one. Teachers should actively encourage expression in multiple languages and stop penalising children for speaking their mother tongue. Tribal, Dalit, and regional languages must be preserved, not marginalised.

Third, teacher training must evolve. Many teachers, often unknowingly, act as enforcers of colonial values. They dismiss local examples, correct non-English accents, and enforce imported standards of behaviour. A decolonised pedagogy would train teachers to appreciate diverse worldviews and draw on community knowledge. Lessons should include local foods, crafts, games, festivals, and environmental practices. Teachers should act not just as deliverers of state content, but as curators of regional knowledge.

Fourth, physical education and moral science must be reclaimed as tools for cultural revival. Indian schools currently favour Western sports like basketball or cricket, which require structured equipment and uniforms. But traditional Indian games—like Kabaddi, Kho-Kho, Gilli-Danda, and Langdi—build rhythm, stamina, cooperation, and pride. These games require little material and can be taught in any setting. Likewise, moral science should not rely on abstract rules or British-style stories. Indian ethical thought, drawn from Kabir, Basava, Guru Nanak, Thiruvalluvar, or Akkamahadevi, presents a nuanced and context-sensitive approach to right and wrong.

Fifth, textbook development must include regional voices and realities. Curricula should not be crafted solely by centralised committees. States and districts must be invited to contribute stories, case studies, and examples. Textbooks should highlight regional scientists, festivals, foods, poets, and craftspeople. Instead of treating real Indian life as “other,” textbooks must reflect it as the norm. This shift would give every child the message: your home, your stories, and your surroundings matter. Finally, the very purpose of education must change—from obedience to ownership. For too long, schools have aimed to turn children into compliant workers who follow instructions. A decolonised

education system would do the opposite. It would help students become confident problem-solvers, rooted in their context. Children should graduate not just fluent in English, but fluent in themselves—able to think critically, act ethically, and value the richness of their heritage. They should learn that India's problems can be solved not just through Western solutions, but also through Indian frameworks.

Conclusion :

This paper set out to examine a straightforward but revealing question: Why does Indian schooling often feel disconnected from Indian reality? The journey through classroom layouts, textbook content, language hierarchies, and sidelined local sports reveals that these patterns are not neutral. They are the lingering structures of colonial influence—structures that continue to frame what is taught, how it is taught, and whose knowledge is valued.

These educational choices signal a subtle message to students: that their home languages, foods, games, and ways of thinking are not suited for a “modern” classroom. Over time, this discourages children from trusting what they bring from their own homes and communities. The school space becomes less a place of growth and more a place of quiet self-erasure.

This issue goes beyond curriculum design. It touches the child's emotional and cultural identity. When admiration is reserved only for foreign models, and local knowledge is downplayed or excluded, students learn to participate in the world, but with less confidence in their own heritage. However, as the comparative case studies have shown, there are alternative paths. Bhutan, Japan, Ethiopia, and New Zealand each provide examples of how a country can modernise its educational system without disconnecting from its own roots. These nations demonstrate that innovation and cultural continuity are not opposing goals. They can, in fact, support each other when thoughtfully balanced.

India is not lacking in intellectual traditions. What it often lacks is the systemic confidence to place its own knowledge systems at the centre of formal education. This does not require rejecting global learning or foreign ideas. Instead, it means creating a space where Indian texts, languages, practices, and worldviews are given equal dignity.

A restructured Indian classroom would not replace porridge with poha out of nationalism, but out of recognition. It would present Shakespeare and Kabir not as competitors, but as coexisting contributors to human thought. And it would allow a child to express themselves in their mother tongue without having to trade it for approval.

To decolonise education is not to return to a romanticised past. It is to move forward in a direction where learning is rooted in context, identity, and inclusion. This forward movement must happen through Indian languages, ideas, and lived experiences—so that students graduate with

knowledge that is not only global, but also their own.

References :

- Illich, I. (1971). *Deschooling society*. Marion Boyars.
- Kumar, K. (2005). *Political agenda of education: A study of colonialist and nationalist ideas*. Sage Publications.
- Nandy, A. (1983). *The intimate enemy: Loss and recovery of self under colonialism*. Oxford University Press.
- Ngugi wa Thiong'o. (1986). *Decolonising the mind: The politics of language in African literature*. James Currey.
- Rampal, A. (2000). Education for human development in India: The challenge of equity and quality. *International Review of Education*, 46(2), 113–137.
<https://doi.org/10.1023/A : 1004081822034>
- Sarangapani, P. (2003). *Constructing school knowledge: An ethnography of learning in an Indian village*. Sage Publications.
- Sen, A. (1999). *Development as freedom*. Oxford University Press.
- Sen, A. (2018, July 13). India must build capacity for public reasoning: Amartya Sen interview. *The Hindu*. <https://www.thehindu.com/opinion/interview/india-must-build-capacity-for-public-reasoning/article24412868.ece>
- Spivak, G. C. (1988). Can the subaltern speak? In C. Nelson & L. Grossberg (Eds.), *Marxism and the interpretation of culture* (pp. 271–313). University of Illinois Press.
- Viswanathan, G. (1989). *Masks of conquest: Literary study and British rule in India*. Columbia University Press.
- UNESCO. (2022). *Indigenous education and the revitalization of Indigenous languages: Global overview*. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization.
<https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000382034>
- Government of New Zealand. (2021). *Ka Hikitia – Ka Hapaitia: The Maori Education Strategy*. Ministry of Education, New Zealand. <https://www.education.govt.nz/our-work/overall-strategies-and-policies/ka-hikitia-ka-hapaitia/>
- Ministry of Education, Bhutan. (2016). *Education blueprint 2014–2024: Rethinking education*. Royal Government of Bhutan. <https://www.education.gov.bt>
- Ministry of Education, Ethiopia. (2015). *Education sector development programme V (ESDP V)*. Government of Ethiopia. <https://www.globalpartnership.org/content/ethiopia-education-sector-development-program-v-2015-2020>
- OECD. (2018). *Education policy in Japan: Building bridges towards 2030*. Organisation for Economic Co-operation and Development. <https://www.oecd.org/education>.



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 97-99

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL

स्वच्छता : एक सामाजिक जिम्मेदारी या दिखावा?

डॉ. दीप्ति सुधीरकुमार देशपांडे

आसि. प्रोफेसर,

शेठ श्री गिरधरलाल डी.एल.एड. कालेज, दाहोद।

अपने आसपास स्वच्छता रखना जरूरी है। फिर भी यह स्वच्छता कैसे और कितनी, यह जानकारी होनी जरूरी है। स्वच्छता और स्वास्थ्य हमारे जीवन के अभिन्न पहलू हैं। यहाँ 'कैसे' यह प्रश्न उठता है, तब उसका उत्तर यह है कि (दूसरों को तकलीफ पहुँचाए बिना)। सभी धर्मों के लोग अपने-अपने खास त्यौहारों पर घर की साफ-सफाई करते नजर आते हैं। घर का सारा सामान निकालते हुए कहते हैं कि 'यह कितना कबाड़ भरा पड़ा है, अब इसे भंगार (कबाड़) में जाने दो।' दुःख की बात यह है कि उसमें से एक चौथाई कबाड़ भी शायद ही भंगार में गया होगा। किसी न किसी तरह उसे वापस ठिकाना मिल ही जाता है। यह तो त्यौहार की बात हुई। रोजाना होने वाली सफाई की बात करना ज्यादा जरूरी है।

सफाई के मामले में कुछ महिलाओं को तो पूरा दिन भी कम पड़ता है। रात होने पर वे कहती हैं, 'इतना काम बचा है, सुबह होते ही निपटा दूँगी।' वैसे तो घर से कचरा निकालने का वक्त सुबह का होता है, पर कुछ घरों में यह नियम लागू नहीं होते। या फिर यह भी हो सकता है कि आँगन का कुछ ज्यादा ही ध्यान रखना है। झाड़ू तो ऐसे पकड़ती हैं कि मजाल है जो हाथ से छूट जाए। उस पर धूप का भी कोई असर नहीं होता। मिट्टी उड़ाते हुए वे पूरे आँगन पर 'भूचाल' ला देती हैं। मेरे जैसे किसी व्यक्ति को जब वहाँ से गुजरना होता है, तो कुछ लोग हॉर्न बजाकर इस भूचाल को रोकने की नाकाम कोशिश करते हैं। सफाई में मशगूल गृहिणी अपने आँगन को स्वच्छ करते हुए आधे रास्ते तक पहुँच जाती है। आने-जाने वाले सभी को अनचाहा 'मुफ्त का पाउडर' (धूल) मिलता रहता है। कुछ गुस्सैल व्यक्ति बड़बड़ाते हुए और आँखें दिखाते हुए गुजरते हैं, तो कुछ अनदेखा करते हुए निकल जाते हैं। कचरा निकालने में वे इतनी मशगूल (मगन) हैं कि आने-जाने वालों के रास्ते में विघ्न डालना गलत है, ऊपर से धूल आने-जाने वाले व्यक्तियों पर गिरती है। उदाहरण के लिए, ऑफिस जाने का समय हुआ हो और उसी समय कुछ लोग स्वच्छता को महत्व देते दिखते हैं। ऐसी तकलीफों का सामना कभी न कभी हर एक के जीवन में आया ही होगा। जिसने इस घटना का सामना किया होगा वह हमेशा चौंकन्ना (सतर्क) रहेगा। महिलाओं के लिए और एक बात पर गौर करना उचित रहेगा। घर की सफाई करते हुए वे कुछ पानी और धूल राहगीरों पर फेंकती हैं, उस समय वहाँ से गुजरने वाले का क्या हाल होगा, यह देखने जैसी बात है। यहाँ महिलाएं गृहकार्य में कुछ ज्यादा ध्यान देने के कारण ये गलतियाँ करती हैं, फिर उसका शिकार चाहे कोई भी हो सकता है। "प्रकृति के द्वारा हमें कई उपहार दिए गए हैं। हवा, पानी, भूमि, जंगल, पहाड़ ये प्रकृति

ऐसे स्रोत हैं जिन पर वर्षों से अनन्य जीव निर्भर रहकर विकास की तरफ बढ़ रहे हैं। उन्होंने इसी की बदोलत न सिर्फ स्वयं का विकास किया है बल्कि एक नई पीढ़ी भी तैयार की है।”

स्वच्छता, स्वच्छता और केवल स्वच्छता। सिर्फ महिलाएं ही नहीं, पुरुष भी पीछे नहीं हैं। अपने छोटे से बगीचे के पेड़-पौधों को पानी पिलाना कई लोगों का शौक होता है। धोती पहने हुए या पतलून (पैंट) चढ़ाकर वे बड़े आनंद के साथ पौधों को पानी सींचते हुए नजर आते हैं। आजकल तो हाथ में ‘वॉटर गन’ (पानी की नली) लेकर वे इस काम में जुटे दिखते हैं। पौधों को पानी पिलाते हुए पाइप से उड़ी पानी की फुहार कब सड़क से बाहर उड़ती है, इसका ख्याल शायद ही वह रख पाता है। खुद की परवाह तो उसने खूब की पर अपनी कार को नहलाने में उसने कोई कसर न छोड़ी। यहाँ ‘फिपटी-फिपटी चांस’ है कि वह ‘माफ कीजिएगा’ बोलेगा। यहाँ तक तो बात ठीक है, पर अपनी गाड़ी धोता हुआ व्यक्ति गाड़ी चमकाने में इतना व्यस्त है कि आने-जाने वालों को खुद ही संभलकर निकलना चाहिए या रास्ता ही बदल लेना चाहिए। नहीं तो वर्तमान में जिस कीचड़ का सामना न हुआ हो उससे भी अधिक सामना करना पड़ सकता है। गाड़ी धुलकर स्वच्छ हो गई यह अब बात रह गई, उसे चालू करने की पूरी सोसाइटी को आवाज पहुँचाना जैसे जरूरी हो चला हो। इतना एक्सेलेरेटर देना कि पड़ोसी आकर खड़े न हो जाए! तो भी बड़े जोश में आकर पूछते हैं ‘गाड़ी धुल गई?’ धोने वाला उससे भी अधिक संघर्ष एक्सेलेरेटर देते हुए बड़े जोर से बातचीत कर रहा है। यह देखकर पड़ोसी किसी और व्यक्ति से बात करने में उलझ गया। दरअसल गाड़ी धोने वाला व्यक्ति भी यही चाहता था कि वह यहाँ से निकल गया है और गलती से भी वह कोई शिकायत लाना है यह बयॉ (जाहिर) न कर पाये।

उसी समय दूसरे दो व्यक्ति सरकार द्वारा कराये जाने वाले पेड़ को लेकर कुछ भड़ास निकाल रहे थे। उनका कहना था कि रास्ते पर फैले पेड़ बिजली की लाइन में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। वह बात भले ही सही हो, पर लोगों के आने-जाने के समय आम जीवन में बाधा उत्पन्न हो रही है, उसका जिम्मेदार कौन? यदि मनुष्य भी प्रदूषण के प्रति सचेत नहीं हुआ और पर्यावरण को स्वच्छ करने के उपाय नहीं अपनाए तो आने वाले समय में उसे इसके भयंकर परनाम झेलने के लिए खुद को तैयार कर लेना चाहिए। क्योंकि प्रदूषण एक ऐसी बीमारी है जो मनुष्य को धीरे-धीरे नष्ट करती है। बिजली के तारों के बीच आते पेड़ों की सफाई हो रही है तो ‘आधा रास्ता बंद है’, यह सूचना लिखना आवश्यक है। इस प्रश्न को हल न किया तो किसी की ट्रेन छूट सकती है, ऑफिस में देरी से पहुँचने पर कहासुनी हो सकती है। कहने का अर्थ यही है कि साफ-सफाई इस प्रकार हो जहाँ कम से कम बाधा उत्पन्न हो।

एक और मजेदार किस्सा होता रहता है। ज्यादातर घरों में कामवाली बाई हुआ करती है। अब तो बच्चा संभालने वाली, बुजुर्गों की देखभाल करने वाली, खाना बनाने वाली आदि भी सुन रहे हैं। वे भी बड़ी पगारदार होती हैं। उनका काम भी काफी जिम्मेदारी का है। काफी ढूँढ़ने पर बड़ी मुश्किल से मिलती हैं। वह अन्य काम निपटा कर चली जाती है या उसे काम में ढील दी गई हो वहाँ आराम करती है, तब मालकिन कभी-कभार उसके काम में नुस्ख निकाला करती है। घर के लोगों को भी यह मामले में उलझने में कतई दिलचस्पी नहीं रहती। किन्तु घर की साफ-सफाई के दौरान मालकिन के अलावा घर के कोई भी सदस्य की चीज इधर-उधर हुई तब नजारा देखने लायक बनता है। अभी तो कामवाली बाई का नाम सीधे-सीधे किसी के मुँह पर आया भी न हो उसके पहले तो मालकिन एक मशहूर वकील बनकर कामवाली बाई की तरफदारी करती नजर आती है। आए दिन उनमें

नुस्ख निकालने वाली अचानक रौद्र रूप धारण कर घरवालों पर टूट पड़ती है। उनका कहना है कि सभी को अपनी-अपनी चीजों की खुद जिम्मेदारी लेनी चाहिए। साफ-सफाई में अगर किसी वस्तु की जगह बदल भी गई हो तो इस बात का ढिंढोरा पीटना आफत की बात है, क्योंकि अगर बाई आना बंद कर देगी तो सारा इतना बड़ा भारी काम उठाने की जिम्मेदारी लेगा कौन?

नये जमाने के तौर-तरीकों से चलें तो बर्तनों के लिए डिशवॉशर, कपड़ों के लिए मशीन, झाड़ू के लिए वैक्यूम क्लीनर, आखिर में आधुनिक रोबोट तक मिल जाता है। फिर भी जो कार्य मनुष्य हाथ के स्पर्श से ही पूरी मुफ्त (सहजता) से करता है, वह सत्कार इन मशीनों में कहाँ?

भारत में स्वच्छता अभियान अवश्य सफल होगा स्वच्छता मात्र एक नारा नहीं य समाज के जीवन व्यवहार में ढल कर पुनः अभ्यास बन जायगी स विश्व पटल पर पुनः भारत की विशेष पहचान बनाने में स्वच्छतापूर्ण जीवन पहली सीढ़ी होगा।”

सन्दर्भ सूचि :

1. स्वच्छ भारत – प्रो. टी. वी. कटटीमनी – स्वच्छता के विभिन्न आयाम पृष्ठ – 53
2. स्वच्छ भारत – प्रो. टी. वी. कटटीमनी – स्वच्छता के विभिन्न आयाम पृष्ठ – 84
3. स्वच्छता संस्कार – मृदुला सिन्हा – प्रभात प्रकाशन।

मो. नं. 9429292766



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 100-102

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

उपन्यास 'अम्बपाली- एक उत्तरगाथा' में सामाजिक रूढ़ियों और स्त्री-प्रतिरोध का स्वर

हजीना. जी. आर

शोध छात्रा, महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, केरल।

डॉ. अम्बिली वीएस

Assistant Professor, NSS College, Pandalam..

शोधसार :

गीता-श्री का उपन्यास अम्बपाली : एक उत्तरगाथा केवल एक ऐतिहासिक उपन्यास नहीं, बल्कि सामाजिक रूढ़ियों और पितृसत्तात्मक व्यवस्था-था के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक हस्तक्षेप है। लेखिका ने अम्बपाली के जीवन के माध्यम से उन सामाजिक मान्यताओं और परंपराओं पर सवाल किया है, जिन्होंने स्त्री को सदियों से दोयम दर्जे का नागरिक बनाकर रखा। उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि समाज ने स्त्री की स्वतंत्र इच्छा, उसके व्यक्तित्व और उसके अधिकारों की अपेक्षा उसके रूप देह और सामाजिक भूमिका को अधिक महत्व दिया। अम्बपाली का संघर्ष इन्हीं रूढ़ियों के विरुद्ध प्रतिरोध का प्रतीक बनकर उभरता है।

बीज शब्द : सामाजिक रूढ़ी, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, अधिकार, संघर्ष, प्रतिरोध।

प्रतिरोध स्त्री विमर्श का एक प्रमुख अंग है। स्त्री विमर्श केवल स्त्री की समस्याओं का वर्णन नहीं करता, बल्कि उन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और पितृसत्तात्मक संरचनाओं का विरोध भी करता है जो स्त्री की स्वतंत्रता, समानता और अस्मिता में बाधक है। प्रतिरोध के माध्यम से स्त्री अपने अधिकारों, आत्मसम्मान और स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना करती है। यह प्रतिरोध कभी वैचारिक, कभी सामाजिक, कभी सांस्कृतिक और कभी व्यक्तिगत स्तर पर अभिव्यक्त होता है। इसी कारण प्रतिरोध स्त्री विमर्श का केंद्रीय तत्व माना जाता है।

गीताश्री के इस उपन्यास में प्रतिरोध स्त्री विमर्श का केंद्रीय स्वर बनकर उभरता है। अम्बपाली नगरवधू प्रथा, स्त्री वस्तुकरण, विवृसत्तात्मक मानसिकता तथा सामाजिक रूढ़ियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विरोध करती है। उसका संघर्ष केवल व्यक्तिगत मुक्ति का संघर्ष नहीं है, बल्कि समस्त स्त्री समाज की अस्मिता, स्वतंत्रता और सम्मान की स्थापना का संघर्ष है। यह उपन्यास इतिहास, के एक उपेक्षित स्त्री-पात्र को पुनः स्थापित करते हुए उसे नारी चेतना और प्रतिरोध का प्रतीक बनाता है।

उपन्यास में वैशाली का समाज बाहरी रूप से लोकतांत्रिक और समृद्ध दिखाई देता है, किंतु उसके भीतर स्त्री के प्रति अनेक रूढ़िवादी मान्यताएँ विद्यमान हैं। स्त्री की स्वतंत्र इच्छा का कोई महत्व नहीं है। स्त्री की

स्वतंत्रता के संबंध में नसीरा शर्मा लिखती हैं 'एक औरत को यह आजादी होनी चाहिए कि वह जिस तरह से रहना चाहे रहे। अपनी जिंदगी की जिसमें खुशी समझती है उसी में जिये'¹।

अम्बवाला अतीव सुंदर थी। उसके सुंदरता पर सब मोहित थे। सब उसे पाना चाहते थे। इसलिए सत्ता और समाज द्वारा यह निर्णय लिया गया की अम्बवाली को नगरवधु बनाया जाए। इसमें अम्बवाली की सहमती नहीं थी। यहाँ अम्बवाली से उसका मनचाहा जिन्दगी का हक छीन लिया गया। नगरवधु बनने के साथ साथ उससे प्रेम, विवाह, माँ बनना जैसे स्त्री के अधिकार भी छीन लिया गया। इस निर्णय को तो वह स्वीकार करती है परंतु उस पर अपनी प्रतिरोध भी दिखाती है। उसने बहुत सारी शर्तें सत्ता और समाज के सामने रखी। 'मेरे साथ किसी प्रकार का राजकीय या सामन्ती हस्तक्षेप नहीं चलेगा। कोई भी व्यक्ति बल प्रयोग नहीं कर सकता। चाहे वह नगर का आभिजात्य नागरिक हो या सामान्य नागरिक। मैं अपने इच्छित पुरुष से प्रेम करने के लिए स्वतन्त्र रहूँगी। इससे मेरे वैशाली के प्रति कर्तव्य में बाधा नहीं आयेगी'²। सिर्फ इतना ही नहीं अम्बवाली ने यह स्पष्ट किया की अगर इन शर्तों को पूरा नहीं किया जाएगा तो वह नगरवधु नहीं बनेगी। उसको नगरवधु बनाना सत्ता की आवश्यकता थी तो सत्ता और समाज को अम्बवाली की इन शर्तों को मानना ही पड़ा। 'यदि मेरी शर्तें आपको स्वीकार नहीं तो आप प्रसन्नता से सभा के आदेशों का पालन न करने के कारण मेरा सिर धड़ से अलग कर सकते हैं'³।

उपन्यास का एक प्रमुख पक्ष यह है कि लेखिका स्त्री के वस्तुतीकरण का विरोध करती है। यह संसार स्त्री को भोग की वस्तु मानता है। फेमिनिस्त लेखिका तसलीमा नसरीन लिखती है 'दुनिया में सब कुछ भोग्य सामग्री है और दुनिया की सर्वोत्तम सामग्री है स्त्री विनिमय वस्तु के बतौर, मूल्यवान दासी के रूप में, कीमती सामग्री के रूप में समाज में नारी का स्थान है'⁴। समाज अम्बवाली की बुद्धिमता, संवेदनशीलता और व्यक्तित्व की अपेक्षा उसके रूप और यौवन को अधिक महत्व देता है। हमारे समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को मात्र एक उपभोग की वस्तु मानता है। 'वैशाली की जनपद कल्याणी, राजनर्तकी के रूप में मैं अम्बवाली, कोई ऐसी वस्तु नहीं बनना चाहती जिस पर कोई शक्तिशाली व्यक्ति इच्छानुसार अपने निर्णय आरोपित कर सके और जब चाहे मेरी देह और भावनाओं का सौदा कर सके'⁵। गीताश्री इस उपन्यास में अम्बवाली के द्वारा पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध करते हुए यह स्थापित करती हैं कि प्रत्येक स्त्री को अपने जीवन, संबंधों और भविष्य के विषय में स्वयं निर्णय लेने का अधिकार है।

प्रेम, विवाह, माँ बनना स्त्री का एक मौलिक अधिकार हैं, किंतु ये सभी अधिकार अम्बा से छीन लिए गए। लेखिका यह स्पष्ट करती हैं कि प्रेम और मातृत्व प्रत्येक स्त्री का स्वाभाविक मानवीय अधिकार है। किसी सामाजिक पद या व्यवस्था के कारण इन अधिकारों का हनन अन्याय है। समाज अम्बवाली को सिर्फ नगरवधु के रूप में देखना चाहती है। उसका रूप सौंदर्य का लाभ उठाना चाहता है। पर अम्बवाली अतीव बुद्धिमती, दूरदर्शी तथा एक कुशल राजनीतिज्ञ भी थी।

उपन्यास के अंत में अम्बवाली गौतम बुद्धा के उपदेशों से प्रभावित होकर अपना वैभव, सौंदर्य, सब कुछ त्यागकर थेरी बन गयी। अम्बवाली का थेरी बनना स्त्री विमर्श दृष्टि से उसकी अस्मिता, आत्मसम्मान और अस्तित्व की घोषणा है। अम्बवाली का यह निर्णय सिर्फ धर्म परिवर्तन का ही नहीं बल्कि समाज, सत्ता और पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा निर्मित स्त्री छवि के विरुद्ध उसका सशक्त प्रतिरोध है। वह पहली बार अपने जीवन

का मार्ग स्वयं चुनती है। यह निर्णय स्वतंत्र चेतना का निकर्ष है। अम्बवाली का थेरी बनना समाजिक रूढ़ियों, लैंगिक भेदभाव और स्त्री शोष के विरुद्ध प्रतिरोध स्वर है। इस प्रकार गीताश्री अम्बपाली के माध्यम से यह स्थापित करती है कि स्त्री की वास्तविक स्वतंत्रता तभी संभव है, जब उसे अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने का अधिकार प्राप्त हो।

निष्कर्ष :

गीताश्री का उपन्यास 'अम्बपाली : एक उत्तरगाथा' केवल इतिहास को प्रस्तुत करने वाला उपन्यास नहीं है, बल्कि इसमें उस समय के समाज में स्त्री की स्थिति और उसके जीवन से जुड़े अनेक प्रश्नों को सामने रखा गया है। अम्बपाली के जीवन के माध्यम से लेखिका ने समाज में प्रचलित रूढ़ियों, पुरुष प्रधान सोच और स्त्री के प्रति होने वाले भेदभाव को स्पष्ट रूप से दिखाया है। साथ ही, स्त्री के अपने निर्णय लेने और स्वतंत्र जीवन जीने के अधिकार को भी महत्व दिया गया है। वैशाली के लोकतांत्रिक समाज का चित्रण करते हुए यह भी बताया गया है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था होने के बावजूद स्त्रियों को पूरी स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी।

इस प्रकार, 'अम्बपाली : एक उत्तरगाथा' में इतिहास को स्त्री के दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया गया है। अम्बपाली का चरित्र स्त्री के आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का प्रतीक बनकर सामने आता है। इसलिए यह उपन्यास इतिहास के साथ-साथ समाज और स्त्री-विमर्श को समझने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. औरत के लिए औरत, नसीश शर्मा, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, 2007, पृ. 201.
2. अम्बपाली एक उत्तरगाथा, गीताश्री, वाणी प्रकाशन, 2022, पृ. 38
3. वही पुस्तक पृ. 39
4. औरत के हक में तसलीमा नसरिन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ. 19
5. अम्बपाली एक उत्तरगाथा, गीताश्री, वाणी प्रकाशन, 2022, पृ. 39

संपर्क : 9746346966

ईमेल – haseenachikku6966@gmail.com



प्रगतिवादी कविता में जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति

श्यामलाल

(एम.ए.हिन्दी) जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय।

जोधपुर NET – UGC (हिन्दी)

• सारांश :

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में प्रगतिवादी कविता का उदय भारतीय समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के गहरे परिवर्तन के साथ हुआ। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक से भारतीय समाज में औपनिवेशिक शोषण, सामंती व्यवस्था, आर्थिक विषमता, गरीबी, बेरोजगारी, किसानों और मजदूरों की दयनीय स्थिति तथा स्वतंत्रता आंदोलन की तीव्रता ने साहित्यकारों को प्रभावित किया। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के गठन के साथ साहित्य में जनजीवन, सामाजिक यथार्थ और परिवर्तन की आकांक्षा को संगठित वैचारिक आधार मिला। प्रगतिवादी कविता ने साहित्य को केवल सौंदर्य और व्यक्तिगत अनुभूति तक सीमित न रखकर उसे व्यापक सामाजिक जीवन से जोड़ा।

प्रगतिवादी कवियों के लिए 'जन' साहित्य का केंद्रीय विषय बन गया। किसान, मजदूर, स्त्री, दलित, निम्न-मध्यवर्ग, भूखा और पीड़ित मनुष्य तथा शोषित समाज उनकी कविता में पहली बार इतने व्यापक और मुखर रूप में दिखाई देते हैं। इस कविता में जन-भावना केवल करुणा के रूप में उपस्थित नहीं है, बल्कि वह आक्रोश, प्रतिरोध, संघर्ष, मुक्ति की आकांक्षा और सामाजिक परिवर्तन की चेतना में विकसित होती है। निराला, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, शील और अन्य कवियों की रचनाओं में जनसाधारण के जीवन की वास्तविकता अभिव्यक्त हुई है।

प्रस्तुत आलेख में प्रगतिवादी कविता की पृष्ठभूमि, जन-भावना की अवधारणा, किसान-मजदूर जीवन, स्त्री-चेतना, आर्थिक विषमता, राजनीतिक शोषण, साम्राज्यवाद-विरोध, प्रकृति और श्रम-सौंदर्य तथा भाषा और शिल्प के लोकतांत्रिक रूप का विवेचन किया गया है। साथ ही यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि प्रगतिवादी कविता में जनभावना केवल विषय नहीं, बल्कि उसकी दृष्टि और संवेदना का मूल आधार है।

• **बीज शब्द :** प्रगतिवाद, प्रगतिशील कविता, जनभावना, जनजीवन, किसान, मजदूर, शोषण, वर्ग-चेतना, सामाजिक यथार्थ, प्रतिरोध।

• **प्रगतिवाद की ऐतिहासिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि :**

प्रगतिवादी कविता के उदय के पीछे अनेक ऐतिहासिक शक्तियाँ कार्यरत थीं। भारत में औपनिवेशिक शासन ने आर्थिक और सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया। किसानों पर आर्थिक दबाव, ग्रामीण

गरीबी, औद्योगिक श्रमिकों की कठिन परिस्थितियाँ तथा सामाजिक विषमता साहित्यकारों के सामने उपस्थित वास्तविकताएँ थीं।

दूसरी ओर विश्व स्तर पर समाजवादी और मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ रहा था। रूसी क्रांति ने दुनिया भर के बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया। वर्ग-विषमता, श्रम और पूँजी के संबंध तथा शोषित वर्गों की मुक्ति जैसे प्रश्न साहित्यिक विमर्श का हिस्सा बने।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन ने भी साहित्यकारों की चेतना को प्रभावित किया। राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता की आकांक्षा विकसित हुई। परिणामतः साहित्य में केवल विदेशी शासन के विरोध की भावना नहीं रही, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था की आलोचना भी होने लगी जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण होता था।

1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ का गठन प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन के इतिहास में निर्णायक घटना माना जाता है। इसके बाद साहित्य में सामाजिक यथार्थ, जनपक्षधरता और परिवर्तन की चेतना को अधिक संगठित रूप मिला। आधुनिक हिंदी साहित्य के पाठ्यक्रमों में भी प्रगतिवाद को आधुनिक हिंदी कविता के प्रमुख साहित्यिक आंदोलनों में स्थान दिया जाता है।

• **प्रगतिवादी कविता और जनभावना :**

प्रगतिवादी कविता का मूल आग्रह है कि साहित्य जीवन से जुड़ा हो। जीवन से जुड़ने का अर्थ है कि साहित्यकार समाज के सुख-दुःख, संघर्ष और विषमता को अपनी रचना में स्थान दे। इसीलिए प्रगतिवादी कविता में जनभावना केंद्रीय भूमिका ग्रहण करती है।

जनभावना को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है —

- पीड़ा की अनुभूति।
- अन्याय के प्रति आक्रोश।
- परिवर्तन की आकांक्षा।

पहले स्तर पर कवि सामान्य जनता की गरीबी और कठिनाइयों को देखता है। दूसरे स्तर पर वह इन परिस्थितियों के कारणों को पहचानता है और शोषणकारी व्यवस्था के प्रति प्रश्न उठाता है। तीसरे स्तर पर कविता संघर्ष और परिवर्तन का स्वप्न प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार प्रगतिवादी कविता की जनभावना केवल दया या सहानुभूति नहीं है। यह सक्रिय सामाजिक चेतना है। कवि जनता के जीवन को बाहर से देखने वाला दर्शक नहीं रह जाता, बल्कि उसके संघर्ष और आकांक्षाओं के साथ अपनी संवेदना को जोड़ता है।

रामविलास शर्मा के प्रगतिशील साहित्य संबंधी विचारों में साहित्य और सामाजिक जीवन के संबंध पर विशेष बल दिखाई देता है। उनकी पुस्तक 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ' का प्रथम प्रकाशन-परंपरा और बाद के संस्करण प्रगतिशील आलोचना के अध्ययन में महत्वपूर्ण रहे हैं। उपलब्ध संदर्भों में 1957 के संस्करण के पृष्ठ 138 तथा बाद के संस्करणों के पृष्ठ 163, 167, 170 आदि उद्धृत मिलते हैं।

• **किसान जीवन की अभिव्यक्ति :**

भारतीय समाज लंबे समय तक कृषि-प्रधान रहा है। इसलिए भारतीय जनजीवन की सबसे बड़ी इकाई

किसान रहा है। प्रगतिवादी कविता ने किसान को केवल ग्रामीण सौंदर्य का प्रतीक नहीं बनाया, बल्कि उसकी वास्तविक सामाजिक और आर्थिक स्थिति को कविता का विषय बनाया।

किसान के जीवन में गरीबी, ऋण, श्रम, मौसम पर निर्भरता, भूमि संबंधी समस्याएँ और सामाजिक असमानता जैसी अनेक समस्याएँ थीं। प्रगतिवादी कवि इन परिस्थितियों को भावुकता से नहीं बल्कि यथार्थ की दृष्टि से देखते हैं।

किसान प्रगतिवादी कविता में श्रमशील मनुष्य का प्रतिनिधि है। उसका पसीना उत्पादन का आधार है, किंतु उत्पादन का लाभ उसे पर्याप्त रूप से प्राप्त नहीं होता। इस विरोधाभास को प्रगतिवादी कविता ने तीव्रता से अभिव्यक्त किया।

नागार्जुन की कविताओं में ग्रामीण जीवन की वास्तविकता विशेष रूप से दिखाई देती है। उनकी कविता में किसान केवल करुणा का पात्र नहीं, बल्कि व्यवस्था से सवाल करने वाला व्यक्ति भी है। यही कारण है कि नागार्जुन को हिंदी का प्रमुख जनकवि माना जाता है। उनकी कविता में जनवादी चेतना, सामाजिक व्यथा, विरोध और आक्रोश का सशक्त रूप मिलता है।

• मजदूर वर्ग और श्रम की प्रतिष्ठा :

प्रगतिवादी कविता ने श्रम को साहित्यिक गरिमा प्रदान की। परंपरागत साहित्य में श्रमशील मनुष्य को प्रायः केंद्रीय स्थान नहीं मिलता था। प्रगतिवादी कवियों ने इस स्थिति को बदला।

मजदूर प्रगतिवादी कविता में आधुनिक सभ्यता के निर्माणकर्ता के रूप में उपस्थित होता है। कारखानों, खेतों, सड़कों और निर्माण-स्थलों पर काम करने वाला श्रमिक समाज की भौतिक संरचना तैयार करता है, किंतु स्वयं अभावग्रस्त रहता है। इस विरोधाभास ने कवियों को गहराई से प्रभावित किया।

श्रम की प्रतिष्ठा प्रगतिवादी कविता का महत्वपूर्ण पक्ष है। श्रम यहाँ केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि मनुष्य की सृजनात्मक शक्ति है। मजदूर का पसीना सामाजिक निर्माण का प्रतीक बनता है।

रामविलास शर्मा की आलोचना-दृष्टि में साहित्य के सामाजिक आधार और वर्गीय यथार्थ का विश्लेषण महत्वपूर्ण है। उनकी 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ' इसी वैचारिक परंपरा की प्रतिनिधि कृति है। उपलब्ध शोध-संदर्भों में इस पुस्तक के विभिन्न संस्करणों से पृष्ठ 118, 138, 163-179 आदि उद्धृत किए गए हैं।

• गरीबी और भूख की अभिव्यक्ति :

जनभावना का सबसे मार्मिक पक्ष गरीबी और भूख है। प्रगतिवादी कविता ने भूख को केवल व्यक्तिगत समस्या न मानकर सामाजिक व्यवस्था की समस्या के रूप में देखा।

निराला की प्रसिद्ध कविता 'भिक्षुक' और 'वह तोड़ती पत्थर' में सामान्य मनुष्य की दयनीय परिस्थितियाँ अत्यंत प्रभावशाली ढंग से सामने आती हैं। विशेष बात यह है कि कवि इन पात्रों को केवल करुणा का विषय नहीं बनाता, बल्कि उनके श्रम और मनुष्यता को सामने लाता है।

'वह तोड़ती पत्थर' की श्रमिक स्त्री प्रगतिवादी संवेदना के निर्माण में महत्वपूर्ण उदाहरण है। वहाँ स्त्री गरीबी और श्रम के बीच संघर्ष करती दिखाई देती है। उसके जीवन में अभाव है, किंतु उसकी उपस्थिति में मनुष्य की गरिमा भी है।

निराला के साहित्य में सामाजिक यथार्थ की ओर बढ़ती चेतना को रामविलास शर्मा ने विस्तार से

विश्लेषित किया है। निराला की साहित्यसाधना के संदर्भ में उपलब्ध स्रोत रामविलास शर्मा की पुस्तक के 1969 संस्करण के पृष्ठ 351 का उल्लेख करते हैं।

- **स्त्री जीवन और जनभावना :**

प्रगतिवादी कविता में स्त्री को केवल सौंदर्य की वस्तु के रूप में देखने की परंपरा से अलग दृष्टि विकसित होती है। स्त्री अब श्रम करने वाली, संघर्ष करने वाली और सामाजिक विषमता से जूझने वाली मनुष्य के रूप में सामने आती है।

निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है। पत्थर तोड़ती स्त्री श्रम और अभाव का प्रतीक है। उसके माध्यम से कवि समाज के उस वर्ग को सामने लाता है जिसका श्रम दिखाई देता है, किंतु जिसकी पीड़ा अक्सर अनदेखी कर दी जाती है।

प्रगतिवादी कविता में स्त्री-जीवन की अभिव्यक्ति केवल घरेलू दुख तक सीमित नहीं है। इसमें आर्थिक स्वतंत्रता, श्रम, सामाजिक असमानता और सम्मान की आकांक्षा जैसे प्रश्न भी शामिल हैं।

इस प्रकार जनभावना का विस्तार स्त्री तक होता है। जन का अर्थ केवल पुरुष किसान या मजदूर नहीं बल्कि पूरा श्रमशील और वंचित समाज है।

- **सामाजिक विषमता और वर्ग-चेतना :**

प्रगतिवादी कविता की एक प्रमुख विशेषता सामाजिक और आर्थिक विषमता का चित्रण है। समाज में एक ओर संपन्न वर्ग है और दूसरी ओर वह विशाल जनसमुदाय जो अपने श्रम के बावजूद गरीबी में जीवन बिताता है।

प्रगतिवादी कवि इस विषमता के पीछे मौजूद सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं की आलोचना करते हैं। इस दृष्टि से कविता में वर्ग-चेतना विकसित होती है।

यहाँ 'वर्ग' केवल आर्थिक श्रेणी नहीं है। वह सामाजिक अनुभवों और जीवन-स्थितियों से निर्मित चेतना भी है। किसान, मजदूर और शोषित व्यक्ति अपनी स्थिति को समझते हुए अन्याय के प्रति प्रश्न उठाता है।

शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा और अन्य प्रगतिशील आलोचकों ने साहित्य को सामाजिक संदर्भों में देखने की परंपरा को मजबूत किया। साहित्य की समस्याएँ में शिवदान सिंह चौहान की आलोचनात्मक दृष्टि के संदर्भ उपलब्ध स्रोतों में पृष्ठ 292 के साथ दर्ज हैं।

- **साम्राज्यवाद-विरोध और राष्ट्रीय भावना :**

प्रगतिवादी कविता का एक महत्वपूर्ण पक्ष साम्राज्यवाद-विरोध है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में राजनीतिक स्वतंत्रता का प्रश्न साहित्य की चेतना से अलग नहीं रह सकता था।

प्रगतिवादी कवि विदेशी शासन को केवल राजनीतिक सत्ता के रूप में नहीं देखते थे, बल्कि उसके आर्थिक और सामाजिक प्रभावों को भी पहचानते थे। इसलिए उनकी कविता में राष्ट्रीय मुक्ति और सामाजिक मुक्ति के प्रश्न परस्पर जुड़े हुए दिखाई देते हैं।

राष्ट्रीय भावना का स्वर प्रगतिवादी कविता में रोमानी राष्ट्रवाद से अलग है। यहाँ राष्ट्र केवल भूमि या सांस्कृतिक गौरव का नाम नहीं, बल्कि उस जनता का नाम है जो देश में रहती है। यदि जनता भूखी और शोषित है तो केवल राजनीतिक स्वतंत्रता पर्याप्त नहीं मानी जा सकती।

इसलिए प्रगतिवादी कविता में राष्ट्रीयता का संबंध जनकल्याण से जुड़ता है।

- **राजनीतिक चेतना :**

प्रगतिवादी कवि राजनीति को सामान्य मनुष्य के जीवन से जोड़कर देखते हैं। शासन की नीतियाँ किसान, मजदूर और सामान्य नागरिक के जीवन को प्रभावित करती हैं। इसलिए कविता में राजनीतिक प्रश्नों का प्रवेश स्वाभाविक था।

नागार्जुन इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनकी कविताओं में सत्ता की आलोचना, जनजीवन की समस्याएँ और राजनीतिक विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य मिलता है। उनकी जनपक्षधरता उन्हें विशिष्ट जनकवि बनाती है।

उनकी कविता में जनता स्वयं बोलती है। दिखाई देती है। कवि सत्ता के सामने प्रश्न करता है और आम आदमी की ओर से अपनी आवाज उठाता है।

वही कारण है कि प्रगतिवादी कविता का राजनीतिक स्वर केवल राजनीतिक नारा नहीं है। वह जनजीवन में उत्पन्न अनुभव और अनुभूति का दस्तावेज है।

- **शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध :**

प्रगतिवादी कविता में शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध जनभावना की स्वाभाविक परिणति है। जब कवि जनता की पीड़ा को पहचानता है, तब वह केवल उसका वर्णन करके नहीं रुकता; वह उस व्यवस्था पर प्रश्न उठाता है जो पीड़ा उत्पन्न करती है।

इसलिए, प्रगतिवादी कविता में आक्रोश का स्वर मिलता है। यह आक्रोश व्यक्ति—विरोधी नहीं बल्कि अन्याय—विरोधी है।

कवि का उद्देश्य केवल पाठक को दुखी करना नहीं बल्कि उसमें सामाजिक बदलाव के प्रति जागरूक करना है। इस दृष्टि से प्रगतिवादी कविता चेतना—जागरण की कविता भी है।

प्रगतिवादी साहित्य की आलोचना में भी यह प्रश्न उठा कि साहित्य का संबंध सामाजिक परिवर्तन से किस प्रकार स्थापित किया जाए। इसलिए कविता में जनता ने प्रगतिवादी का स्वर लगाया। 'प्रचार' संबंधी आरोपों पर विचार करते हुए साहित्य और सामाजिक विचारधारा के संबंध की चर्चा की है।

- **प्रकृति और जनजीवन :**

प्रगतिवादी कविता में प्रकृति का स्वरूप भी बदलता है। छायावादी कविता में प्रकृति प्रायः कवि के आत्मानुभव और सौंदर्यबोध की सहचरी थी। प्रगतिवादी कविता में प्रकृति का संबंध श्रम और जीवन की वास्तविकताओं से जुड़ता है।

खेत, वर्षा, धूप, मिट्टी, फसल और ऋतु का संबंध किसान के जीवन से है। इसलिए प्रकृति केवल सौंदर्य का दृश्य नहीं रहती, बल्कि आर्थिक जीवन की आधारभूमि बन जाती है।

किसान के लिए वर्षा केवल सुंदर दृश्य नहीं, बल्कि फसल और जीवन की संभावना है। सूखा उसके लिए आर्थिक संकट है। इस प्रकार प्रगतिवादी कविता प्रकृति को सामाजिक यथार्थ में जोड़ती है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता में श्रम, धरती और प्रकृति का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। उनके यहाँ धरती से प्रेम केवल सौंदर्यबोध नहीं, बल्कि श्रमशील जीवन के प्रति आस्था का रूप ग्रहण करता है।

- **भाषा का लोकतंत्रीकरण :**

प्रगतिवादी कविता ने भाषा के क्षेत्र में भी परिवर्तन किया। कविता की भाषा अधिक सहज, बोलचाल के निकट और जनजीवन से जुड़ी हुई हुई।

कवि ने सामान्य जीवन में प्रयुक्त शब्दों, लोकभाषा, ग्रामीण शब्दावली और बोलचाल के मुहावरों को कविता में प्रतिष्ठित किया। इससे कवि और पाठक के बीच दूरी कम हुई।

नागार्जुन की भाषा में लोकजीवन का सहज प्रभाव दिखाई देता है। त्रिलोचन की कविता में ग्रामीण जीवन और बोलचाल की संवेदना मिलती है। केदारनाथ अग्रवाल की भाषा में धरती और श्रम की गंध है।

यह भाषिक परिवर्तन केवल शैलीगत परिवर्तन नहीं था। इसके पीछे लोकतांत्रिक साहित्यिक दृष्टि थी, जिस जनता को कविता का विषय बनाया गया, उसकी भाषा को भी कविता में सम्मान दिया गया।

- **व्यंग्य और जनभावना :**

प्रगतिवादी कविता में व्यंग्य भी जनभावना की अभिव्यक्ति का प्रभावी माध्यम है। सत्ता, सामाजिक पाखंड, आर्थिक विषमता और राजनीतिक अवसरवाद पर व्यंग्य करके कवि जनता की असंतुष्टि की अभिव्यक्ति देता है।

नागार्जुन का व्यंग्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनका व्यंग्य किसी कृत्रिम हास्य के लिए नहीं बल्कि सामाजिक विसंगतियों को उजागर करने के लिए है।

व्यंग्य की शक्ति यह है कि वह जटिल सामाजिक समस्याओं को सामान्य पाठक के अनुभव से जोड़ देता है। सत्ता और समाज के विरोधाभासों को सरल और तीखे शब्दों में सामने लाकर वह जनचेतना को सक्रिय करता है।

- **निराला और जनभावना :**

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की हिंदी कविता में प्रगतिशील चेतना के विकास की दृष्टि से विशेष महत्त्व प्राप्त है। यद्यपि उन्हें केवल प्रगतिवादी कवि की सीमित सीमा में बाँधना उचित नहीं है, फिर भी उनके अनेक काव्यांशों में शोषित और श्रमशील मनुष्य के प्रति गहरी संवेदना दिखाई देती है।

'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर', 'कुकुरमुत्ता' आदि रचनाएँ सामाजिक यथार्थ और जनजीवन से उनके गहरे संबंध को दिखाती हैं।

'वह तोड़ती पत्थर' में श्रमशील स्त्री और 'भिक्षुक' में अभावग्रस्त व्यक्ति के चित्र के माध्यम से निराला ने उन जीवनानुभवों को साहित्य का हिस्सा बनाया जिन्हें अभिजात साहित्यिक दृष्टि प्रायः उपेक्षित करती थी।

- **नागार्जुन और जनकवि की चेतना :**

नागार्जुन प्रगतिशील और जनवादी कवि के सबसे सशक्त कवियों में गिने जाते हैं। उनके काव्य का सबसे बड़ा गुण जनता के जीवन के साथ गहरा संबंध है।

उनकी कविता में किसान, मजदूर, गरीब, राजनीतिक सत्ता और ग्रामीण जीवन के अनेक रूप दिखाई देते हैं। वे जनता के जीवन को किसी स्वप्न आदर्श के रूप में नहीं बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

नागार्जुन की जनपक्षधरता उन्हें 'जनकवि' की प्रतिष्ठा देती है। उनके काव्य में व्यथा के साथ विरोध और आक्रोश भी मिलता है। जनकल्याण की भावना उनके सामाजिक दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण आधार बनती है।

उनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जनता की भाषा और जनता की आवाज दोनों उपस्थित हैं। इसलिए उनका काव्य पाठक से सीधा संवाद स्थापित करता है।

- **केदारनाथ अग्रवाल और श्रम-सौंदर्य :**

केदारनाथ अग्रवाल की कविता में धरती, नदी, खेत, किसान, मजदूर और श्रम का विशिष्ट सौंदर्य मिलता है। उनके यहाँ प्रेम और प्रकृति की अनुभूति भी जनजीवन से अलग नहीं है।

वे श्रमशील मनुष्य के सौंदर्य को पहचानते हैं। उनके काव्य में ग्रामीण जीवन किसी रोमानी कल्पना का संसार नहीं बल्कि जीवंत सामाजिक वास्तविकता है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता यह स्थापित करती है कि सौंदर्य केवल महलों, उद्यानों और अभिजात जीवन में नहीं होता। खेत में काम करता किसान, श्रम करती स्त्री और मिट्टी से जुड़ा मनुष्य ही सौंदर्य का अधिकारी है।

इस प्रकार उन्होंने साहित्यिक सौंदर्यबोध का लोकतंत्रीकरण किया।

- **त्रिलोचन और लोकजीवन :**

त्रिलोचन की कविता में लोकजीवन की गहरी उपस्थिति दिखाई देती है। उनकी भाषा सहज और जनजीवन से जुड़ी है। किसान, ग्रामीण व्यक्ति और सामान्य मनुष्य उनके काव्य के महत्वपूर्ण पात्र हैं।

त्रिलोचन की विशेषता यह है कि वे जनजीवन को केवल संघर्ष और अभाव के रूप में नहीं देखते। उनके यहाँ सामान्य मनुष्य की छोटी-छोटी खुशियाँ, संबंध, श्रम, स्मृतियाँ और आशाएँ भी अभिव्यक्त होती हैं।

इस प्रकार उनकी कविता जनभावना को अधिक व्यापक बनाती है। जनभावना केवल राजनीतिक प्रतिरोध नहीं, बल्कि जीवन के प्रति पूरी आत्मीयता भी है।

- **जनभावना और मानववाद :**

प्रगतिवादी कविता को केवल वर्ग-संघर्ष की कविता मानना उसके व्यापक मानवीय पक्ष को सीमित कर देना होगा। इसके केंद्र में अंततः मनुष्य है।

प्रगतिवादी कवि चाहते हैं कि मनुष्य को गरीबी, शोषण और असमानता से मुक्त जीवन मिले। इसलिए उनकी कविता में मानव-मुक्ति की आकांक्षा दिखाई देती है।

जनभावना का मूल भी मानवता है। किसान के दुःख को अपना दुःख समझना, मजदूर के श्रम का सम्मान करना, स्त्री की पीड़ा को पहचानना और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना मानववादी चेतना का ही परिणाम है।

इस दृष्टि से प्रगतिवादी कविता सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की कविता है।

- **प्रगतिवादी कविता की कलात्मकता :**

प्रगतिवादी कविता के आलोचकों पर कभी-कभी यह आरोप लगाया गया कि विचारधारा की प्रधानता के कारण उसकी कलात्मकता कमजोर हो जाती है। किंतु प्रगतिवादी कविता का गंभीर अध्ययन इस धारणा को पूरी तरह स्वीकार नहीं करता।

निराला, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन की कविताओं में विषय और कला का महीन संबंध दिखाई देता है। व्यंग्य, प्रतीक, बिंब, लोकभाषा, संवाद, कथात्मकता और यथार्थपरक चित्रण इसके प्रमुख कलात्मक उपकरण हैं।

प्रगतिवादी कविता की कला जीवन से जुड़ी कला है। उसकी सुंदरता कृत्रिम अलंकरण में नहीं बल्कि जीवन की सच्चाई को प्रभावशाली रूप में व्यक्त करने में है।

- **प्रगतिवादी कविता की सीमाएँ :**

प्रगतिवादी कविता का महत्व निर्विवाद है, किंतु उसके भीतर कुछ सीमाएँ भी दिखाई देती हैं। कुछ कविताओं में विचारधारा की प्रधानता इतनी अधिक हो जाती है कि कलात्मकता पीछे चली जाती है। कहीं-कहीं कविता नारे के निकट पहुँच जाती है।

इसके अतिरिक्त सभी प्रगतिवादी कवियों को एक ही वैचारिक साँचे में रखना भी उचित नहीं है। निराला, नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल की काव्य-दृष्टियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं।

इसलिए प्रगतिवादी कविता का मूल्यांकन करते समय उसके भीतर मौजूद विविधता को स्वीकार करना आवश्यक है।

- **प्रगतिवादी कविता और समकालीन प्रासंगिकता :**

आज भी आर्थिक विषमता, श्रम की असुरक्षा, बेरोजगारी, ग्रामीण संकट, सामाजिक भेदभाव और सत्ता-सामान्य नागरिक के संबंध जैसे प्रश्न प्रासंगिक हैं। इस कारण प्रगतिवादी कविता की जनपक्षधरता आज भी महत्वपूर्ण दिखाई देती है।

प्रगतिवादी कविता हमें यह याद दिलाती है कि साहित्य का संबंध समाज के वास्तविक जीवन से होना चाहिए। कविता केवल मनोरंजन नहीं बल्कि संवेदना, प्रश्न और विचार का माध्यम भी हो सकती है।

आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास संबंधी विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों में आज भी प्रगतिवाद को आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रमुख आंदोलनों में शामिल किया जाता है।

इसकी प्रासंगिकता का कारण यही है कि जनजीवन के प्रश्न समय के साथ बदलते हुए भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुए हैं।

- **निष्कर्ष :**

प्रगतिवादी कविता हिंदी साहित्य में जनभावना की सशक्त अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण अध्याय है। इस कविता ने साहित्य के केंद्र को व्यापक बनाया और उन लोगों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की जो लंबे समय तक साहित्य के हाशिए पर रहे थे।

किसान, मजदूर, स्त्री, गरीब, श्रमिक और सामान्य नागरिक प्रगतिवादी कविता के केंद्रीय पात्र बने। उनकी पीड़ा के साथ-साथ उनके श्रम, स्वाभिमान, संघर्ष और भविष्य की आकांक्षा को भी कविता में स्थान मिला।

प्रगतिवादी कविता की जनभावना करुणा से शुरू होकर प्रतिरोध और परिवर्तन की चेतना तक पहुँचती है। यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसमें जनता केवल पीड़ित नहीं है; वह इतिहास बनाने वाली शक्ति भी है।

निराला ने श्रमशील और अभावग्रस्त मनुष्य को कविता में प्रतिष्ठा दी। नागार्जुन ने जनता की भाषा में जनता की आवाज को स्वर दिया। केदारनाथ अग्रवाल ने श्रम और धरती के सौंदर्य को पहचाना तथा त्रिलोचन ने लोकजीवन की सहज संवेदना को काव्य में स्थान दिया।

इस प्रकार प्रगतिवादी कविता ने हिंदी कविता को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा और उसकी संवेदना को

लोकतांत्रिक विस्तार दिया। उसका सबसे महत्वपूर्ण योगदान यही है कि उसने कविता को मनुष्य के जीवन, श्रम और संघर्ष के निकट पहुँचाया।

अतः यह कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी कविता में जनभावना केवल एक विषयगत प्रवृत्ति नहीं बल्कि उसकी मूल संवेदनात्मक और वैचारिक आधारभूमि है। जन के दुःख में दुःखी होना, उसके श्रम का सम्मान करना, उसके अधिकारों के पक्ष में खड़ा होना और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा को स्वर देना— इन्हीं तत्वों से प्रगतिवादी कविता की जनपक्षधरता निर्मित होती है।

• **संदर्भ-सूची :**

1. शर्मा, रामविलास — प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, द्वितीय संस्करण, 1957, पृ. 138।
2. शर्मा, रामविलास — प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 संस्करण, पृ. 163, 167, 170, 177, 179। इन पृष्ठों के उद्धरण शोध-स्रोत में उपलब्ध हैं।
3. शर्मा, रामविलास — निराला की साहित्यसाधना, खंड-1, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1969, पृ. 351।
4. चौहान, शिवदान सिंह — साहित्य की समस्याएँ, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1959, पृ. 292।
5. रांगेय, रांगेय — प्रगतिशील साहित्य के मानदंड, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, प्रथम संस्करण, 1954, पृ. 71।
6. भारती, धर्मवीर — प्रगतिवाद, एक समीक्षा, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1949, पृ. 14।



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 112-120

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

हरियाणा में कल्याणकारी योजनाएँ और राजनीतिक व्यवहार : 2014 से 2026 तक एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

पूजा शर्मा, शोधार्थी

डॉ. राकेश रोहिल्ला, मार्गदर्शक

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक।

सारांश :

यह शोध-पत्र 2014 से 2026 तक हरियाणा में संचालित कल्याणकारी योजनाओं और उनके राजनीतिक व्यवहार पर प्रभाव का विश्लेषण करता है। लोकतांत्रिक शासन में कल्याणकारी योजनाएँ नागरिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के साथ-साथ सरकार और जनता के बीच प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करती हैं। हरियाणा में वृद्धावस्था सम्मान भत्ता, विधवा पेंशन, दिव्यांग पेंशन, लाडली सामाजिक सुरक्षा भत्ता, दीनदयाल लाडो लक्ष्मी योजना, किसान सहायता, रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा और आवास से संबंधित योजनाओं ने विभिन्न सामाजिक वर्गों को प्रभावित किया है।

इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि कल्याणकारी योजनाओं की घोषणा, पहुँच, पारदर्शिता, समयबद्धता और वास्तविक लाभ राजनीतिक विश्वास, मतदान व्यवहार, राजनीतिक सहभागिता तथा सरकार के मूल्यांकन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। हरियाणा के सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग के डैशबोर्ड के अनुसार जनवरी 2024 में विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के कुल 31,51,139 लाभार्थी थे, जिनमें वृद्धावस्था सम्मान भत्ता (18,94,442), विधवा पेंशन (8,42,675) और दिव्यांग पेंशन (1,91,920) के लाभार्थी प्रमुख थे। 1 सितंबर 2026 तक कुल लाभार्थी संख्या 46,33,633 तक पहुँच गई।

अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक शोध है। इसमें सरकारी पोर्टल, बजट दस्तावेज, योजना संबंधी अधिसूचनाएँ, निर्वाचन आयोग के आँकड़े और उपलब्ध शोध साहित्य का उपयोग किया गया है। 2025-26 के बजट में दीनदयाल लाडो लक्ष्मी योजना के लिए 5,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया, जिसके तहत पात्र महिलाओं को 2,100 रुपये मासिक सहायता दी जाती है। सितंबर 2026 में आय सीमा 1 लाख से बढ़ाकर 1.80 लाख रुपये कर दी गई, जिससे लगभग 27 लाख अतिरिक्त महिलाएँ लाभार्थी बनेंगी। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कल्याणकारी योजनाएँ राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करती हैं, लेकिन उनका प्रभाव स्वतः और समान रूप से नहीं होता। योजना का वास्तविक लाभ, प्रशासनिक गुणवत्ता, स्थानीय नेतृत्व, बेरोजगारी, महंगाई, जातीय समीकरण, किसान समस्याएँ और उम्मीदवार की विश्वसनीयता भी मतदाता

व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

मुख्य शब्द : हरियाणा, कल्याणकारी योजनाएँ, राजनीतिक व्यवहार, मतदाता, सामाजिक सुरक्षा, महिला सशक्तीकरण, किसान कल्याण, डिजिटल शासन, राजनीतिक विश्वास।

1. प्रस्तावना :

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा आधुनिक लोकतांत्रिक शासन का एक महत्वपूर्ण आधार है। इसका मुख्य उद्देश्य समाज के कमजोर, वंचित और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को सुरक्षा, सहायता और विकास के अवसर प्रदान करना है। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में कल्याणकारी योजनाएँ गरीबी, बेरोजगारी, असमानता, सामाजिक बहिष्करण और आर्थिक असुरक्षा को कम करने का कार्य करती हैं। इसके साथ-साथ ये योजनाएँ नागरिकों और राज्य के बीच संबंधों को भी प्रभावित करती हैं।

राजनीतिक व्यवहार से आशय नागरिकों के मतदान, राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक विश्वास, सरकार के मूल्यांकन, राजनीतिक दलों के प्रति समर्थन और सार्वजनिक नीतियों के प्रति प्रतिक्रिया से है। जब किसी नागरिक को सरकार से पेंशन, छात्रवृत्ति, रोजगार सहायता, स्वास्थ्य सुविधा, आवास या आर्थिक सहायता मिलती है, तो वह सरकार के कार्यों का मूल्यांकन अपने अनुभव के आधार पर करता है। इसी कारण कल्याणकारी योजनाएँ सामाजिक नीति के साथ-साथ राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने का माध्यम भी बन जाती हैं। हरियाणा इस विषय के अध्ययन के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण राज्य है। राज्य की राजनीति पर कृषि अर्थव्यवस्था, ग्रामीण समाज, युवा जनसंख्या, जातीय समूहों, क्षेत्रीय असमानताओं, महिला मतदाताओं और किसान मुद्दों का प्रभाव रहा है। 2014 के बाद हरियाणा में योजनाओं के वितरण में डिजिटल पहचान, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण और ऑनलाइन सेवाओं का उपयोग बढ़ा। परिवार पहचान पत्र जैसी व्यवस्थाओं ने लाभार्थियों की पहचान और सरकारी सेवाओं तक पहुँच को अधिक संगठित करने का प्रयास किया।

वर्ष 2014 से 2026 की अवधि राजनीतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इस दौरान राज्य में नेतृत्व, चुनावी मुद्दों और जन-अपेक्षाओं में बदलाव आए। कल्याणकारी योजनाएँ चुनावी घोषणाओं, शासन की उपलब्धियों और राजनीतिक संवाद का हिस्सा बनीं। इस अवधि में महिलाओं, किसानों, युवाओं, वरिष्ठ नागरिकों, दिव्यांगजनों और अनुसूचित जातियों के लिए विभिन्न योजनाओं पर बल दिया गया।

2. अध्ययन की पृष्ठभूमि :

हरियाणा में कल्याणकारी योजनाओं का इतिहास केवल वर्तमान सरकारों तक सीमित नहीं है। राज्य में लंबे समय से वृद्धावस्था पेंशन, विधवा सहायता, छात्रवृत्ति, अनुसूचित जाति कल्याण, ग्रामीण विकास और किसान सहायता से संबंधित कार्यक्रम संचालित होते रहे हैं। समय के साथ इन योजनाओं का स्वरूप बदला है। पहले जहाँ आवेदन और लाभ वितरण अधिकतर कागजी प्रक्रिया पर आधारित था, वहीं अब डिजिटल पोर्टल, परिवार पहचान और बैंक खाते के माध्यम से भुगतान की व्यवस्था विकसित हुई है।

हरियाणा राज्य प्रत्यक्ष लाभ अंतरण पोर्टल पर सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग से संबंधित अनेक योजनाएँ सूचीबद्ध हैं, जिनमें विधवा एवं निराश्रित महिलाओं की पेंशन, वृद्धावस्था सम्मान भत्ता, लाडली सामाजिक सुरक्षा भत्ता और दिव्यांग पेंशन जैसी योजनाएँ शामिल हैं। सामाजिक न्याय विभाग के डैशबोर्ड पर जनवरी 2024 में वृद्धावस्था सम्मान भत्ता के 18,94,442, विधवा पेंशन के 8,42,675 और दिव्यांग पेंशन के 1,91,920 लाभार्थियों

का उल्लेख किया गया। 1 सितंबर 2026 को कुल लाभार्थी संख्या 46,33,633 दर्ज की गई।

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि कल्याणकारी योजनाएँ राज्य की बड़ी आबादी को प्रभावित करती हैं। इतने बड़े स्तर पर योजनाओं का संचालन राजनीतिक व्यवहार पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। लाभार्थी सरकार की कार्यप्रणाली को अपने प्रत्यक्ष अनुभव से समझते हैं। यदि लाभ समय पर मिलता है, तो सरकार के प्रति विश्वास बढ़ सकता है। यदि लाभ में देरी, भ्रष्टाचार या तकनीकी बाधाएँ हों, तो असंतोष उत्पन्न हो सकता है।

2025-26 के हरियाणा बजट में महिलाओं, किसानों, युवाओं, अनुसूचित जातियों और दिव्यांगजनों के लिए विभिन्न प्रावधान किए गए। महिलाओं के लिए दीनदयाल लाडो लक्ष्मी योजना में पात्र महिलाओं को 2,100 रुपये मासिक सहायता का प्रावधान किया गया और भुगतान प्रत्यक्ष लाभ अंतरण के माध्यम से करने की व्यवस्था की गई। सितंबर 2026 में आय सीमा 1 लाख से बढ़ाकर 1.80 लाख रुपये कर दी गई, जिससे लगभग 27 लाख अतिरिक्त महिलाएँ लाभार्थी बनेंगी।

3. अध्ययन की आवश्यकता और उद्देश्य :

कल्याणकारी योजनाओं पर होने वाली सामान्य चर्चा प्रायः बजट, लाभार्थियों की संख्या और सरकारी घोषणाओं तक सीमित रहती है। परंतु वास्तविक शोध के लिए यह देखना आवश्यक है कि योजनाओं का लाभ किस वर्ग को मिल रहा है, लाभ प्राप्त करने की प्रक्रिया कितनी सरल है और योजनाएँ नागरिकों की राजनीतिक सोच को किस प्रकार बदल रही हैं।

अध्ययन के उद्देश्य :

- 2014 से 2026 तक हरियाणा में लागू प्रमुख कल्याणकारी योजनाओं का अध्ययन करना।
- कल्याणकारी योजनाओं और राजनीतिक व्यवहार के बीच संबंध का विश्लेषण करना।
- महिला, किसान, युवा, वृद्ध, दिव्यांग और वंचित समूहों पर योजनाओं के प्रभाव का अध्ययन करना।
- डिजिटल शासन और प्रत्यक्ष लाभ अंतरण की भूमिका का मूल्यांकन करना।
- कल्याणकारी योजनाओं की प्रशासनिक चुनौतियों की पहचान करना।
- चुनावी राजनीति में कल्याणकारी योजनाओं की भूमिका का अध्ययन करना।

4. शोध प्रश्न और परिकल्पनाएँ :

शोध प्रश्न :

- क्या कल्याणकारी योजनाएँ हरियाणा में मतदान व्यवहार को प्रभावित करती हैं?
- क्या सरकारी योजना का प्रत्यक्ष लाभ सरकार के प्रति राजनीतिक विश्वास बढ़ाता है?
- किन सामाजिक समूहों पर कल्याणकारी योजनाओं का प्रभाव अधिक दिखाई देता है?
- क्या योजना की जानकारी और लाभ प्राप्त करने की सरलता राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करती है?
- क्या डिजिटल वितरण प्रणाली लाभार्थियों की सरकार के प्रति धारणा बदलती है?

परिकल्पनाएँ :

जिन नागरिकों को कल्याणकारी योजनाओं का नियमित और पारदर्शी लाभ मिलता है, उनमें सरकार के प्रति राजनीतिक विश्वास अधिक होता है।

- योजना की जानकारी और लाभ प्राप्त करने की सरलता राजनीतिक सहभागिता को बढ़ाती है।
- योजना की घोषणा की अपेक्षा उसका वास्तविक क्रियान्वयन मतदाता व्यवहार पर अधिक प्रभाव डालता है।
- महिला-केंद्रित योजनाएँ महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता और मतदान सहभागिता को बढ़ा सकती हैं।

5. शोध पद्धति :

यह अध्ययन वर्णनात्मक—विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। अध्ययन के लिए सरकारी विभागों के पोर्टल, बजट दस्तावेज, योजना संबंधी अधिसूचनाएँ, निर्वाचन आयोग के आँकड़े, चुनावी घोषणापत्र और उपलब्ध शोध साहित्य का अध्ययन किया गया है।

हरियाणा के सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग के डैशबोर्ड पर उपलब्ध योजना-संबंधी आँकड़ों का उपयोग सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की पहुँच समझने के लिए किया गया। हरियाणा राज्य प्रत्यक्ष लाभ अंतरण पोर्टल पर उपलब्ध योजना सूची का उपयोग योजनाओं के प्रकार और विभागीय विस्तार के अध्ययन के लिए किया गया। 2025–26 के बजट दस्तावेजों से महिला, किसान, युवा, अनुसूचित जाति और दिव्यांग कल्याण से संबंधित प्रावधानों का विश्लेषण किया गया।

राजनीतिक व्यवहार को मतदान, सरकार के प्रति विश्वास, चुनावी मुद्दों, राजनीतिक सहभागिता, दलगत समर्थन और लाभार्थी अनुभव के आधार पर समझा गया। निर्वाचन आयोग की वेबसाइट पर हरियाणा विधानसभा चुनाव 2014, 2019 और 2024 से संबंधित सांख्यिकीय रिपोर्ट उपलब्ध हैं।

6. हरियाणा की प्रमुख कल्याणकारी योजनाएँ :

6.1 सामाजिक सुरक्षा पेंशन :

वृद्धावस्था सम्मान भत्ता, विधवा पेंशन और दिव्यांग पेंशन सामाजिक सुरक्षा की प्रमुख योजनाएँ हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य ऐसे नागरिकों को नियमित आर्थिक सहायता देना है जिनके पास आय के पर्याप्त साधन नहीं हैं। पेंशन की नियमित राशि वृद्ध व्यक्तियों, विधवाओं और दिव्यांगजनों के लिए घरेलू खर्च, दवा और दैनिक आवश्यकताओं में सहायक होती है।

हरियाणा के सामाजिक न्याय विभाग के अनुसार जनवरी 2024 में वृद्धावस्था सम्मान भत्ता के 18,94,442 लाभार्थी थे। इसी अवधि में विधवा पेंशन के 8,42,675 और दिव्यांग पेंशन के 1,91,920 लाभार्थी दर्ज किए गए। 1 सितंबर 2026 को कुल लाभार्थी संख्या 46,33,633 दर्ज की गई। यह आँकड़ा बताता है कि सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ राज्य के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में व्यापक प्रभाव रखती हैं।

6.2 महिला-केंद्रित योजनाएँ :

दीनदयाल लाडो लक्ष्मी योजना में पात्र महिलाओं को 2,100 रुपये मासिक सहायता देने का प्रावधान किया गया। सितंबर 2026 में आय सीमा 1 लाख से बढ़ाकर 1.80 लाख रुपये कर दी गई, जिससे लगभग 27 लाख अतिरिक्त महिलाएँ लाभार्थी बनेंगी। 2025–26 के बजट में इस योजना के लिए 5,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया।

महिला-केंद्रित योजनाएँ राजनीतिक व्यवहार को दो स्तरों पर प्रभावित कर सकती हैं। पहला, इनसे

महिलाओं की व्यक्तिगत आर्थिक भूमिका मजबूत हो सकती है। दूसरा, महिलाएँ सरकार की योजनाओं और राजनीतिक दलों की नीतियों का अधिक सक्रिय मूल्यांकन कर सकती हैं।

6.3 किसान कल्याण :

हरियाणा में कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। किसान सहायता में फसल क्षति मुआवजा, फसल विविधीकरण, कृषि बीमा, सिंचाई सहायता, बाजार सुविधा और ऋण से संबंधित कार्यक्रम शामिल हैं। 2025-26 के बजट में कृषि और किसान कल्याण विभाग के लिए बजट बढ़ाने तथा फसल विविधीकरण और पराली प्रबंधन से संबंधित प्रोत्साहन का उल्लेख किया गया।

किसान योजनाओं का राजनीतिक प्रभाव भुगतान की गति और मुआवजे की पर्याप्तता पर निर्भर करता है। किसान केवल योजना की घोषणा नहीं देखते, बल्कि यह देखते हैं कि फसल खराब होने पर सहायता कितनी जल्दी मिली, फसल का मूल्य क्या रहा और स्थानीय प्रशासन ने उनकी शिकायत का समाधान किया या नहीं।

6.4 युवा और रोजगार :

हरियाणा में युवाओं के लिए रोजगार, कौशल विकास, प्रतियोगी परीक्षाओं में पारदर्शिता, खेल और शिक्षा प्रमुख मुद्दे हैं। छात्रवृत्ति, कौशल प्रशिक्षण, रोजगार मेले और सरकारी भर्ती से संबंधित योजनाएँ युवाओं की राजनीतिक अपेक्षाओं को प्रभावित करती हैं।

युवा मतदाता कल्याणकारी योजनाओं के साथ-साथ स्थायी रोजगार, निष्पक्ष परीक्षा, मेरिट और निजी क्षेत्र के अवसरों का भी मूल्यांकन करते हैं। यदि योजना केवल अल्पकालिक सहायता देती है और स्थायी रोजगार नहीं बनाती, तो युवाओं में असंतोष बना रह सकता है।

7. कल्याणकारी योजनाएँ और राजनीतिक विश्वास :

राजनीतिक विश्वास लोकतंत्र का महत्वपूर्ण आधार है। नागरिक तभी सरकार पर विश्वास करते हैं जब उन्हें लगता है कि शासन उनकी आवश्यकताओं का उत्तर दे रहा है। कल्याणकारी योजनाएँ राजनीतिक विश्वास को बढ़ाने का माध्यम बन सकती हैं, लेकिन यह प्रभाव योजना के वास्तविक अनुभव पर निर्भर करता है।

यदि नागरिक को बिना रिश्वत, सिफारिश या अनावश्यक देरी के लाभ मिलता है, तो वह प्रशासन को अधिक विश्वसनीय मान सकता है। इसके विपरीत, यदि आवेदन के लिए बार-बार कार्यालय जाना पड़े, दस्तावेजों में त्रुटि हो या भुगतान समय पर न मिले, तो योजना का सकारात्मक प्रभाव कम हो सकता है।

राजनीतिक विश्वास केवल लाभ प्राप्त करने से नहीं बनता। नागरिक सरकार के अन्य कार्यों का भी मूल्यांकन करते हैं, जैसे सड़क, बिजली, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और कानून-व्यवस्था। इसलिए कल्याणकारी योजनाएँ राजनीतिक विश्वास का एक महत्वपूर्ण, लेकिन अकेला आधार नहीं हैं।

8. राजनीतिक दलों की चुनावी रणनीति :

कल्याणकारी योजनाएँ राजनीतिक दलों की चुनावी रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई हैं। दल अपने घोषणापत्र में महिलाओं, किसानों, युवाओं, गरीबों और कर्मचारियों के लिए विभिन्न वादे करते हैं। 2024 के हरियाणा चुनावी विमर्श में महिलाओं को मासिक सहायता, सरकारी रोजगार, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा और किसान सहायता जैसे वादे प्रमुख रहे।

घोषणापत्र में योजना की घोषणा मतदाताओं को आकर्षित कर सकती है, लेकिन मतदाता अक्सर पूर्व

योजनाओं के अनुभव के आधार पर नई घोषणा का मूल्यांकन करते हैं। यदि पहले की योजनाएँ सफल रही हों, तो नई घोषणा पर विश्वास बढ़ सकता है। यदि पहले की घोषणाएँ पूरी न हुई हों, तो मतदाता संदेह कर सकते हैं।

कल्याणकारी राजनीति में तीन स्तर होते हैं : योजना की घोषणा, योजना का प्रशासनिक क्रियान्वयन, और लाभार्थी का वास्तविक अनुभव। इन तीनों स्तरों में तालमेल होने पर योजना का राजनीतिक प्रभाव मजबूत होता है।

9. डिजिटल शासन की भूमिका :

डिजिटल शासन ने कल्याणकारी योजनाओं की पहचान, आवेदन और भुगतान प्रणाली में परिवर्तन किया है। परिवार पहचान पत्र, ऑनलाइन पोर्टल और प्रत्यक्ष लाभ अंतरण से सरकार लाभार्थियों की पहचान और भुगतान की निगरानी कर सकती है। इससे बिचौलियों की भूमिका घटाने और पारदर्शिता बढ़ाने की संभावना रहती है।

परंतु डिजिटल शासन के साथ कई चुनौतियाँ भी जुड़ी हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की कमी, तकनीकी जानकारी का अभाव, बैंक खाते से संबंधित समस्याएँ, आधार प्रमाणीकरण, दस्तावेजों में त्रुटियाँ और पोर्टल की कठिन प्रक्रिया के कारण पात्र व्यक्ति लाभ से वंचित हो सकता है।

इसलिए डिजिटल व्यवस्था के साथ मानवीय सहायता भी आवश्यक है। ग्राम स्तर पर सहायता केंद्र, शिकायत निवारण, दस्तावेज सुधार और ऑफलाइन विकल्प उपलब्ध होने चाहिए। डिजिटल शासन का उद्देश्य नागरिक को सुविधा देना होना चाहिए, न कि उसे तकनीकी प्रक्रिया में उलझाना।

10. सामाजिक न्याय और कल्याणकारी योजनाएँ :

कल्याणकारी योजनाओं का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य सामाजिक न्याय स्थापित करना है। अनुसूचित जाति, पिछड़े वर्ग, महिलाएँ, दिव्यांगजन, वृद्ध व्यक्ति और आर्थिक रूप से कमजोर परिवार ऐतिहासिक रूप से विभिन्न प्रकार की असमानताओं का सामना करते रहे हैं। योजनाएँ इन समूहों को शिक्षा, आर्थिक सहायता, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा प्रदान कर सकती हैं।

हरियाणा के सामाजिक न्याय विभाग में अनुसूचित जाति और पिछड़े वर्गों के लिए विवाह सहायता, आवास नवीनीकरण, अंतरजातीय विवाह प्रोत्साहन, अत्याचार निवारण, कानूनी सहायता और छात्रवृत्ति जैसी योजनाएँ भी संचालित हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य सामाजिक असमानता कम करना और वंचित वर्गों को संस्थागत सहायता देना है।

लेकिन सामाजिक न्याय तभी प्रभावी होगा जब योजनाओं का लाभ वास्तव में सबसे जरूरतमंद व्यक्तियों तक पहुँचे। कई बार जानकारी के अभाव, दस्तावेज की समस्या, स्थानीय भेदभाव या प्रशासनिक प्रक्रिया के कारण पात्र लोग लाभ से बाहर रह जाते हैं।

11. ग्रामीण और शहरी अंतर :

ग्रामीण क्षेत्रों में कल्याणकारी योजनाएँ जीवन-निर्वाह, कृषि, पेंशन, रोजगार और आवास से जुड़ी होती हैं। ग्रामीण लाभार्थी योजना के साथ स्थानीय पंचायत, पटवारी, बैंकिंग सुविधा और सामाजिक नेटवर्क पर निर्भर रहते हैं। स्थानीय नेतृत्व योजना की जानकारी और लाभ पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

शहरी क्षेत्रों में योजनाएँ आवास, स्वास्थ्य, रोजगार, श्रमिक सहायता और शिक्षा से जुड़ी होती हैं। शहरों में प्रवासी श्रमिकों, किराएदारों और असंगठित क्षेत्र के कामगारों के लिए पहचान और निवास प्रमाण से संबंधित समस्याएँ हो सकती हैं।

ग्रामीण-शहरी अंतर राजनीतिक व्यवहार में भी दिखाई देता है। ग्रामीण मतदाता कृषि, पेंशन और स्थानीय विकास को प्राथमिकता दे सकता है, जबकि शहरी मतदाता रोजगार, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य और महंगाई को अधिक महत्व दे सकता है। इसलिए एक ही योजना का राजनीतिक प्रभाव ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अलग हो सकता है।

12. कल्याणकारी योजनाओं की प्रमुख चुनौतियाँ :

कल्याणकारी योजनाओं के सामने कई प्रशासनिक और सामाजिक चुनौतियाँ हैं :

- पात्र लाभार्थियों की सही पहचान का अभाव।
- आवेदन प्रक्रिया में जटिलता।
- डिजिटल व्यवस्था के कारण तकनीकी बाधाएँ।
- भुगतान में देरी।
- दस्तावेजों और बैंक खातों में त्रुटियाँ।
- योजना की जानकारी का अभाव।
- ग्रामीण क्षेत्रों में सहायता केंद्रों की कमी।
- शिकायत निवारण प्रक्रिया का कमजोर होना।
- लाभार्थियों में राजनीतिक या सामाजिक भेदभाव की आशंका।
- घोषणा और वास्तविक बजट के बीच अंतर।

इन चुनौतियों का समाधान किए बिना कल्याणकारी योजनाओं का राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव सीमित रह सकता है।

13. योजनाओं का राजनीतिक व्यवहार पर समग्र प्रभाव :

कल्याणकारी योजनाएँ राजनीतिक व्यवहार को तीन प्रमुख तरीकों से प्रभावित करती हैं। पहला, प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त करने वाला नागरिक सरकार के कार्यों का मूल्यांकन अपने अनुभव के आधार पर करता है। दूसरा, योजनाएँ राजनीतिक दलों के बीच प्रतिस्पर्धा का माध्यम बनती हैं। तीसरा, योजनाओं के माध्यम से सरकार अपनी विकास और सामाजिक न्याय की छवि प्रस्तुत करती है।

फिर भी लाभ प्राप्त करना और राजनीतिक समर्थन देना एक ही बात नहीं है। किसी लाभार्थी को योजना से सहायता मिल सकती है, लेकिन वह बेरोजगारी, महंगाई, कृषि संकट, प्रशासनिक भ्रष्टाचार या स्थानीय उम्मीदवार के कारण अलग राजनीतिक निर्णय ले सकता है। इसी प्रकार योजना की घोषणा लोकप्रिय हो सकती है, परंतु यदि आवेदन, पात्रता या भुगतान में कठिनाई हो, तो उसका सकारात्मक प्रभाव कम हो सकता है।

हरियाणा की राजनीति में जातीय पहचान, ग्रामीण-शहरी अंतर, किसान मुद्दे, युवाओं की रोजगार अपेक्षाएँ और महिला मतदाताओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण हैं। इसलिए कल्याणकारी योजनाओं का राजनीतिक प्रभाव बहुआयामी है और इसे केवल चुनावी परिणाम से नहीं मापा जा सकता।

14. प्रमुख निष्कर्ष :

- हरियाणा में कल्याणकारी योजनाएँ सामाजिक सुरक्षा और राजनीतिक संवाद दोनों का आधार बनी हैं।
- वृद्धावस्था, विधवा और दिव्यांग पेंशन जैसी योजनाएँ कमजोर वर्गों को नियमित आर्थिक सहायता प्रदान करती हैं।
- सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के लाभार्थियों की संख्या बहुत बड़ी है, इसलिए उनका राजनीतिक प्रभाव राज्य-स्तरीय हो सकता है।
- महिला-केंद्रित योजनाएँ महिलाओं की आर्थिक स्थिति और राजनीतिक धारणा को प्रभावित कर सकती हैं।
- किसान सहायता योजनाएँ ग्रामीण राजनीतिक व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।
- युवाओं के लिए रोजगार और कौशल विकास राजनीतिक अपेक्षाओं के महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं।
- प्रत्यक्ष लाभ अंतरण पारदर्शिता बढ़ा सकता है, लेकिन तकनीकी और डिजिटल बहिष्करण की समस्या भी उत्पन्न कर सकता है।
- योजना का लाभ राजनीतिक समर्थन की गारंटी नहीं है। बेरोजगारी, महंगाई, किसान समस्या, स्थानीय नेतृत्व और उम्मीदवार की विश्वसनीयता भी निर्णायक हैं।
- कल्याणकारी योजनाओं का प्रभाव सामाजिक वर्ग, लिंग, आय और क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग होता है।
- योजना की घोषणा की अपेक्षा उसका वास्तविक क्रियान्वयन अधिक महत्वपूर्ण है।

15. सुझाव :

- योजनाओं की पात्रता और आवेदन प्रक्रिया सरल भाषा में उपलब्ध कराई जाए।
- डिजिटल आवेदन के साथ ग्राम और वार्ड स्तर पर सहायता केंद्र स्थापित किए जाएँ।
- भुगतान में देरी होने पर स्वतः शिकायत दर्ज करने की व्यवस्था हो।
- लाभार्थियों के लिए सरल और समयबद्ध अपील व्यवस्था बनाई जाए।
- योजनाओं के सामाजिक लेखा-परीक्षण की व्यवस्था की जाए।
- महिला योजनाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल और रोजगार से जोड़ा जाए।
- किसान सहायता को फसल मूल्य, बीमा और बाजार सुविधा से जोड़ा जाए।
- युवाओं के लिए केवल आर्थिक सहायता नहीं, बल्कि स्थायी रोजगार और कौशल अवसर उपलब्ध कराए जाएँ।
- जिला स्तर पर योजनाओं के प्रभाव का स्वतंत्र मूल्यांकन किया जाए।
- लाभार्थी चयन में पारदर्शिता और सामाजिक समावेशन सुनिश्चित किया जाए।

16. निष्कर्ष :

यह अध्ययन दर्शाता है कि 2014 से 2026 तक हरियाणा में कल्याणकारी योजनाएँ शासन और राजनीति के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु बनी हैं। सामाजिक सुरक्षा, महिला सहायता, किसान सहायता, शिक्षा, रोजगार और

डिजिटल वितरण ने नागरिकों की सरकार से अपेक्षाओं को बदला है।

कल्याणकारी योजनाओं ने अनेक परिवारों को प्रत्यक्ष सहायता दी है, लेकिन उनका राजनीतिक प्रभाव सभी नागरिकों पर समान नहीं रहा। जिन लाभार्थियों को समय पर, पारदर्शी और सम्मानजनक तरीके से सहायता मिली, उनमें सरकार के प्रति सकारात्मक धारणा विकसित होने की संभावना अधिक रही। इसके विपरीत, भुगतान में देरी, दस्तावेजी समस्या और प्रशासनिक कठिनाइयों ने असंतोष को जन्म दिया।

हरियाणा में राजनीतिक व्यवहार को केवल कल्याणकारी योजनाओं से नहीं समझा जा सकता। बेरोजगारी, महंगाई, किसान समस्याएँ, जातीय समीकरण, स्थानीय नेतृत्व, उम्मीदवार की छवि और विकास कार्य भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। इसलिए कल्याणकारी योजनाएँ राजनीतिक समर्थन का एक साधन हो सकती हैं, लेकिन वे मतदाता निर्णय का एकमात्र आधार नहीं हैं।

कल्याणकारी योजनाओं की वास्तविक सफलता तब मानी जाएगी जब वे पात्र व्यक्ति तक समय पर पहुँचें, आवेदन प्रक्रिया सरल हो, भुगतान पारदर्शी हो, शिकायतों का समाधान हो और योजना से जीवन स्तर में स्थायी सुधार आए। यदि योजनाओं को सामाजिक न्याय, मानव विकास और रोजगार से जोड़ा जाए, तो वे राजनीतिक विश्वास, लोकतांत्रिक सहभागिता और राज्य की वैधता को मजबूत कर सकती हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि हरियाणा में कल्याणकारी योजनाओं ने राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने के साथ-साथ शासन की प्रकृति को भी बदला है। नागरिक अब केवल घोषणाओं से संतुष्ट नहीं होते, बल्कि योजना की पारदर्शिता, लाभ की नियमितता, प्रशासनिक संवेदनशीलता और वास्तविक परिणामों के आधार पर सरकार का मूल्यांकन करते हैं। इसलिए भविष्य की कल्याणकारी नीति को अधिकार-आधारित, पारदर्शी, सहभागी और सामाजिक रूप से समावेशी बनाना आवश्यक है।

संदर्भ :

- हरियाणा राज्य प्रत्यक्ष लाभ अंतरण पोर्टल, योजना सूची।
- हरियाणा सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग, योजना डैशबोर्ड।
- हरियाणा सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग, सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजनाएँ।
- हरियाणा वित्त विभाग, बजट 2025-26।
- हरियाणा सरकार, बजट भाषण 2025-26।
- दीनदयाल लाडो लक्ष्मी योजना, 2025-26 की अधिसूचना।
- भारत निर्वाचन आयोग, हरियाणा विधानसभा चुनाव 2014, 2019 और 2024 की सांख्यिकीय रिपोर्ट।
- सामाजिक कल्याण योजनाओं और राजनीतिक सहभागिता पर प्रकाशित शोध साहित्य।
- भारतीय लोकतंत्र, संघवाद और कल्याणकारी राज्य से संबंधित संवैधानिक एवं अकादमिक साहित्य।
- हरियाणा सरकार के विभागीय नीति दस्तावेज और योजना संबंधी अधिसूचनाएँ।



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 121-129

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

Sustainable Development in Agriculture- A Sociological Study of Practices, Institutions and Rural Livelihoods

Jai Mala Thakur

Assistant Professor in Sociology, Government Degree College, Akhnoor, Jammu and Kashmir.

Abstract :

This study explores sustainable agricultural development through a sociological perspective, examining how rural livelihoods, community practices, institutional support and socio-economic constraints influence sustainability outcomes. Drawing on qualitative and quantitative insights, the research analyses the role of social structures, cultural norms and policy frameworks in shaping farmers adaptive strategies and access to resources. The findings reveal that strengthening farmer-centered institutions, ensuring equitable distribution of inputs and promoting community-based innovations are essential for enhancing resilience and long-term agricultural sustainability. The study underscores that sustainable agriculture is not only a technical process but also a social one shaped by relationships, participation and empowerment.

Keywords :

Sustainable Agriculture, Rural Livelihoods, Sociological Perspective, Community Practices, Institutional Support, Socio-Economic Constraints, Social Structures, Cultural Norms; Policy Frameworks, Agricultural Sustainability.

1. Introduction :

Sustainable agriculture has emerged as a central concern in contemporary development discourse, driven by escalating challenges such as climate change, soil degradation, water scarcity, loss of biodiversity, and fluctuating farm incomes. In many developing societies, agriculture remains the backbone of rural livelihoods, contributing not only to food security but also to socio-economic stability and cultural continuity. However, the increasing vulnerabilities faced by farmers—ranging from erratic rainfall and rising input costs to shifting market dynamics—necessitate a transition toward farming systems that are environmentally sound, economically viable, and socially just.

From a sociological standpoint, agriculture must be understood not merely as an economic

enterprise but as a deeply embedded social institution. Farming practices are shaped by kinship networks, cultural norms, local knowledge systems, gender relations, and community interactions. The adoption of sustainable agricultural practices often depends on the social capital within rural communities, the nature of institutional linkages, and the accessibility of government programmes or extension services. Power structures within villages—such as land ownership patterns, caste/ethnic relations, and gendered divisions of labour—further influence how agricultural innovations are adopted and who benefits from them. Therefore, a sociological analysis of sustainable agriculture becomes essential to understanding how farmers negotiate environmental pressures, mobilize community resources, and adapt traditional knowledge in contemporary contexts.

Given this background, the present study seeks to explore sustainable agricultural development through a sociological lens, emphasizing the interconnectedness of environment, community dynamics and institutional frameworks. It aims to examine how social structures, cultural norms and collective practices shape farmer's adaptive strategies, resilience mechanisms and overall sustainability outcomes.

2. Review of Literature :

Research on sustainable agriculture spans environmental sciences, development studies, and rural sociology. A review of existing literature reveals that sustainability is not a singular concept but a multidimensional paradigm influenced by ecological, economic, and socio-cultural factors.

- **Environmental and Ecological Dimensions :**

Studies highlight that ecologically sustainable practices—such as organic farming, integrated pest management, crop diversification, and soil conservation—help maintain long-term productivity (Pretty, 2008). However, scholars argue that environmental sustainability cannot be achieved without understanding farmers' socio-cultural contexts. Traditional ecological knowledge, embedded in rural belief systems and cultural practices, plays a vital role in shaping local conservation methods.

- **Social Participation and Community-Based Approaches :**

A substantial body of literature stresses the importance of collective action in enhancing agricultural sustainability. Ostrom (1990) and Uphoff (1999) emphasize that community participation helps manage common resources, share knowledge, and build resilience. Farmer cooperatives, self-help groups, and informal networks encourage experimentation and diffusion of sustainable innovations. Social capital—trust, reciprocity, and solidarity—emerges as a key determinant of successful implementation of sustainable techniques.

- **Gender and Household Dynamics :**

Research underscores that gender roles significantly influence agricultural decision-making

and sustainability outcomes. Women are often involved in seed preservation, livestock care, and nutrient recycling, making them central to sustainable practices. However, gender disparities in access to land, credit, and extension services can limit their participation. Scholars such as Agarwal (2014) argue that empowering women enhances overall farming sustainability because they bring diverse knowledge and priorities to resource management.

- **Institutional Support and Policy Frameworks :**

Institutional interventions—including government schemes, agricultural extension services, credit systems, and cooperative institutions—are widely recognized as essential elements shaping farmers' capacities to adopt sustainable practices (Chambers & Conway, 1992). Successful sustainability models require multi-level institutional coordination, bridging formal institutions (government agencies, banks, research institutions) with informal village-level systems (local leadership, customary practices). Literature also highlights the gaps between policies and grassroots realities, especially in regions where institutional access remains uneven.

- **Modernization, Technology and Changing Knowledge Systems :**

The introduction of modern technologies, mechanization, and chemical-intensive farming has significantly altered agricultural landscapes. While modernization has increased productivity, scholars point out that it has also led to ecological imbalances and weakened traditional knowledge systems. Recent research calls for an integration of scientific innovations with indigenous practices, promoting “knowledge hybridity” that supports long-term sustainability.

- **Socio-Economic Constraints and Farmer Vulnerability :**

Multiple studies indicate that socio-economic barriers—such as small landholdings, indebtedness, market fluctuations and limited access to resources—affect farmer's ability to adopt sustainable practices. Vulnerability analyses reveal that marginalized farmers face greater risks and require targeted interventions. Social inequalities related to caste, class and ethnicity often determine who benefits from sustainability initiatives.

Overall, the literature reveals that sustainable agriculture is deeply intertwined with social dynamics. Environmental practices alone cannot ensure sustainability unless supported by community participation, gender-inclusive roles, strong institutional frameworks and equitable resource distribution. There remains a need for research that integrates these dimensions to understand how farmers negotiate changing ecological and economic pressures while drawing upon their cultural and social contexts.

3. Theoretical / Sociological Framework :

This study is guided by three complementary sociological theories that together explain how

farmers make decisions, mobilize resources, and adopt sustainable agricultural practices.

- **Sustainable Livelihoods Framework (SLF) :**

The SLF provides a holistic understanding of how farmers use various forms of capital—human, social, natural, physical, and financial—to sustain their livelihoods. It helps explain how vulnerability (climate stress, market fluctuations) and institutional support influence farmers' choices. In this study, SLF helps assess how access to resources and livelihood strategies shape the adoption of sustainable agriculture.

- **Social Capital Theory :**

Social Capital Theory emphasizes the role of networks, trust, cooperation and community participation. In rural agriculture, social capital enables knowledge sharing, collective decision-making, and the diffusion of sustainable practices. This framework helps analyze how farmers' relationships, peer groups, and community institutions support or hinder sustainable agricultural transitions.

- **Actor–Network Theory (ANT) :**

ANT views both human and non-human elements—farmers, technologies, seeds, tools, policies, and environmental conditions—as interconnected actors shaping agricultural outcomes. In this study, ANT helps explain how interactions between people, institutions, technologies, and ecological factors influence sustainability and farming decisions.

These sociological theories help explain how relationships, networks, institutions, and resources influence agricultural sustainability and farmer decision-making.

4. Objectives of the Study :

1. To examine the sociological dimensions of sustainable agricultural practices.
2. To analyze the role of rural institutions in promoting sustainability.
3. To study the socio-economic conditions of farmers influencing sustainable development.
4. To provide recommendations for strengthening sustainable agriculture through community participation.

5. Research Questions :

1. What social, cultural and institutional factors shape sustainable agricultural practices?
2. How do rural institutions support or hinder sustainable farming?
3. What livelihood challenges influence farmer's adoption of sustainable methods?

6. Methodology :

- **Research Design :**

This study adopts a qualitative research design supported by selective quantitative insights to

explore sustainable agricultural practices from a sociological perspective. The qualitative approach enables an in-depth understanding of farmers' experiences, decision-making processes, and the social, cultural, and institutional factors influencing sustainability. The study is guided by the Sustainable Livelihoods Framework (SLF), Social Capital Theory, and Actor–Network Theory (ANT), which collectively inform the analysis of resources, networks, and actor interactions within agricultural systems.

- **Study Area and Sampling :**

The research was conducted in selected rural agricultural communities where farming forms the primary source of livelihood. A purposive sampling technique was employed to identify farmers representing diverse landholding sizes, socio-economic backgrounds, and levels of engagement in sustainable farming practices. A total of 50 respondents were selected, ensuring representation of both male and female farmers as well as small, marginal and medium landholders.

Data Collection Methods :

- **In-depth Interviews :**

Semi-structured interviews were used to collect detailed narratives on farming strategies, challenges, institutional access, and community participation. This method allowed respondents to articulate their experiences freely while ensuring thematic consistency across interviews.

- **Focus Group Discussions (FGDs) :**

FGDs were organized with small farmer groups to explore collective perceptions, community-level practices, and shared knowledge systems influencing sustainability. These discussions helped identify social norms and informal institutions shaping agricultural decisions.

- **Observations :**

Non-participant observation was conducted to examine farming practices, resource use, cropping patterns, and interactions with technologies and institutions. Field observations supported the validation of interview data.

- **Secondary Sources :**

Relevant secondary materials government policy documents, agricultural reports, research articles and institutional records were reviewed to contextualize primary findings and support triangulation.

7. Data Analysis :

The data collected through interviews, focus group discussions, and observations were analyzed using thematic analysis. This process involved systematic coding, categorization and theme development to identify recurring patterns and meaningful insights. The analysis was structured around

the study's theoretical foundations :

- Sustainable Livelihoods Framework (SLF) guided the identification of themes related to farmers' livelihood resources, vulnerability contexts, and adaptive livelihood strategies.
- Social Capital Theory informed the analysis of community networks, trust relationships, collective practices, and knowledge-sharing mechanisms that influence sustainable agriculture.
- Actor–Network Theory (ANT) shaped the interpretation of interactions among human and non-human actors, including technologies, seeds, tools, institutions, environmental conditions, and market structures.

Manual coding was used to ensure immersion in the data, allowing nuanced interpretation of participant narratives. Codes were collated into categories and then developed into broader themes. Triangulation across multiple sources primary data, observations and secondary documents enhanced the credibility, validity and reliability of the findings.

Ethical Considerations :

Informed consent was obtained from all participants. Their identities were kept confidential and participation was voluntary. Ethical guidelines for qualitative research were strictly followed throughout the study.

8. Findings :

The findings of the study reveal that sustainable agriculture is shaped by a combination of social, cultural, institutional, and environmental factors. Analysis of interview, FGD, and observational data generated the following key themes:

- **Influence of Livelihood Resources on Farming Decisions :**

Farmer's adoption of sustainable practices was strongly dependent on access to livelihood assets. Human capital (skills, awareness, training), natural capital (land quality, water availability), and financial capital (credit, subsidies, income stability) played decisive roles. Farmers with greater access to irrigation, knowledge, and institutional support were more likely to adopt eco-friendly and diversified farming systems.

- **Role of Social Capital and Community Networks :**

Social relations emerged as a major facilitator of sustainability. Farmers relied heavily on peer groups, cooperatives, neighbours, and kin networks for information regarding seeds, pest management, and resource conservation. Communities with higher trust, reciprocity, and collective norms exhibited greater use of shared resources such as water channels, grazing areas, and organic inputs.

- **Interaction with Institutions and Extension Services :**

Institutional engagement significantly influenced adoption rates. Access to government schemes, agricultural extension services, and training programmes enhanced farmer confidence and reduced dependence on chemical-intensive practices. However, several farmers reported gaps in information delivery, limited outreach, and uneven benefits across socio-economic groups.

- **Technology and Non-Human Actors as Drivers of Change :**

Consistent with Actor–Network Theory, non-human elements such as irrigation tools, biofertilizers, mobile advisory apps, hybrid seeds, and climatic variations played an active role in shaping farmer behaviour. Farmers who integrated new technologies with traditional knowledge demonstrated higher resilience to weather fluctuations and market risks.

- **Traditional Knowledge and Modern Practices Coexisting :**

Many farmers continued to rely on indigenous practices such as seed preservation, mixed cropping, natural composting, and water-saving methods. Instead of replacing traditional knowledge, sustainable agriculture often emerged as a hybrid model combining scientific inputs with local wisdom.

- **Socio-Economic Barriers to Sustainability :**

Small and marginal farmers faced challenges including high input costs, lack of credit, land fragmentation, and market volatility. These constraints limited their capacity to experiment with or adopt sustainable methods. Women farmers, despite strong involvement in household-level cultivation, reported limited access to decision-making, training sessions, and financial schemes.

- **Increasing Awareness but Slow Transition :**

While awareness about soil health, organic inputs, water conservation, and ecological risks was increasing, the transition to fully sustainable farming remained gradual. Farmers cited uncertainty about yield, lack of assured markets, and insufficient institutional support as key obstacles.

The findings indicate that sustainable agriculture is not only a technical process but a socially embedded practice shaped by relationships, networks, resources and external actors. The presence of strong social capital, institutional support, and integrated technologies promotes sustainability, while socio-economic inequalities and environmental uncertainties continue to constrain farmer transitions. The findings reveal that sustainable development in agriculture is closely tied to social structures and institutional mechanisms. Farmer's adoption of sustainable practices depends on their access to information, social support, and livelihood security. Gender roles, local customs, and collective decision-making also influence agricultural outcomes. The discussion highlights the need for integrating sustainability with socio-cultural realities.

9. Conclusion :

Sustainable agricultural development cannot be achieved through technical interventions alone; it requires an integrated understanding of the social, cultural, and institutional contexts in which farming takes place. This study demonstrates that farmers' decisions and livelihood strategies are shaped by their access to resources, community relationships, and interactions with institutions and technologies. A sociological perspective thus provides critical insight into the barriers and opportunities influencing agricultural sustainability. The findings highlight that strengthening rural institutions, improving the accessibility of extension services, and ensuring equitable distribution of livelihood assets are vital for enabling farmers to adopt sustainable practices. Equally important is the promotion of social participation, collective action, and knowledge-sharing networks that enhance community resilience and facilitate the diffusion of environmentally sound practices. Empowering farmers through training, inclusive decision-making, and integration of traditional and scientific knowledge can significantly contribute to long-term sustainability. Overall, sustainable agriculture emerges as a socially embedded process that depends on the synergy between human actors, community structures, and institutional support systems. Enhancing this synergy is essential for fostering resilient rural livelihoods and achieving sustainable rural development.

References :

- Agarwal, B. (2014). Gender and Green Governance: The Political Economy of Women's Presence Within and Beyond Community Forestry. Oxford University Press.
- Chambers, R., & Conway, G. (1992). Sustainable Rural Livelihoods: Practical Concepts for the 21st Century. Institute of Development Studies (IDS), Discussion Paper 296.
- Coleman, J. S. (1990). Foundations of Social Theory. Harvard University Press.
- DFID. (1999). Sustainable Livelihoods Guidance Sheets. UK Department for International Development.
- Latour, B. (2005). Reassembling the Social: An Introduction to Actor–Network–Theory. Oxford University Press.
- Ostrom, E. (1990). Governing the Commons: The Evolution of Institutions for Collective Action. Cambridge University Press.
- Pretty, J. (2008). Agricultural sustainability: Concepts, principles and evidence. Philosophical Transactions of the Royal Society B, 363(1491), 447–465.
- Putnam, R. D. (2000). Bowling Alone: The Collapse and Revival of American Community. Simon & Schuster.

- Scoones, I. (1998). Sustainable Rural Livelihoods: A Framework for Analysis. IDS Working Paper 72.
- Uphoff, N. (1999). Understanding social capital: Learning from the analysis and experience of participation. In P. Dasgupta & I. Serageldin (Eds.), Social Capital: A Multifaceted Perspective (pp. 215–249). World Bank.
- World Bank. (2008). World Development Report 2008: Agriculture for Development. World Bank Publications.



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 130-139

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

The specific role of local merchants (dubashes) and brokers in French colonised India

Dr. Ravi Shankar Kumar

Assistant Prof. in French

Arignar Anna Govt. Arts & Science College, Karaikal.

Introduction :

Indian territory witnessed not only British colonization but also French, Dutch, and Portuguese colonies. All these colonial powers first arrived in India for trade and commerce. Jean-Baptiste Colbert organized the French East India Company in 1664. He sent François Caron and François Martin to India to establish the first French trading posts here.

The French presence in India started in the 17th century, centred on the port town of Pondicherry and Chandernagore, has increasingly turned its attention away from European actors and toward the Indian intermediaries — known as *dubashes* — who made the colonial commercial enterprise possible. This body of work spans historical, art-historical, and archival approaches, and converges on a shared recognition: the French East India Company could not have functioned without a class of local brokers who bridged linguistic, cultural, commercial, and administrative divides between Europeans and Tamil society. This review synthesizes the existing literature on the dubash institution, organized around terminology, function, kinship, and the contested question of power, before identifying gaps that remain open for further research.

Pondicherry, Karaikal, Chandernagore, Mahé, and Yanam were French colonies in India. Trade and commerce in French colonized India were conducted through coastal settlements such as Pondicherry, Karaikal, Chandernagore, Mahé, and Yanam. The French traded extensively in local cotton textiles, silk, spices, and saltpetre, relying on indigenous merchant brokers and weaving communities. This dependence naturally raises important questions about why the French chose these groups as their primary partners in commerce, rather than turning to local rulers or other influential figures. While the French reliance on indigenous merchant and weaving communities underscores the historical

importance of intermediaries in trade, the modern era reveals how technological advances such as Google Translate have transformed the role of translators in global commerce.

Research objective and Research question :

With the advent of Google Translate, the demand for human translators declined in the trade and commerce market. The rise of artificial intelligence has left many professional translators without work. Looking back three centuries to trace the need for translators and their importance in trade and commerce proves to be a very interesting study. Just as artificial intelligence has reshaped the modern role of translators in global commerce, the historical case of French trade in India invites us to ask why the French relied so heavily on indigenous merchant and weaving communities instead of local rulers or elites.

What was the reason the French had to rely on indigenous merchant and weaving communities? Why did they choose only these communities instead of seeking support from local Rajas or other influential people? Was it merely due to language problems, or were there other factors involved? In all five territories, did the French depend on the same communities, or on different ones? In the following discussion, we will attempt to explore the answers to the above questions.

Research Gap :

One major limitation of the existing scholarship is its overreliance on a small set of prominent, diary keeping individuals. The empirical foundation of the field rests heavily on figures such as Ananda Ranga Pillai, whose diary survives, and a handful of other named chief dubashes. Far less is known about banians and prominent brokers in Chandernagore and other enclaves of French India. As a result, the importance of linguistic skills—particularly the mastery of an additional foreign language by dubashes and brokers—is not adequately demonstrated in the literature. Current studies risk generalizing from an atypical, elite subset of the broker class, thereby obscuring the broader spectrum of mercantile intermediaries who shaped colonial trade and administration.

Methodology :

This study adopts a **historical analytical research design**, combining archival exploration with interpretive analysis. The focus is on reconstructing the socioeconomic and political roles of dubashes and banians in French India, particularly in Pondicherry, Chandernagore, and other enclaves.

Before exploring the answers to the above questions, it is important to identify the major trading hubs in the French colonies. We will examine these hubs in chronological order.

Major trading hubs in the French colonies :

- **Surat** : The French founded their very first factory in Surat in 1668, establishing it on the western coast of India before operations shifted largely to the south and east. Surat was developed as

a trading hub under the leadership of François Caron. It is said that the French received permission in the form of a royal *farman* from Aurangzeb on 4 September 1666 to trade through Surat. This decree granted the French legal commercial recognition from the Mughal Empire.

- **Masulipatnam / Machilipatnam** : In 1669, the French established their second factory at Masulipatnam on the eastern coast, following the Surat settlement. Together with Calicut and Kasimbazar, it functioned as a subsidiary trading post along key commercial routes.
- **Chandernagore** : Chandernagore was established in Bengal in 1673 as a trading hub by the French East India Company. It became the primary northern settlement of the French in Bengal. The Company used it for commerce in silk, opium, fine muslin, and other regional goods.
- **Pondicherry** : Pondicherry was the main administrative capital and headquarters of the French on the Coromandel Coast. It was acquired in 1674 and developed by François Martin. Pondicherry served as the centre of French power in India. From here, high-quality cotton piece goods and local weaving trades were carried out, making Pondicherry an active hub in the textile trade.
- **Yanam** : Yanam was established in 1723 as a trading post. The French East India Company had to relinquish the area in 1727 due to unsuccessful commercial operations. In 1731, Governor General Dupleix regained control of the territory for trading purposes. At Yanam, the Company focused its trade mainly on salt, textiles, and rice.
- **Mahé** : Mahé was established in 1725 on the Malabar Coast. From this settlement, the French East India Company conducted trade in pepper and other spices. It also developed into an important centre within regional exchange networks.
- **Karaikal** : Karaikal was acquired in 1739 by the French East India Company on the Coromandel Coast. It served as a strategic southern agricultural and trading possession. The settlement was secured primarily for the regional trade in grain and cloth.

The French remained for a long time in Chandernagore, Pondicherry, Yanam, Mahé, and Karaikal, in contrast to their brief presence in Surat and Masulipatnam. Later, Chandernagore, Pondicherry, Yanam, Mahé, and Karaikal were developed into French colonies. The French East India Company expanded its trade and power in India through Pondicherry and other key hubs. The French chose Pondicherry for their major operations because of its strategic coastal position and commercial potential. Consequently, Pondicherry became the headquarters of French India. Textiles, spices, provisions, and industrial inputs were major trading commodities. Fine cotton goods, chintz, and coloured fabrics were exported from the Coromandel Coast. Pepper and cardamom were traded through Mahé. Local rice and food grains were exchanged through regional coastal hubs such as Yanam and Karaikal. Karaikal also functioned as a weaving hinterland.

Local merchants and brokers in French colonized India : The local merchants and brokers were known as dubashes. A dubash, literally “one who speaks two languages,” became the backbone of the economy in Frenchcolonized India. Since the French were unable to understand local languages such as Tamil, Telugu, Malayalam, and Bengali, they faced difficulties in conducting business. To overcome this, they relied on local merchants who assisted them in trade. These mediators or interpreters came to be known as dubashes. Their role did not stop at facilitating trade and commerce; over time, they contributed to administration and gradually evolved into a distinct social group with rising status, leaving behind a legacy worthy of historical study. In the following section, we will discuss the specific assignments offered to the dubashes and the roles they performed.

Deeds and Duties of the Dubashes: The dubashes were more than translators or interpreters; they performed several important roles. They were assigned to procure goods from weavers, farmers, and artisans, often traveling into interior villages to do so. They placed orders for cotton, silk, spices, and grains that the French sought to export to European countries. This type of duty encouraged the dubashes to make money. They often offered *dadan* (advance payments) to poor farmers, weavers, and artisans so that raw materials or goods could be procured on time. While the Persian administrative term *dadan* dominated official paperwork in French Chandernagore and British Bengal, the word *munpanam* was commonly used at the ground level in French Pondicherry and Madras. In addition, they negotiated prices between the French East India Company and local producers. Clever dubashes often manipulated these prices to secure huge profits for themselves. They began assisting the French in managing laws and resolving disputes among local rulers. They also played a role in maintaining social order among the native population. Beyond mediation between farmers, weavers, artisans, and the French, the dubashes began undertaking several responsibilities. From procuring goods, advancing money, and setting prices, they eventually extended their role into diplomacy and administration. Economic opportunity overrode rigid birth-based occupations, allowing new groups to gain wealth and social status.

Social shift of the dubashes : It is also interesting that the dubashes triggered a major social shift. Before examining their role, it is important to explore the traditional trading castes that handled commerce in Pondicherry, Yanam, Mahé, and Karaikal during the period of French colonial rule in India. We will discuss the traditional trading castes enclavewise during the French regime. The Vellalars (traditionally an agricultural caste), along with the Pillais and Mudaliars, were prominent trading castes in Pondicherry and Karaikal. Families belonging to these castes attained elite positions in commerce and administration after the arrival of the Europeans. Kavara and Cammala communities specialized in the trade of precious stones, jewellery, and luxury items in the Pondicherry and Karaikal

regions. The Senecodes and Nattamars, on the other hand, acted as smallscale domestic merchants, controlling the local trade of foodstuffs, grain, and daily provisions for the growing colony in Pondicherry and Karaikal. In Yanam, the Komati caste dominated the local economy. As a traditional trading community, they managed the procurement of textiles and rice, acting as the primary brokers between local weavers and French agents. In Mahé, local Mappila Muslim merchants played a foundational role in maritime trade along the Malabar Coast. They managed much of the logistics involved in moving spices from the inland hills down to the French ports. Traditional weaving castes, such as the Chaliyars, supplied textiles and other regional commodities that the French exported.

In Chandernagore, during the French regime, commerce was primarily dominated by the Banik (merchant/tanti) and associated mercantile castes, who formed the backbone of local trade. Prominent indigenous trading families and broker networks—such as the Seths, Basaks, Gandhabaniks, and Subarnabaniks—belonged to traditional Bengali trading castes engaged in spices, textiles, bullion, and local banking. The Tantis, as weaver communities, played a pivotal role in the region’s renowned handloom and cotton textile production, which fuelled European maritime exports. Meanwhile, Banians and Dubashes, including elites from families like the Seths and local Chowdhurys, managed the kothis (warehouses), translated, and financed trade operations for French administrators such as Joseph François Dupleix.

Thus, we observe that originally only traditional trading caste handled commerce. However, working with the French triggered a major social shift. In colonial enclaves like Puducherry, collaboration with the French broke traditional caste boundaries. People from nontrading backgrounds—such as farming and weaving castes—emerged as brokers, merchants, and moneylenders. The history of French colonized India shows that several notable figures emerged who broke away from their traditional caste occupations and secured an unforgettable place in history. In the following section, we will discuss some of these prominent individuals.

Notable figures in the Frenchcolonized India :

- **Thanappa Mudaliar** : Thanappa Mudaliar was an early native partner who moved to Pondicherry in 1674. He was instrumental in convincing entire communities of weavers to migrate into the French settlement, laying the foundation for Pondicherry’s thriving textile trade. He secured the economic stability of the town. Serving as a dubash (translator and commercial agent) of the French East India Company in Pondicherry, he helped establish the settlement, managed local trade, organized weaving communities, and oversaw the building of early infrastructure during the foundational era of French colonization in India. He played a pivotal role in the establishment of Pondicherry as the French headquarters. Notably, he advised French officials to travel by sea to Pondicherry, which led to the

arrival of 150 migrants on January 15, 1674.

Thanappa Mudaliar served as the Chief Intermediary in Pondicherry. He was appointed the first chief agent (*chef des Malabars* or *courtier*), acting as the principal bridge between French authorities such as François Martin and local merchants. He also performed duties as a trade consultant, fixing commodity prices and managing regional trade in rice, textiles, saltpetre, and spices.

He converted to Christianity in 1671, taking the name Lazaro de Motta, and built St. Peter's Church in Pondicherry, which he later donated to the Capuchin missionaries in 1686. He succeeded in building a strong community for the French regime and left behind the enduring legacy of the *dubash* for future generations.

Thanappa Mudaliar established an influential local dynasty whose descendants, including Kanakaraya Mudaliar and later Diagou Mudaliar, continued to play prominent roles in Indo French civic and commercial life for decades. His direct descendants shaped governance, trade, and the social framework of French India for generations, securing immense wealth and diplomatic power. The two most prominent successors in the colonial administration were his son and grandson. We will now turn to his son, André Muthappa Mudaliar.

- **André Muthappa Mudaliar :** André Muthappa Mudaliar is remembered for continuing the trading foundations laid by his father in the late 1600s. After Thanappa Mudaliar's death, André was appointed Chief Dubash and Broker by the French East India Company in 1699. He maintained the family business by managing regional trade contracts and stabilizing the local economy. Like his father, André was fluent in both European and local languages, using his position to arbitrate disputes between merchant guilds and French administrators.
- **Pedro Kanakaraya Mudaliar :** Pedro Kanakaraya Mudaliar, Thanappa's grandson (born 1696), became the most famous and influential figure in the family lineage. After a few other intermediaries, André's son, Kanakaraya Mudaliar—who adopted the Christian name Pedro—rose to the position of Chief Broker. He went on to become the longest-serving dubash for the French, holding the office from 1716 to 1743. In fact, he served as Chief Dubash for nearly 24 years, from 1722 until his death in 1746. Pedro Kanakaraya Mudaliar became immensely wealthy and was the first Tamil merchant to own a Western style merchant ship, the *Soucouarna*, during French rule. He worked closely with French governors Pierre Benoît Dumas and Joseph François Dupleix, acting not only as a translator but also as a senior political advisor and court mediator.

One of his most celebrated acts was the Grand Feast of 1745, held to commemorate the construction of St. Andrew's Church in Reddiarpalayam. At this legendary civic event, he invited people of all castes, religions, and European officials to dine together—a moment deeply recorded

in colonial archives as a symbol of social inclusivity. When Kanakaraya Mudaliar passed away without surviving children in 1746, the direct Mudaliar line holding the Chief Dubash chair ended, and the administration transferred the post to his rival, Ananda Ranga Pillai.

- **Ananda Ranga Pillai** : Ananda Ranga Pillai is regarded as the most famous dubash in Indian history. He served as chief interpreter and courtier to the ambitious French Governor Joseph François Dupleix. Pillai maintained a massive and detailed private diary, which today is considered the most important historical record of 18th Century South Indian politics, trade, and daily life under French rule. During the French regime in India, the Pillai family—most notably Ananda Ranga Pillai—played a central role as Chief Dubash (interpreter, commercial agent, and chief advisor) to the French East India Company and the French Governors in Pondicherry. Ananda Ranga Pillai was fluent in Tamil, French, Persian, and Telugu. Ananda Ranga Pillai did not rely solely on simple buying and selling. He combined political influence, colonial administrative responsibilities, and diversified business investments. Pillai became the primary bridge between the French crown and local Indian rulers, merchants, and workers. He successfully established trading posts in places such as Lalapettai and Arcot, facilitating the exchange of Indian goods for European manufactures. His role was so critical and powerful that it evolved into a family legacy: Pillai's uncle, father, son, and grandson all served the French regime in similar administrative capacities across different generations.

At present, Ananda Ranga Pillai remains widely discussed because of **his personal diary** and **historic residence**. He is deeply celebrated in Indian history for maintaining meticulously detailed diaries from 1736 to 1761. These daily records, often reflecting his professional rivalries and administrative clashes with Mudaliar, survive as one of the most important sources on French India. The massive project was later published in 12 volumes as *The Private Diary of Ananda Ranga Pillai*. Around 1846, a French official, M. Gallois Montbrun, rediscovered the forgotten manuscript in a Pondicherry warehouse. Recognizing its value, he and another French scholar, Édouard Ariel, made copies of the Tamil diaries, which soon attracted European researchers. Unfortunately, before the British could complete translations of the remaining text, a severe cyclone struck Pondicherry in 1916 and destroyed the original diaries. Fortunately, the French copies survived, preserving this invaluable record.

Ananda Ranga Pillai's residence is one of the oldest and most historically significant heritage structures in Puducherry. Constructed around 1735, the mansion is renowned for its striking Indo French architectural style, blending traditional Tamil design elements with European Gothic influences. The ground floor follows traditional Tamil architecture, centred on a spacious open courtyard supported by intricately carved wooden pillars. In contrast, the first floor and terrace adopt European Gothic

design, featuring elegant French-style columns. This unique fusion makes the house a landmark of colonial heritage in Puducherry.

In French Bengal, native brokers and interpreters were legally referred to as **courtiers** (brokers) or **banians** (commercial agents), rather than **dubashes**—a term primarily used in French Pondicherry and British Madras. These powerful intermediaries controlled local banking, purchased commodities such as silk and textiles, and handled translation work for the French East India Company. The most prominent banians, courtiers, and brokers who operated in Chandernagore during the French regime included several influential indigenous families and trading networks. In the following section, we will discuss some of the courtiers and banians of Chandernagore during the French regime.

- **Shobharam Basak** (1690–1773), widely known as Sovaram Bysack, was one of 18th century Bengal's most successful merchant princes. Born into a wealthy family of textile traders in Kasimbazar, he combined strategic European trade partnerships with cultural philanthropy, leaving a lasting mark on early colonial Bengal. Sovaram Basak, often spelled Sovaram Bysack, was an iconic millionaire textile trader and philanthropist of the 18th century. During the early French commercial expansion in Chandannagar (Chandernagore) and Serampore in the 1710s, he assisted French merchants in evaluating fine textiles and spices, determining fair market rates, and eventually became their trusted trade advisor.
- **Indranarayan Choudhury** : Indranarayan Choudhury was the premier courtier and the most famous banian of Chandernagore during the 1730s and 1740s. He worked closely with Governor Joseph François Dupleix to rebuild the city's maritime trade. Choudhury amassed immense wealth, constructed the renowned Nandulal Temple, and was awarded a prestigious gold medal by the French Crown in recognition of his loyalty and service.
- **Darpanarayan Tagore** : (1731–1793) served as a dewan (chief native officer and commercial agent) to the French East India Company in Chandernagore. Through his administrative work and trade under the French regime, he amassed considerable wealth before eventually moving to Calcutta, where he founded the senior Pathuriaghata branch of the Tagore family.

Known as the “Silk Middleman,” he accumulated his initial fortune by acting as a crucial intermediary and banian for the French East India Company at Chandernagore. Later, he used the wealth he had built under the French regime to purchase vast estates, eventually becoming a founding pillar of the famous Jorasanko Tagore family of Calcutta.

There were many more individuals who served as courtiers, middlemen, or merchant agents during the French regime. The persons mentioned above represent only some of the most notable figures.

Conclusion :

This study teaches us that knowing an additional foreign language, especially one associated with power, enabled individuals to become affluent and influential. These figures not only secured wealth but also inscribed their names in the pages of history. They were more than rich merchants; they assumed powerful responsibilities and were honoured with royal posts, leaving behind enduring legacies. The evidence shows that a translator could rise to prestigious and powerful positions, sharing authority in colonized India. By mastering both regional and foreign languages, the French relied heavily on dubashes and banians. Local Rajas, constrained by their own limitations and restrictions, could not serve the French in the same way. Dubashes and banians, however, seized opportunities, with some rising above their caste levels and reaching social strata close to that of the local Rajas. The French deliberately chose individuals already engaged in trade and commerce, finding them suitable partners in administration. In turn, these merchants, eager to avail themselves of opportunity, learned the French language and secured their place in colonial history.

References

- Agmon, D. (2011). *An Uneasy Alliance: Traders, Missionaries, and Tamil Intermediaries in Eighteenth-Century French India*.
- Agmon, D. (2014). The Currency of Kinship: Trading Families and Trading on Family in Colonial French India. *Eighteenth-Century Studies*.
- Babu, S. (2013). Puducherry Based Trade as Gleaned from the Pages of Ananda Ranga Pillai's Diary. *Board of Editors*.
- Davini, R. (2009). Bengali raw silk, the East India Company and the European global market, 1770–1833. *Journal of Global History*, 4(1), 57–79. Cambridge University Press.
- Marquet, J. (2014). Le rôle des intermédiaires dans l'implantation coloniale française. *Encyclo. Revue de l'école doctorale Sciences des Sociétés*.
- Marquet, J. (2015). La médiation des dubashes. Un aspect de la politique française en Inde dans la seconde moitié du XVIII^e siècle. *La Révolution française*.
- More, J. B. P. (2020). *Pondicherry, Tamil Nadu and South India Under French Rule: From François Martin to Dupleix 1674–1754*.
- Oliver, L. (2025). *Art, Trade, and Imperialism in Early Modern French India*.
- Parashar, G. (2012). State-Building in a Transcultural Context: The Case of the French in India during the Early Eighteenth Century. In *Structures on the Move: Technologies of Governance....* Springer.

- Pillai, A. R. (2020). *Private diary of Ananda Ranga Pillai: (A.D. 1736–1761) (Vols. 1–12)*. New Delhi: Gyan Publishing House.
- Ray, I. (1980). The Multiple Faces of the Early 18th Century Indian Merchants.
- Srinivasachari, C. S. (2025). *Ananda Ranga Pillai: The ‘Pepys’ of French India*.
- Varkey, J. (2017). French Mahe and its hinterland as gleaned from eighteenth century maps and plans. In *On Present(in/g) Histories: Selected Papers from Second Kerala History Congress*, Kottayam: D.C. Books.

ravishanjanu@gmail.com



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 140-146

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

Promoting Skills of the Females of Jharkhand on Social Media

Sangeeta Sharma

Research Scholar,

University Department of Home Science, Ranchi University, Ranchi.

The females of Jharkhand has enormous skills and innovative ideas. But their skills are limited to their homes only. Their skills need to be explored and promoted so as to make them self employed. Now-a-days people spend a lot of time on social media. Hence social media can be the best platform to promote the skills of these females.

Jharkhand is primarily rural with maximum of its population living in villages. Agriculture is the most important aspect for the livelihood of the rural population. Rice is the most widely grown crop. Other thick crops are also grown here Millets has been used as variables in this study. In this article I am going to explore the innovations made by some of the females residing near Hundru falls in Ranchi district. They have explored brilliant ideas of using these thick crops. But unfortunately they are known to limited people only. They have very less buyers. Through social media like facebook Instagram, Whatsapp etc. their skills can be promoted. This will lead them to self-employment.

Key words – Innovation, promotion, self-employment.

Introduction :

Social media is a technology facilitated media that simplifies the sharing of ideas, thoughts and information to others. At the present day social media is a very important learning and sharing resource for all. It transfers information to others in a very short period of time.¹

With the help of these social media, the skills of females of Hundru falls were easily made viral. The most important thing in our daily life is staying healthy, building positive relationships and finding purpose in what to do. People became aware of healthy benefits of thick crops and their easy and tasty recipes. The thick crops are a source of essential vitamins, minerals, fibers and fatty acids. They provide necessary nutrients for human and animal health maintenance.

Review of Literature :

Muftah (2021) in her study on “Impact of Social Media on Learning English Language during the COVID-19 Pandemic” explored the impact of the various social media platform on learning English Language during this pandemic. The findings of the study revealed that social media has been significantly positive impact on learning English language (learning styles, reading skills, communication skills, grammar usage and listening) of the undergraduate students.²

Kolhar, Kazi & Alameen (2021) have conducted a study on “Effects of Social Media on Use of Learning, Social Interactions and Sleep Duration among University Students” examined the use of social media and their effects of learning, social interaction and sleep duration. The results of the study shows that majority of the students says that they use of social media for non academic purpose and social media adversely impact on their academic performance, social interaction and sleep duration.³

Chukwuere & Chukwuere (2017) have conducted a study on “The Impacts of Social Media on social Lifestyle : A Case Study of University Female Styles” to find out the impact of social media on female students life style. The findings of the study revealed that social media actually impact on female students social life styles. This study also indicates that social media promotes good and healthy societal norms and values which prove a positive sign in our society.⁴

GOK (2016) has conducted a study on “The Effects of Social Networking Sites on Students Studying and Habits” to identify the positive as well as negative effects of social networking sites on students’ studying and habits. The result of the study revealed that digital technology and social networking sites have negative impact on students’ studying and habits.⁵

Objective –

- To know the impact of Social media in promoting skills of females of Jharkhand.
- To know whether the rural females are using Social Media or Not.

Methodology of the Study :

- **Method of the Study :** The present study is descriptive type in nature. The researcher have used the descriptive type survey method in the present study.
- **Population of the Study :** Female villagers nearby Hundru falls, Ranchi, Jharkhand and social media users have been selected as population for the present study.
- **Sample of the Study :** 20 females from the village near Hudru falls, Ranchi district and 100 respondents from social media users were selected for the present study.
- **Sampling Technique :** The Simple Random Sampling technique was applied for the selection of sample in this study.

- **Tools of the Study :** Social media related Questionnaire and scheduled interview was used as a tool for collecting the data in the present study.
- **Technique of the Study :** The percentage and graphical representation of the data was used as a technique for the study.
- **Data Collection Procedure :** As per previous planning, the tools were administrated upon the people who were using Social Media for learning and social life style. It was also used for the female villagers. Interview was schedule for them on a particular day. A set of questions were asked from them in this interview. For social media respondents , questionnaire was sent through various social media platforms like WhatsApp, Facebook, G-mail and google forms.

Analysis & Discussion :

1. Response of Female Villagers (N-20)

Use of Social media platform	Number of respondents	Percentage
Yes	2	10%
No	18	90%

Table- 1

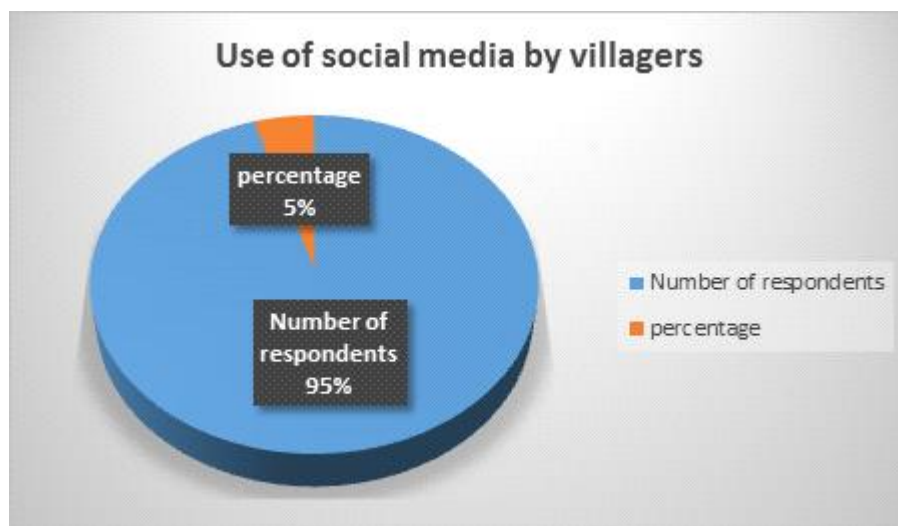


Figure -1

From the above (table-1,figure-1), it was observed that out of total of 20 female villagers,95% of them did not use social media and while just 5% used social media. Therefore, it can be said that most of the respondents did not use social media.

Reason for not using social media by female villagers (N-20)

Reason for not using social media by female villagers	Number of respondents	percentage
Lack of internet connection	18	90%
Lack of internet knowledge	18	90%
Lack of knowledge of promotion	20	100%
No knowledge about social media	18	90%

Table -2

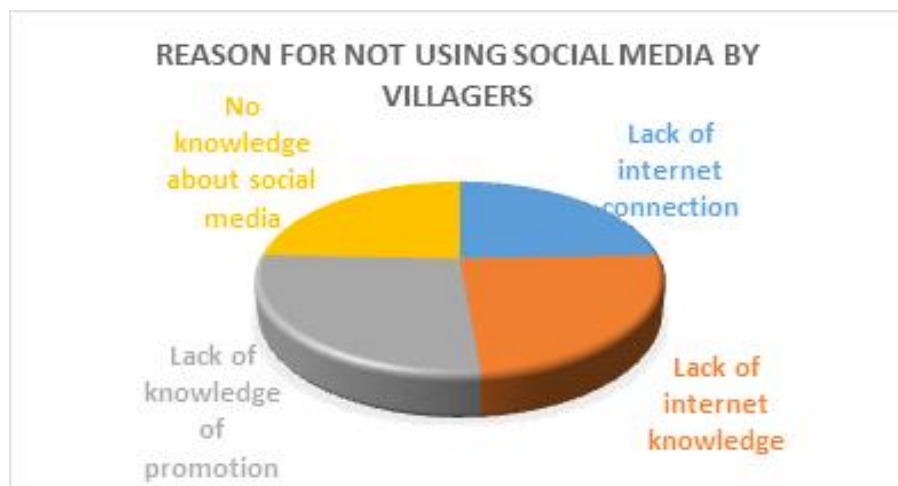


Figure-2

From the above (Table-2, figure-2) it was observed that 90 % of the respondents said that they were unaware of Social Media, 90 % said that there was no internet connection in their village, 90% of the respondents said that there had no knowledge about internet, 90% of the respondents said that they had no knowledge about social media and all the 20 respondents said that they had no knowledge of promoting their skills.

2. Response of Social Media users (N-100)

Use of Social media platforms

Use of Social media platform	Number of respondents	percentage
Yes	98	98%
No	2	2%

Table- 3

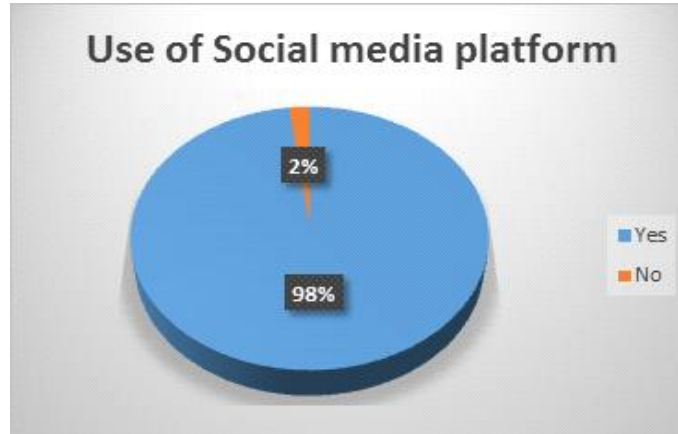


Figure -3

From the above (table-3,figure-3), it was observed that out of 100 social media users, 98% of the respondents use social media and rest 2% do not use social media. Therefore, it can be said that most of the respondents use social media.

Purpose of using social media(N-100)

Purpose of using social media	Number of respondents	percentage
To make friends	90	90%
Just for time pass	50	50%
Knowledge gain	90	90%
Advertisement	82	82%
To find employment	22	22%
Promoting skills	92	92%

Table - 4

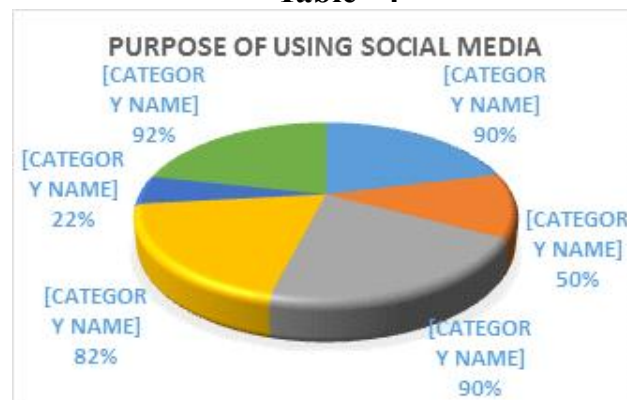


Figure -4

From the above (Table-4, figure-4) it was observed that 90 % of the respondents said that they use Social Media was for making friends, 50 % said that they use Social Media just for time pass, 90% for knowledge gain, 82% for advertisement, 22% for finding employment, 92 % for promoting skills. Therefore, it can be said that most of the respondents used social media for promoting skills, advertisement and knowledge gain.



Variable 1- Ragi Idli



Variable 2-Millets Cookies

The above pictures were taken at Hundru falls by some of social media influencers. Some of the female villagers were seen selling these two products –Idli made of Ragi and Cookies made of Millets. It was super tasty and most healthy. But their buyers were very few. These social media influencers got so much impressed by these two products and made them viral on social media. Thus many people got information about it and started placing order. This automatically lead to self employment of the female villagers.

Suggestions –

It is suggested that the skills of the villagers must be explored and they must be given training to use social media so that they can themselves advertise their products.

Conclusion :

Lastly it was concluded that social media is a greatly influenced in promoting the skills of the female villagers. So, there is critical need of different government, interventions, planners and policy makers to promote skills of villagers on social media.,so that they can get different useful information and values of their skills and products.

References :

1. Paramani , N. and Sinha, S.(2023) Influence of Social Media on Learning and Social Lifestyle among the B.Ed students in Jharkhand, International journal of creative research thoughts,11(7) ISSN: 2320-2882 .
2. Muftah, M. (2021). Impacted of Social Media on Learning English Language during the COVID-

19 Pandemic, PSU Research Review Emerald Publishing Limited, 2399-1747.

3. Kohlar, M., Kazi, R.N.A., & Alameen, A. (2020). Effect of Social Media Use on Learning, Social Interactions and Sleep Duration among University Students, Saudi Journal of Biological Science, doi: <https://doi.org/10.1016/j.sjbs.2021.01.010>
4. Chukwuere, J., & Chukwuere, P. C. (2017). The Impact of Social Media on Social Lifestyle: A Case Study on University Female Students, Gender and Behaviour, 9928-9940
5. Gok, T. (2016). The Effects of Social Networking Sites on Students' Studying and Habits, International Journal of Research in Education and Science, 2 (1), 85-92.



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 147-152

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

ONLINE EDUCATION – CHALLENGES AND OPPORTUNITIES

Dr. Madhvi

Assistant Professor,

Rashtriya Eollege of Education, Sonipat Road, Rohtak.

Abstract :-

The evolution of online education in India is marked by significant opportunities and challenges, especially when compared with traditional face-to-face learning. As technology advances, understanding this shift is crucial for improving educational outcomes. Online learning offers increased accessibility and flexibility, allowing learners to engage with content from anywhere, at their own convenience. It caters to diverse learning styles through self-paced structures and interactive multimedia, creating a more personalized educational experience. However, this shift also brings new challenges for schools, instructors, and students, requiring new instructional skills, learning approaches, administrative processes, and educational facilities.

In India specifically, several factors are boosting the growth of online education—internet penetration, low cost, ease of access, government initiatives, employer recognition, and bridging of educational gaps. At the same time, challenges such as insufficient digital infrastructure, credibility concerns, and language barriers continue to hinder its growth. Using a qualitative approach based on secondary data (books, journals, research articles, and government publications), this paper examines these opportunities and challenges, while also exploring the future potential of online education in India's growing internet-user base.

Keywords :- Mobile learning, E-learning applications, Face to face education; Challenges and opportunities; Digital infrastructure.

Introduction :

The transformation of education through technology has been profound, particularly over the last decade. This evolution is marked by the increasing acceptance and integration of online learning, especially in management and engineering disciplines. Government of India in Association with Ministry of HRD has initiated a programme named SWAYAM (Study Webs of Active –Learning for Young Aspiring Minds) that is designed to achieve the three fundamental objectives of Education Policy i.e., access, equity and quality. The main objectives of this effort are to take the quality teaching learning resources to all, including those who cannot afford. This program **SWAYAM** seeks to provide education to those students who are not yet aware of the digital revolution taking place and are still not able to join the mainstream of the knowledge economy. Nearly 2000 online courses are offered through Swayam and approximately 150 million students across the globe are enrolled in different courses.

Review of Literature :

Khan (1997) has defined online learning as the delivery of instruction to a remote audience using the web as an intermediary. Elaine Allen, Jeff Seaman (2011) have defined Online courses as those in which minimum 80 percent of the course content is delivered online and Face-to-face instruction are those courses in which less than 30 percent of the content is delivered online.

Stack, Steven Dr. (2015), online education has proliferated in the last decade. His research has not found any major difference in the scores of the students taking online course and face to face classes.

Dr. Fahad N. Al-FAHAD investigates the students' attitudes and perceptions of 186 University Student's from different colleges towards effectiveness of mobile learning in their studies. Their research findings indicate that students perceive Mobile technologies as an effective tool in improving their communication and learning.

Herman, T., & Banister, S. had done research on comparison of cost and learning outcomes of traditional and Online coursework. Their findings shows that online course engages students in the learning process, supports strong student learning outcomes, and saves cost for the university also.

Google and KPMG, the online education market in India at the end of December, 2016 was \$247 million and it will reach \$1.96 billion by 2021. Also India's online education market is the second largest market after US. The findings of the report also states that the paid user base for

online education services will also grow at least by six times i.e. approximately 9.6 million users by 2021.

Recent report by google the online education market in India is expected to reach US\$ 7.57 billion in revenue by 2025. This projected to grow at a rate of 25.77% annually from 2025 to 2029.

Emerging Trends of Online Education In India In 2025 :

- **Accessibility :-** Online Education is expected to continue to break down barriers to learning, such as geographical constraints and physical disabilities.
- **Personalization :-** Artificial Intelligence (AI) is expected to refine personalized learning by creating tailored learning paths based on a student's strengths, weakness, and interest.
- **Inclusivity :-** Online education is expected to continue to grow in terms of accessibility and inclusivity.

Converging Online Education with Regular and ODL Learning :

The convergence of online education with traditional and Open and Distance Learning (ODL) represents a significant shift in the educational landscape. This integration aims to leverage the strengths of both modalities to enhance learning experiences and outcomes for students.

Definition of convergence :- Convergence refers to the breaking down of barriers between conventional education and distance learning, leading to a more integrated approach. This phenomenon has been driven by advancements in technology, changing learner demographics, and the increasing demand for flexible learning options.

Advancement in Online Education :-

The advancement of online education is rapidly reshaping the educational landscape, driven by technological innovations and evolving learner needs. As we move into 2025, several key trends are emerging that highlight the transformative potential of online learning.

- **Technological advancements :** The rise of digital tools and platforms has made it easier to blend online resources with traditional teaching methods.
- **Lifelong Learning Needs :** The demand for continuous education throughout one's career has prompted institutions to adopt more flexible learning models.
- **Diverse Student Populations :** The influx of adult learners and part-time students necessitates adaptable learning environments that can cater to varied schedules and commitments.

Advantages and disadvantages of online learning :-

Online learning has become increasingly popular, offering various benefits and challenges. Below

a structure overview of its advantages and disadvantages.

Advantages	Disadvantages
❖ An efficient way of delivering an online course. ❖ Resources are available anywhere at any time. ❖ Promotes active and independent learning. ❖ Easily accessible to anyone irrespective of their educational background or job. ❖ Online discussion platforms allow learners to interact and clear their doubts. ❖ Lessons can be saved and revisiting them is easy. ❖ It is an economical approach to learning. ❖ A greener approach to education.	❖ Online lessons are often objective. ❖ Lack of practical knowledge. ❖ Security concerns are common in online learning programs. ❖ There is a problem with the authenticity of the projects done by the student. ❖ Online assessments are only knowledge-based and lack the practical aspects. ❖ Requires time-management skills and strong self-motivation. ❖ No focus on the development of communication skills. ❖ Limited feedback is acquired.

Challenges in Integration :

Despite the numerous benefits, several challenges exist in merging online education with traditional methods :

- **Implementation issues** :- There is often a lack of standardized guidelines for integrating online learning into existing curricula. Institutions must navigate issues related to assessing student performance across different modalities and ensuring compatibility with existing technologies.
- **Engagement and Interaction** :- While online education offers flexibility, it can sometimes lead to reduced student engagement compared to traditional classrooms. The absence of face-to-face interactions may result in feelings of isolation among learners, making it essential for educators to find creative ways to foster community and collaboration.
- **Quality Assurance and Accreditation** :- As online courses proliferate quality control becomes increasingly important. Institutions must establish robust accreditation processes to maintain educational standards across both online and tradition Offerings.

Future directions :

The future of education is likely to involve a harmonious blend of online and traditional methods. As educational institutions continue to adapt to technological advancements, they will need to focus on :

- **Developing hybrid models :-** Institutions may adopt hybrid approaches that allow students to engage in both online and face-to-face learning experiences.
- **Investing in technology :-** To facilitate seamless integration, schools will need to invest in appropriate technologies that support both instructional methods.
- **Continuous Professional Development :-** Educators must be equipped with the skills necessary to effectively teach in blended environments, emphasizing the importance of ongoing training.
- **New Courses :-** Today the most popular courses in online education are related to IT which includes subjects like big data, cloud computing, and digital marketing. But in future demand for different types of courses in unexpected subjects such as culinary management, photography, personality development, forensic science, cyber law, etc. will increase.

So the convergence of online education with traditional and ODL systems present an opportunity to enhance learning outcomes through increased accessibility, flexibility, and personalized experiences. By addressing the challenges associated with this integration, educational institutions can create a more inclusive and effective learning environment that meets the diverse need of today's learners.

Conclusion :-

Online education can change the whole future scenario in education if it can be implemented in joint collaboration with industry, universities and government. Drastic changes in course curriculum are required to bridge the gap so that students are industry ready after passing out. Education process needs to be changed by making it more practical with the use of technology. Also course should be designed in different language to increase their reach and more opportunities for youth of rural India. Innovations are required to design ways to increase the social skills of online learners.

References :-

- Khan, B. (1997). Web-based training. Englewood Cliffs, NJ: Educational Technology Publications.
- Greenhow, Christine, Charles R. Graham, and Matthew J. Koehler. "Foundations of online learning : Challenges and opportunities." Educational Psychologist (2022): 1-17.
- Kaplan, Andreas M.; Haenlein, Michael (2016). "Higher education and the digital revolution: About MOOCs, SPOCs, social media, and the Cookie Monster". Business Horizons. 59 (4): 441–50. doi:10.1016/j.bushor.2016.03.008
<https://swayam.gov.in/about>
- Müller, Claude, and Thoralf Mildenerger. "Facilitating flexible learning by replacing classroom

time with an online learning environment: A systematic review of blended learning in higher education.” Educational Research Review 34 (2021): 100394.

- Online education – India | statista market forecast.

www.google.com



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 153-157

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL

भगवतीचरण वर्मा : साहित्य नहीं, सोच की क्रांति

डॉ. अफीफा फातिमा शेक

सहायक प्राध्यापक, भाषा विभाग—हिंदी

एम.ओ.पी वैष्णव कॉलेज फॉर विमेन (स्वायत्त), चेन्नई, तमिलनाडु, भारत।

शोध सार :

हिंदी साहित्य की गौरवशाली परंपरा में भगवतीचरण वर्मा का नाम केवल एक रचनाकार के रूप में नहीं, बल्कि एक सशक्त विचारधारा के रूप में प्रतिष्ठित है। 30 अगस्त 1903 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के शफीपुर में जन्मे वर्मा जी ने अपने जीवनानुभवों, संघर्षों और संवेदनाओं को ही अपनी रचनात्मक शक्ति का आधार बनाया। उन्होंने साहित्य को केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रहने दिया, बल्कि उसे मानवीय चेतना को झकझोरने और दृष्टिकोण को बदलने का प्रभावशाली साधन बना दिया। उनकी रचनाओं में मानव जीवन की जटिलताओं, नैतिक द्वंद्वों और सामाजिक यथार्थ का गहरा, निर्भीक और चिंतनशील चित्रण मिलता है। वे उन प्रश्नों को उठाने का साहस रखते हैं, जिनसे समाज प्रायः बचता है— पाप और पुण्य की वास्तविकता क्या है, सत्य और असत्य का निर्धारण कैसे होता है, और क्या मनुष्य वास्तव में अपने कर्मों का स्वामी है? भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध विचार इस प्रकार हैं— **‘मनुष्य अपने कर्मों का नहीं, अपनी परिस्थितियों का दास होता है।’**¹ यह केवल एक कथन नहीं, बल्कि स्थापित मान्यताओं को चुनौती देने वाला एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण है।

बीज शब्द :

क्रांतिकारी दृष्टिकोण, दार्शनिक दृष्टिकोण, बदलती नैतिकता, जीवन—दर्शन, पारिवारिक विघटन, संघर्ष, सामाजिक असमानता, आंतरिक परिवर्तन।

मूल आलेख :

भगवतीचरण वर्मा का साहित्य पाठक को केवल कहानी नहीं सुनाता, बल्कि उसे आत्ममंथन, चिंतन और दृष्टि—परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है। वे केवल उपन्यासकार या कथाकार नहीं, बल्कि एक गहरे दार्शनिक चिंतक थे, जिनकी रचनाएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी उनके समय में थीं। उनका साहित्य वास्तव में **‘साहित्य नहीं, सोच की क्रांति’**² है— एक ऐसी क्रांति जो मनुष्य के भीतर घटित होती है और उसे एक नई दृष्टि प्रदान करती है। यही उनकी कालजयीता और साहित्यिक महत्ता का मूल आधार है।

वर्मा जी का लेखन उस दौर में सामने आया जब भारतीय समाज परंपरा और आधुनिकता के बीच झूल रहा था। नैतिकता के पुराने मानदंड टूट रहे थे और नए मूल्य अभी पूरी तरह स्थापित नहीं हुए थे। ऐसे समय

में उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से यह प्रश्न उठाया कि आखिर सत्य क्या है, पाप क्या है, और मनुष्य का आचरण किन आधारों पर निर्धारित होता है। उन्होंने किसी एक उत्तर को अंतिम सत्य नहीं माना, बल्कि पाठक को सोचने के लिए प्रेरित किया। यही उनकी सबसे बड़ी ताकत है।

उनकी प्रसिद्ध कृति 'चित्रलेखा' इस विचारधारा का सर्वोत्तम उदाहरण है। यह उपन्यास केवल एक प्रेमकथा नहीं, बल्कि एक गहन दार्शनिक विमर्श है। चित्रलेखा में भगवतीचरण वर्मा यह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य अपने कर्मों का नहीं, बल्कि अपनी परिस्थितियों का दास होता है। उपन्यास में कुमारगिरि और बीजगुप्त के जीवन इस विचार के सबसे सटीक उदाहरण हैं। कुमारगिरि एक महान योगी और तपस्वी थे, जिन्हें अपनी इंद्रियों पर विजय का अहंकार था, लेकिन जैसे ही उनके जीवन में चित्रलेखा का प्रवेश हुआ, उनकी छिपी हुई वासनाएँ और अहंकार जाग उठे और उनकी तपस्या प्रेम व आकर्षण के सामने कमजोर पड़ गई। उनका पतन यह दिखाता है कि एक संयमी व्यक्ति भी परिस्थितियों और अपनी आंतरिक प्रवृत्तियों के प्रभाव में आकर गलत मार्ग पर जा सकता है। दूसरी ओर, बीजगुप्त एक भोग-विलासी सामंत थे, जिन्हें लोग केवल सांसारिक सुखों में डूबा हुआ मानते थे, परंतु जब उनके सामने प्रेम और कर्तव्य की कठिन परिस्थितियाँ आईं, तो उन्होंने अपने सारे सुख और संपत्ति का त्याग कर दिया और दूसरों की खुशी के लिए स्वयं कष्ट सहा। इस प्रकार बीजगुप्त का चरित्र यह सिद्ध करता है कि एक भोगी व्यक्ति भी परिस्थितियों के प्रभाव से महान त्याग कर सकता है। इन दोनों पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार यह स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य का चरित्र स्थिर नहीं होता, बल्कि परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ ही उसे बदलती रहती हैं, इसलिए मनुष्य वास्तव में अपनी परिस्थितियों का ही दास होता है। इस उपन्यास में यह प्रश्न उठाया गया है कि पाप और पुण्य का वास्तविक अर्थ क्या है। वर्मा जी इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **'मनुष्य अपने कर्मों का नहीं, अपनी परिस्थितियों का दास होता है।'**³

यह कथन केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि जीवन का कठोर यथार्थ है। इसके माध्यम से लेखक यह स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य के कर्मों का मूल्यांकन करते समय उसकी परिस्थितियों को समझना अत्यंत आवश्यक है। समाज अक्सर व्यक्ति के कार्यों को देखकर निर्णय ले लेता है, लेकिन उसके पीछे की परिस्थितियों को अनदेखा कर देता है। वर्मा जी इसी प्रवृत्ति पर प्रहार करते हैं। इसी उपन्यास में एक और विचार अत्यंत महत्वपूर्ण है— **'पाप और पुण्य केवल मनुष्य की दृष्टि के भ्रम हैं।'**⁴ यह कथन पारंपरिक नैतिकता को चुनौती देता है। यह हमें सोचने पर मजबूर करता है कि क्या वास्तव में कोई कार्य स्वयं में पाप या पुण्य होता है, या फिर यह केवल समाज द्वारा निर्धारित एक दृष्टिकोण है।

वर्मा जी का साहित्य केवल दार्शनिक नहीं है, बल्कि उसमें जीवन की वास्तविकताओं का सजीव चित्रण भी है। उनका उपन्यास 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' जीवन की जटिलताओं और संघर्षों का गहन चित्रण करता है। इस उपन्यास में सन् 1920 के बाद के वर्षों में भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय राजनीतिक विचारधाराओं और शक्तियों का बेहद सटीक और संश्लिष्ट चित्रांकन किया गया है। एक सामन्ती परिवार के भीतर प्रवेश करने वाले तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रभावों को और उनके फलस्वरूप पैदा होने वाली स्थितियों को उनकी पूरी जटिलता में एक विशाल कैनवास पर उतारने में वे सफल रहे हैं। उपन्यास में पंडित उमानाथ तिवारी और उनके तीन पुत्रों की कथा के माध्यम से पूरे देश की उथल-पुथल का खाका खींच दिया गया है। इसमें वे कहते हैं कि **'जीवन की राहें कभी सीधी नहीं होतीं, वे हमेशा टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं।'**⁵ यह वाक्य जीवन का

सार प्रस्तुत करता है। मनुष्य अक्सर एक सरल और सीधी राह की अपेक्षा करता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि जीवन में उतार-चढ़ाव, संघर्ष और अनिश्चितताएँ अनिवार्य हैं। वर्मा जी हमें इन कठिनाइयों से भागने के बजाय उन्हें स्वीकार करने और उनसे सीखने की प्रेरणा देते हैं।

भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' बहुत ही महत्वपूर्ण उपन्यास माना जाता है। भूले-बिसरे चित्र एक कायस्थ परिवार की चार पीढ़ियों की कहानी के माध्यम से 1880 से 1930 तक के भारतीय समाज के परिवर्तन को दर्शाता है। उपन्यास का पात्र मुंशी शिवलाल अपने बेटे ज्वालाप्रसाद को सरकारी अफसर बनाकर मध्यवर्ग के उदय की शुरुआत करता हैं, जिससे संयुक्त परिवार टूटने लगता है। ज्वालाप्रसाद ईमानदारी और भ्रष्ट वातावरण के बीच संघर्ष करता है, जबकि उसका बेटा गंगाप्रसाद उच्च पद पाकर भी भोग-विलास और गलत आदतों के कारण पतन की ओर चला जाता है। अंत में चौथी पीढ़ी का नवल अपने पूर्वजों की गलतियों से सीखकर स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेता है। इस प्रकार उपन्यास में सामंतवाद के पतन, पूँजीवाद के उदय, सामाजिक बदलाव और यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि मनुष्य परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है।

यह उपन्यास अतीत और वर्तमान के संबंध को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती है। इसमें वे लिखते हैं— **‘अतीत कभी समाप्त नहीं होता, वह स्मृतियों में जीवित रहता है।’**⁶ यह विचार मानव जीवन की गहराई को उजागर करता है। मनुष्य चाहे कितना भी आगे बढ़ जाए, उसका अतीत हमेशा उसके साथ रहता है। उसकी स्मृतियाँ, अनुभव और भावनाएँ उसके वर्तमान और भविष्य को प्रभावित करती हैं।

भगवतीचरण वर्मा के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जीवन को किसी एक दृष्टिकोण से नहीं देखते। वे मानते हैं कि सत्य सापेक्ष होता है और परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। उनका यह विचार अत्यंत महत्वपूर्ण है कि सत्य और असत्य का निर्धारण परिस्थितियाँ करती हैं। यह दृष्टिकोण उनके पूरे साहित्य में व्याप्त है। वे किसी भी विषय को एकांगी दृष्टि से नहीं देखते, बल्कि उसके विभिन्न पहलुओं को सामने लाते हैं। यही कारण है कि उनका साहित्य पाठक को सोचने और अपने निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करता है।

उनकी कहानियाँ भी इसी विचारधारा को आगे बढ़ाती हैं। उनकी कहानी कला में संक्षिप्तता के साथ गहराई का अद्भुत समन्वय मिलता है। वे कम शब्दों में बड़ी बात कहने की क्षमता रखते थे। उनकी कहानियाँ समाज के यथार्थ को उजागर करती हैं और मनुष्य के आंतरिक संघर्षों को सामने लाती हैं। वे मानते थे कि साहित्य का कार्य जीवन का यथार्थ चित्रण करना है। इस सिद्धांत के अनुसार उन्होंने अपनी रचनाओं में समाज की वास्तविक समस्याओं 'गरीबी, अन्याय, नैतिक द्वंद्व' को ईमानदारी से प्रस्तुत किया। उनकी कहानियाँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि वे समाज का आईना हैं।

वर्मा जी के पात्र भी अत्यंत जीवंत और यथार्थवादी होते हैं। वे न तो पूरी तरह अच्छे होते हैं और न ही पूरी तरह बुरे। वे मनुष्य की तरह ही जटिल और विरोधाभासी होते हैं। यही उनकी वास्तविकता है। वे यह मानते थे— **‘मनुष्य का सबसे बड़ा संघर्ष उसके अपने मन के भीतर होता है।’**⁷ यह कथन उनके साहित्य की आत्मा को व्यक्त करता है। उनके पात्र बाहरी परिस्थितियों से जितना संघर्ष करते हैं, उससे कहीं अधिक वे अपने भीतर के द्वंद्व से जूझते हैं।

उनकी भाषा और शैली भी उनके साहित्य को विशेष बनाती है। वे कठिन से कठिन विचारों को भी सरल

और सहज भाषा में प्रस्तुत करते हैं। उनकी भाषा में न तो अनावश्यक जटिलता है और न ही कृत्रिमता। वे मानते थे सरलता ही साहित्य की सबसे बड़ी शक्ति है। उनकी शैली में संवादों का विशेष महत्व है। उनके संवाद केवल कहानी को आगे बढ़ाने का माध्यम नहीं होते, बल्कि वे पात्रों के विचारों और भावनाओं को गहराई से व्यक्त करते हैं।

आज के संदर्भ में यदि देखा जाए तो भगवतीचरण वर्मा का साहित्य और भी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है। आज का समाज भी नैतिक द्वंद्व, सामाजिक असमानता और व्यक्तिगत संघर्षों से जूझ रहा है। ऐसे समय में उनका साहित्य हमें यह सिखाता है कि जीवन को समझने के लिए हमें केवल बाहरी घटनाओं पर नहीं, बल्कि भीतर की चेतना पर भी ध्यान देना चाहिए। वे हमें यह याद दिलाते हैं— **‘समाज बदलता है, पर मनुष्य की मूल समस्याएँ नहीं बदलती’**⁸ यह विचार आज भी उतना ही सत्य है जितना उनके समय में था। भगवतीचरण वर्मा का साहित्य हमें सोचने की स्वतंत्रता देता है। वे हमें कोई निश्चित उत्तर नहीं देते, बल्कि प्रश्नों के माध्यम से हमें स्वयं उत्तर खोजने के लिए प्रेरित करते हैं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। उनका साहित्य हमें यह सिखाता है कि जीवन में किसी भी सत्य को अंतिम नहीं मानना चाहिए, बल्कि उसे लगातार परखते रहना चाहिए।

उनका साहित्य वास्तव में एक क्रांति है— लेकिन यह क्रांति बाहरी नहीं, आंतरिक है। यह मनुष्य की सोच, उसकी दृष्टि और उसके मूल्यबोध को बदलने की क्रांति है। अंततः यह कहा जा सकता है कि भगवतीचरण वर्मा का साहित्य केवल पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि समझने और जीवन में उतारने के लिए है। उनकी रचनाएँ हमें यह सिखाती हैं कि जीवन को समझने के लिए हमें गहराई में जाना होगा, सतह पर नहीं रुकना होगा और शायद इसी भावना को एक पंक्ति में व्यक्त किया जा सकता है— ‘साहित्य वही है जो हमें भीतर से बदल दे, और भगवतीचरण वर्मा का साहित्य सच में यही करता’ है।

यही कारण है कि उनका लेखन आज भी जीवित है, प्रासंगिक है और आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करता रहेगा। उनका साहित्य न केवल हिंदी साहित्य की धरोहर है, बल्कि मानव जीवन को समझने का एक अनमोल साधन भी है। इस प्रकार, भगवतीचरण वर्मा को केवल एक लेखक के रूप में नहीं, बल्कि एक विचारक, एक मार्गदर्शक और एक चेतना के रूप में देखना चाहिए— क्योंकि उनका साहित्य सच में ‘साहित्य नहीं, सोच की क्रांति’ है।

निष्कर्ष :

भगवतीचरण वर्मा का साहित्य केवल मनोरंजन या कहानी कहने तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मनुष्य की सोच, उसकी नैतिकता और जीवन-दृष्टि को गहराई से प्रभावित करता है। उनके उपन्यास और कहानियाँ हमें यह सिखाती हैं कि जीवन को समझने के लिए केवल बाहरी घटनाओं को देखना पर्याप्त नहीं, बल्कि परिस्थितियों, मनोभावों और आंतरिक संघर्षों को भी समझना आवश्यक है। उनकी रचनाओं का मूल संदेश यही है कि सत्य, पाप और पुण्य जैसी अवधारणाएँ स्थिर नहीं होतीं, बल्कि समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती हैं। वे हमें स्वतंत्र चिंतन, आत्ममंथन और संवेदनशील दृष्टि अपनाने की प्रेरणा देते हैं।

इसलिए, भगवतीचरण वर्मा का साहित्य वास्तव में एक ‘सोच की क्रांति’ है— ऐसी क्रांति जो मनुष्य को भीतर से बदलती है, उसे अधिक समझदार, संवेदनशील और जागरूक बनाती है। यही उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि और हिंदी साहित्य को दिया गया अमूल्य योगदान है।

संदर्भ सूची :

1. <https://www.goodreads.com>
2. <http://ir.unishivaji.ac.in>
3. भगवतीचरण वर्मा, चित्रलेखा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1 जून 2019, पृ. सं. 196
4. भगवतीचरण वर्मा, चित्रलेखा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1 जून 2019, पृ. सं. 148
5. भगवतीचरण वर्मा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1 जनवरी 2017, पृ. सं. 2
6. भगवतीचरण वर्मा, भूले-बिसरे चित्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन, 1959, पृ. सं. 496
7. <https://www.apnimaati.com>
8. भगवतीचरण वर्मा, चित्रलेखा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1 जून 2019, पृ. सं. 5



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 158-167

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

The Influence of Customer Trust and Satisfaction on Mobile Banking Adoption

Kiran Dattaram Jadhav, Research Scholar,

Dr. Mukesh Kumar Verma, Research Guide,

Department of Commerce,

SHRI JAGDISHPRASAD JHABARMAL TIBREWALA UNIVERSITY,

VIDYANAGARI, JHUNJHUNU, RAJASTHAN – 333010

Abstract :

This study examines the influence of customer trust and satisfaction on mobile banking adoption. Specifically, it investigates how trust in the security, privacy, and reliability of mobile banking services affects customers' willingness to adopt and continuously use these platforms. Additionally, the study explores the role of customer satisfaction, derived from service quality, ease of use, accessibility, and user experience, in shaping adoption behavior. A quantitative research approach is recommended, using survey data collected from mobile banking users and analyzed through appropriate statistical techniques to determine the relationships among the variables. The findings are expected to demonstrate that both customer trust and satisfaction have a significant positive influence on mobile banking adoption, with trust serving as a foundation for customer confidence and satisfaction enhancing continued usage intentions. The study contributes to the existing literature by providing insights into the factors that encourage mobile banking adoption and offers practical implications for banks seeking to improve digital service quality, strengthen customer relationships, and increase the use of mobile banking services.

Keywords : Customer Trust, Customer Satisfaction, Mobile Banking Adoption, Digital Banking, Service Quality, Technology Acceptance, Financial Technology.

Introduction :

The rapid advancement of digital technology has transformed the global banking industry, with mobile banking emerging as one of the most significant innovations in financial services. Mobile

banking enables customers to perform a wide range of banking transactions, including fund transfers, bill payments, account monitoring, and investment management, using smartphones and other mobile devices. The convenience, accessibility, and efficiency offered by mobile banking have significantly changed how financial institutions interact with their customers. As smartphone penetration and internet connectivity continue to increase worldwide, banks are investing heavily in mobile banking platforms to enhance customer experience and remain competitive. Despite these technological advancements, the successful adoption of mobile banking depends not only on the availability of technology but also on customers' perceptions, attitudes, and experiences.

Among the various factors influencing mobile banking adoption, customer trust and customer satisfaction have been identified as two of the most critical determinants. Trust plays a vital role because mobile banking involves sensitive financial information and online transactions that expose users to potential risks such as cybercrime, data breaches, and privacy concerns. Customers are more likely to adopt and continuously use mobile banking services when they believe that the platform is secure, reliable, and capable of protecting their personal and financial information. Trust also reduces the uncertainty associated with digital financial services, encouraging users to shift from traditional banking methods to digital channels.

Customer satisfaction is another essential factor that influences the adoption and continued use of mobile banking services. Satisfaction reflects customers' overall evaluation of their experiences with mobile banking applications, including ease of use, service quality, transaction speed, system reliability, and customer support. When customers experience convenient, efficient, and user-friendly mobile banking services, they are more likely to develop positive attitudes toward the technology, leading to repeated usage and long-term adoption. Conversely, poor user experiences, technical failures, or inadequate customer support may discourage customers from using mobile banking, regardless of the technological benefits it offers.

The relationship between customer trust and satisfaction is closely interconnected. Trust contributes to higher levels of satisfaction by creating confidence in the security and dependability of banking services, while satisfied customers often develop stronger trust in their financial institutions over time. Together, these factors significantly influence customers' intentions to adopt, continue using, and recommend mobile banking services to others. As competition within the banking sector intensifies, understanding the combined influence of trust and satisfaction has become increasingly important for financial institutions seeking to improve customer retention and strengthen their digital banking strategies.

Although previous studies have examined the determinants of mobile banking adoption using models such as the Technology Acceptance Model (TAM) and the Unified Theory of Acceptance and Use of Technology (UTAUT), there remains a need to further explore the behavioral aspects that drive customer acceptance, particularly the roles of trust and satisfaction in different economic and cultural contexts. As customer expectations continue to evolve with technological innovation, banks must identify the factors that encourage long-term engagement with mobile banking services.

Therefore, this study aims to examine the influence of customer trust and customer satisfaction on mobile banking adoption. By investigating how these two factors affect customers' willingness to adopt and continue using mobile banking services, the study seeks to provide valuable insights for banking institutions, policymakers, and researchers. The findings are expected to contribute to the development of effective customer-centered strategies that enhance trust, improve satisfaction, and ultimately increase the adoption and sustained use of mobile banking services in an increasingly digital financial environment.

Understanding Mobile Banking Adoption :

Mobile banking adoption refers to the decision by customers to use mobile applications or mobile-enabled platforms to access banking services. Adoption involves both the initial acceptance and the continued use of mobile banking services over time. Unlike traditional banking, mobile banking provides customers with flexibility, convenience, and real-time access to financial services without requiring physical visits to bank branches.

The adoption process is influenced by several factors, including perceived usefulness, ease of use, technological readiness, perceived security, service quality, social influence, trust, and customer satisfaction. While technological features may attract first-time users, trust and satisfaction largely determine whether customers continue using mobile banking regularly.

Banks worldwide have invested heavily in mobile applications with advanced security measures, user-friendly interfaces, and personalized services. However, many customers remain hesitant due to concerns regarding cybersecurity, privacy breaches, technical failures, and financial risks. Therefore, banks must create an environment where customers feel secure and satisfied throughout their digital banking experience.

Customer Trust in Mobile Banking :

Customer trust refers to the confidence that customers have in a bank's ability to provide reliable, secure, and honest financial services. Trust reduces customers' perceived risk and uncertainty when conducting financial transactions through digital platforms.

Trust in mobile banking consists of several dimensions :

- **Security Trust :**

Security is one of the most important determinants of customer trust. Customers expect banks to implement strong authentication systems, encryption technologies, biometric verification, and fraud detection mechanisms to protect their accounts from unauthorized access. A secure mobile banking application increases users' confidence and willingness to conduct online transactions.

- **Privacy Trust :**

Customers also trust banks to safeguard their personal and financial information. Banks collect sensitive data such as account numbers, transaction histories, identification documents, and biometric information. Effective privacy policies and compliance with data protection regulations strengthen customer confidence in mobile banking services.

- **Reliability Trust :**

Reliability refers to the consistent performance of mobile banking applications. Customers expect transactions to be processed accurately without system failures or unexpected errors. Frequent technical issues reduce trust and discourage continued usage.

- **Institutional Trust :**

Institutional trust reflects customers' confidence in the reputation, credibility, and stability of the financial institution itself. Well-established banks with strong regulatory compliance and positive public reputations generally enjoy higher levels of customer trust than newer or lesser-known financial institutions.

- **Competence Trust :**

Customers trust banks that demonstrate technological expertise, professional customer service, and effective problem-solving capabilities. Prompt resolution of customer complaints and continuous improvement of mobile applications enhance competence trust.

Customer Satisfaction in Mobile Banking :

Customer satisfaction refers to the extent to which customers' expectations are met or exceeded after using mobile banking services. Satisfaction results from customers' evaluation of various aspects of the service experience, including convenience, service quality, application performance, and customer support.

Several factors contribute to customer satisfaction :

- **Ease of Use :**

A simple and intuitive mobile banking interface enables customers to navigate services without

difficulty. Applications that are easy to understand reduce frustration and encourage continued usage.

- **Service Quality :**

High-quality service includes fast transaction processing, system availability, responsive customer support, and minimal technical disruptions. Consistent service quality contributes significantly to customer satisfaction.

Convenience :

One of the greatest advantages of mobile banking is convenience. Customers appreciate being able to access financial services 24 hours a day without visiting physical branches. Time savings and flexibility increase satisfaction.

Transaction Speed :

Customers expect instant or near-instant processing of transfers, payments, and account updates. Delays may negatively affect customer satisfaction.

Personalization :

Modern mobile banking applications increasingly offer personalized financial advice, spending insights, customized notifications, and tailored product recommendations. Personalized experiences enhance customer engagement and satisfaction.

Objectives :

1. To examine the relationship between customer trust and mobile banking adoption.
2. To assess the influence of customer satisfaction on mobile banking adoption.
3. To determine the combined effect of customer trust and satisfaction on mobile banking adoption.
4. To identify the factors that significantly influence customers' intention to use mobile banking.
5. To provide recommendations for banks to improve customer trust, satisfaction, and mobile banking adoption.

Research Methodology :

This study adopted a quantitative descriptive and explanatory research design to examine the influence of customer trust and satisfaction on mobile banking adoption. The target population consisted of customers who actively use banking services and have access to mobile banking applications. A total of 250 respondents participated in the survey through convenience sampling.

Results and Discussion :

Table 1 : Demographic Profile of Respondents (N = 250)

Variable	Category	Frequency	Percentage (%)
Gender	Male	140	56
	Female	110	44
Age	18–25	70	28
	26–35	100	40
	36–45	55	22
	Above 45	25	10
Education	Bachelor's	130	52
	Master's	90	36
	Others	30	12

The majority of respondents were male (56%). Most participants (40%) belonged to the 26–35 years age group, indicating that young adults are the primary users of mobile banking. More than half (52%) held a bachelor's degree, suggesting that educated customers are more likely to adopt digital banking services.

Table 2 : Descriptive Statistics of Study Variables

Variable	Mean	Standard Deviation
Customer Trust	4.18	0.61
Customer Satisfaction	4.09	0.65
Mobile Banking Adoption	4.24	0.57

The average score for customer trust (Mean = 4.18) indicates that respondents generally trust mobile banking services. Customer satisfaction also recorded a high mean score (4.09), demonstrating positive user experiences. Mobile banking adoption had the highest mean (4.24), indicating widespread acceptance among respondents.

Table 3 : Reliability Analysis

Variable	Number of Items	Cronbach's Alpha
Customer Trust	6	0.892
Customer Satisfaction	5	0.879
Mobile Banking Adoption	5	0.901

Cronbach's Alpha values exceeded the recommended threshold of 0.70, confirming excellent internal consistency and reliability of the measurement scales. Therefore, the questionnaire is considered reliable for further statistical analysis.

Table 4 : Correlation Analysis

Variables	Trust	Satisfaction	Adoption
Customer Trust	1		
Customer Satisfaction	0.691**	1	
Mobile Banking Adoption	0.743**	0.718**	1

Correlation is significant at $p < 0.01$

The correlation analysis reveals a strong positive relationship between customer trust and mobile banking adoption ($r = 0.743$, $p < 0.01$). Customer satisfaction also demonstrates a strong positive relationship with adoption ($r = 0.718$, $p < 0.01$). Additionally, trust and satisfaction are positively associated ($r = 0.691$), suggesting that customers who trust mobile banking services are also more satisfied with them.

Table 5 : Multiple Regression Analysis

Predictor	Beta	t-value	Sig.
Customer Trust	0.468	8.96	0.000
Customer Satisfaction	0.394	7.88	0.000
R ²	0.642		
Adjusted R ²	0.639		
F-value	221.45		0.000

The regression results indicate that customer trust significantly influences mobile banking

adoption ($\beta = 0.468$, $p < 0.001$). Customer satisfaction also has a significant positive effect on adoption ($\beta = 0.394$, $p < 0.001$). The model explains 64.2% of the variance in mobile banking adoption ($R^2 = 0.642$), demonstrating strong explanatory power. The significant F-value confirms that the overall regression model is statistically significant.

Discussion :

The findings demonstrate that customer trust is the strongest predictor of mobile banking adoption. Customers who perceive mobile banking platforms as secure, reliable, and trustworthy are more willing to use these services. This finding aligns with previous studies emphasizing trust as a critical determinant of technology adoption in financial services.

Customer satisfaction also plays a significant role in encouraging mobile banking adoption. Respondents who are satisfied with the ease of use, service quality, transaction speed, and overall experience are more likely to continue using mobile banking applications. High satisfaction levels contribute to customer loyalty and positive word-of-mouth, further promoting adoption.

The strong positive correlation between trust and satisfaction indicates that these constructs reinforce each other. When banks provide secure systems, transparent communication, efficient customer support, and reliable digital services, customer trust increases, leading to greater satisfaction and higher adoption rates.

Overall, the regression model confirms that both trust and satisfaction significantly influence customers' decisions to adopt mobile banking, with trust having a slightly stronger effect. These findings suggest that banks should prioritize enhancing cybersecurity, protecting customer data, improving application usability, and delivering responsive customer service to increase mobile banking adoption.

Conclusion :

The findings indicate that customer trust is a fundamental determinant of mobile banking adoption, as users are more likely to embrace digital banking services when they perceive them to be secure, reliable, and capable of protecting their personal and financial information. Similarly, customer satisfaction positively influences adoption by enhancing users' overall experience through ease of use, service quality, transaction efficiency, and responsive customer support. Satisfied customers are more likely to continue using mobile banking services and recommend them to others, thereby increasing adoption rates.

The study also highlights that financial institutions should prioritize strengthening security measures, improving system reliability, enhancing user-friendly interfaces, and delivering high-quality customer service to build trust and satisfaction among users. Continuous innovation and effective

communication regarding security features can further increase customers' confidence in mobile banking platforms.

Overall, the study concludes that customer trust and satisfaction are critical drivers of mobile banking adoption. Banks and financial service providers that invest in building trust and delivering satisfying customer experiences are more likely to achieve higher customer acceptance, retention, and loyalty. Future research may explore additional factors such as perceived risk, digital literacy, technological readiness, and demographic characteristics to provide a more comprehensive understanding of mobile banking adoption across different populations and regions.

References :

1. Alalwan, A. A., Dwivedi, Y. K., Rana, N. P., & Williams, M. D. (2016) Consumer adoption of mobile banking in Jordan: Examining the role of usefulness, ease of use, perceived risk and self-efficacy. *Journal of Enterprise Information Management*, 29(1), 118–139.
2. Al-Jabri, I. M., & Sohail, M. S. (2012) Mobile banking adoption: Application of diffusion of innovation theory. *Journal of Electronic Commerce Research*, 13(4), 379–391.
3. Gefen, D., Karahanna, E., & Straub, D. W. (2003) Trust and TAM in online shopping: An integrated model. *MIS Quarterly*, 27(1), 51–90.
4. Kim, G., Shin, B., & Lee, H. G. (2009) Understanding dynamics between initial trust and usage intentions of mobile banking. *Information Systems Journal*, 19(3), 283–311.
5. Lee, M. C. (2009) Factors influencing the adoption of internet banking: An integration of TAM and TPB with perceived risk and perceived benefit. *Electronic Commerce Research and Applications*, 8(3), 130–141.
6. Lin, H. F. (2011) An empirical investigation of mobile banking adoption: The effect of innovation attributes and knowledge-based trust. *International Journal of Information Management*, 31(3), 252–260.
7. Luarn, P., & Lin, H. H. (2005) Toward an understanding of the behavioral intention to use mobile banking. *Computers in Human Behavior*, 21(6), 873–891.
8. Oliveira, T., Faria, M., Thomas, M. A., & Popovic, A. (2014) Extending the understanding of mobile banking adoption: When UTAUT meets TTF and ITM. *International Journal of Information Management*, 34(5), 689–703.
9. Riquelme, H. E., & Rios, R. E. (2010) The moderating effect of gender in the adoption of mobile banking. *International Journal of Bank Marketing*, 28(5), 328–341.
10. Shaikh, A. A., & Karjaluoto, H. (2015) Mobile banking adoption: A literature review. *Telematics*

and Informatics, 32(1), 129–142.

11. Susanto, A., Chang, Y., & Ha, Y. (2016) Determinants of continuance intention to use the smartphone banking services. *Industrial Management & Data Systems*, 116(3), 508–525.
12. Venkatesh, V., Morris, M. G., Davis, G. B., & Davis, F. D. (2003) User acceptance of information technology: Toward a unified view. *MIS Quarterly*, 27(3), 425–478.
13. Venkatesh, V., Thong, J. Y. L., & Xu, X. (2012) Consumer acceptance and use of information technology: Extending the unified theory of acceptance and use of technology. *MIS Quarterly*, 36(1), 157–178.
14. Zhou, T. (2012) Understanding users' initial trust in mobile banking. *Electronic Commerce Research*, 12(2), 211–224.
15. Zhou, T. (2014) An empirical examination of continuance intention of mobile payment services. *Decision Support Systems*, 54(2), 1085–1091.

हिंदी-मराठी साहित्यबंध : डॉ. रामदरश मिश्र और व्यंकटेश माडगूळकर के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन तथा मिश्र जी की स्मृति को भावपूर्ण आदरांजलि

डॉ. नरेंद्र चिमण सूर्यराव

प्राथमिक शिक्षक, जिला परिषद प्राथमिक विद्यालय धामणवाडी,
केंद्र दहिवली, तहसील-अंबरनाथ, जिला-ठाणे।

१. प्रस्तावना और अनुसंधान की पृष्ठभूमि :-

भारतीय साहित्य की अखंड धारा विभिन्न प्रांतीय भाषाओं और लोक संस्कृतियों के समृद्ध संगम से प्रवाहित हुई है। भारत एक बहुभाषी देश होने के बावजूद इन सभी भाषाओं के साहित्य का मूल तत्व और आत्मा एक ही रही है— वह है मानवी संवेदनाओं की खोज और लोकजीवन का सजीव चित्रण। हिंदी और मराठी दोनों भाषाओं ने भारतीय साहित्य में अत्यंत मूल्यवान योगदान दिया है। विशेष रूप से बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और इक्कीसवीं शताब्दी की शुरुआत में 'ग्रामकथा', 'आंचलिक साहित्य' और प्रादेशिक उपन्यास विधाओं में जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, उनमें दोनों भाषाओं के कुछ प्रमुख साहित्यकारों का योगदान युगप्रवर्तक रहा है।

हिंदी साहित्य का स्मरण गर्व से करते समय जिस एक नाम का उल्लेख अत्यंत आदर और श्रद्धा से किया जाता है, वह नाम है पद्मश्री डॉ. रामदरश मिश्र (१५ अगस्त १९२४-३१ अक्टूबर २०२५)। वहीं दूसरी ओर, मराठी साहित्य में मानदेश की शुष्क भूमि के लोगों का जीवन, उनकी व्यथा और उनकी जिजीविषा को जगत के समक्ष रखने वाले अमर कथाकार व्यंकटेश माडगूळकर (१९२७-२००५) का नाम अग्रक्रम से लिया जाता है।

इन दोनों महान साहित्यकारों ने अपने-अपने भाषाई प्रदेश के शोषित, श्रमजीवी, उपेक्षित और प्रकृति से संघर्ष करने वाले ग्रामीण मनुष्य का अत्यंत प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया। दोनों साहित्यकारों की भौगोलिक, प्रांतीय और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भिन्न होने के बाद भी उनकी कृतियों में मुखरित होने वाला मानवीय वेदना का स्वर और लोकजीवन से जुड़ा अटूट रिश्ता अद्भुत समानता दर्शाता है।

मेरे डॉक्टरेट (Ph.D.) अनुसंधान का मूल विषय 'रामदरश मिश्र और व्यंकटेश माडगूळकर के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' ही था। इस अनुसंधान के निमित्त मुझे इन दोनों महान साहित्यकारों के वाङ्मय का गहन अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। अक्टूबर २०२५ में पूज्य डॉ. रामदरश मिश्र जी के निधन को एक वर्ष पूर्ण हो रहा है और उनकी प्रथम पुण्यतिथि आ रही है। इस अवसर पर, उनकी अथांग साहित्य-संपदा का पुनर्विचार करना, मराठी-हिंदी साहित्यबंध की समीक्षा करना और मेरे अनुसंधान प्रवास में मुझे तथा मेरे कार्य को प्राप्त हुए

उनके एवं उनकी धर्मपत्नी पूज्य सरस्वती जी के वात्सल्यपूर्ण आशीर्वाद के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना इस विस्तृत शोध निबंध का मुख्य उद्देश्य है।

२. १०१ वर्षों का तपस्वी जीवन और अखंड साहित्य साधना :-

साहित्य जगत में सौ वर्षों का आयु काल प्राप्त होना और वह भी अंतिम क्षण तक पूरी तरह निरोगी, ऊर्जावान और सृजनशील रहना एक दुर्लभ घटना मानी जाती है। डॉ. रामदरश मिश्र जी का जीवन केवल समय-चक्र पर दर्ज १०१ वर्ष नहीं थे, बल्कि वह भारतीय संस्कृति, मूल्यों और साहित्य की एक अखंड और दीर्घ तपस्या थी। १०१ वर्ष की आयु में उन्होंने इस लोक से विदा ली, परंतु अंतिम सांस तक उनकी लेखनी अविरत चलती रही और उनका चिंतन उतना ही प्रखर था।

मिश्र जी का जन्म १५ अगस्त १९२४ को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के 'कछार' क्षेत्र के 'डूमरी' नामक छोटे से गांव में हुआ था। ग्रामीण क्षेत्र की निर्धनता, नदियों की बाढ़ और संघर्ष का वातावरण उन्होंने बाल्यकाल से निकटता से देखा था। यही बाल्यकाल का अनुभव उनके संपूर्ण साहित्य की नींव बना। उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (BHU) से उच्च शिक्षा प्राप्त की और आगे चलकर दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में लंबी अवधि तक सेवा दी। अध्यापन क्षेत्र में रहते हुए भी उन्होंने अपने पैतृक गांव की माटी और साहित्य से अपना नाता कभी नहीं तोड़ा।

मिश्र जी का साहित्य क्षेत्र में अतुलनीय योगदान :-

उनकी साहित्य-संपदा इतनी विशाल और विविध है कि हिंदी साहित्य की कोई भी विधा उनके योगदान के बिना अपूर्ण रहती है :

- **उपन्यास विधा :-** 'पानी के प्राचीर' (१९६१) इस उनके प्रथम उपन्यास ने हिंदी साहित्य जगत में हलचल मचा दी थी। इसमें गोरखपुर के कछार क्षेत्र में बाढ़ और मनुष्यों के संघर्ष का यथार्थवादी चित्रण है। इसके अतिरिक्त 'जल टूटता हुआ', 'अपने लोग', 'रात का सफर' और 'बिना दरवाजे का मकान' जैसे उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने मानवीय संबंधों और सामाजिक परिवर्तनों का सूक्ष्म अवलोकन किया।
- **काव्य संपदा :-** काव्य के क्षेत्र में उन्होंने 'पथ के गीत', 'पका हुआ धान', 'कंधे पर सूरज' और 'मैं तो यहां हूं' जैसे अप्रतिम काव्य संग्रह दिए। उनके 'मैं तो यहां हूं' काव्य संग्रह को प्रतिष्ठित 'व्यास सम्मान' से अलंकृत किया गया था।
- **कहानी और संस्मरण :-** उन्होंने सैकड़ों लघुकथाएं लिखीं जो 'खाली घर', 'बसंत का एक दिन' आदि संग्रहों में संकलित हैं। 'सहचर है समय' उनकी आत्मकथा/संस्मरण २०वीं शताब्दी के भारतीय साहित्य जगत का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज माना जाता है।

उनके इस अतुलनीय योगदान के लिए भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से अलंकृत किया। इसके अलावा 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'व्यास सम्मान' और 'शलाका सम्मान' जैसे अनेक पुरस्कार उन्हें प्राप्त हुए। परंतु इन सभी सम्मानों से भी बड़ा सम्मान वह था जो उन्होंने पाठकों और शोधकर्ताओं के हृदय में अपना स्थायी स्थान बनाकर अर्जित किया।

३. प्रत्यक्ष भेंट - सरस्वती जी का वात्सल्यपूर्ण संस्पर्श और 'जीवन को सार्थक बनाने वाला अनुभव' :

साहित्य का केवल पुस्तकों के माध्यम से अध्ययन करना और जिस साहित्यकार के विचारों पर हम

अनुसंधान कर रहे हैं, उनके प्रत्यक्ष सानिध्य में रहकर उनकी जीवन-दृष्टि को अनुभव करना—ये दो पूर्णतः भिन्न बातें हैं। पुस्तकों से लेखक के विचार ज्ञात होते हैं, परंतु प्रत्यक्ष भेंट से उनके साहित्य के पीछे का व्यक्तित्व, उनके मानवीय मूल्य और उनके संस्कार समझ आते हैं। मेरे Ph.D. अनुसंधान का विषय 'रामदरश मिश्र और व्यंकटेश माडगूळकर के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' होने के कारण, मेरे अनुसंधान प्रवास का सबसे स्वर्णिम क्षण वह था जब मैंने नई दिल्ली स्थित डॉ. रामदरश मिश्र जी के श्वाणी विहार आवास पर उनसे प्रत्यक्ष भेंट की।

साहित्य के इतने बड़े शीर्ष पुरुष 'जिन्हें देश-विदेश के सर्वोच्च पुरस्कार मिले थे' उनसे प्रत्यक्ष मिलने जाते समय मेरे मन में एक अनजाना भय और झिझक थी। एक महान साहित्यकार से मैं एक साधारण शोधार्थी कैसे संवाद कर सकूंगा, इस विचार से मेरा मन आशंकित था। परंतु जब मैंने उनके दिल्ली स्थित निवास में प्रवेश किया, तब वहां के वातावरण ने मेरे मन की संपूर्ण शंका, भय और दबाव को एक ही क्षण में दूर कर दिया।

पूज्य सरस्वती जी का वात्सल्यपूर्ण स्नेह :-

इस ऐतिहासिक भेंट में मुझे केवल मिश्र जी का ही नहीं, अपितु उनकी अर्धांगिनी पूज्य सरस्वती जी के भी दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सरस्वती जी का व्यक्तित्व वात्सल्य और भारतीय संस्कृति का जीवंत प्रतीक था। घर में प्रवेश करते ही उन्होंने अत्यंत आत्मीयता से मेरा आतिथ्य सत्कार किया। महाराष्ट्र से आया एक युवा शोधार्थी उनके पति के साहित्य पर शोध कर रहा है, यह जानकर उनकी आंखों में एक विशेष स्नेह और आनंद छलक रहा था।

एक माता की भांति उन्होंने मेरा कुशलक्षेम पूछा और मेरी पीठ पर स्नेह की थपकी दी। वह केवल एक थपकी नहीं थी, बल्कि एक मराठी भाषी शोधार्थी को हिंदी साहित्य के आंगन में प्राप्त मातृवत आशीर्वाद था। डॉ. रामदरश मिश्र जी के 909 वर्षों के दीर्घ और सृजनशील जीवन-प्रवास में पूज्य सरस्वती जी का योगदान अत्यंत महान था।

मिश्र जी का सरल स्वभाव, प्रबंध पर हस्ताक्षर और भेंट स्वरूप उनकी किताब :-

मिश्र जी की सादगी देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। इतनी महान विद्वत्ता होने के उपरांत भी उनमें अहंकार का लेशमात्र भी न था। अत्यंत साधारण वस्त्र, चेहरे पर मंद मुस्कान और आंखों में आत्मीयता... उन्होंने मुझे अत्यंत प्रेम से अपने पास बैठाया। मेरे Ph.D. प्रबंध की रूपरेखा, अध्याय और मेरे द्वारा किए गए विश्लेषण को उन्होंने अत्यंत ध्यानपूर्वक और उत्साह से देखा।

मराठी के दिग्गज लेखक व्यंकटेश माडगूळकर के 'बनगरवाडी' तथा अन्य साहित्य से अपने साहित्य की तुलना होते देखकर उन्हें अत्यधिक प्रसन्नता हुई। दो भिन्न भाषाओं (हिंदी और मराठी) के साहित्यबंध को सुदृढ़ करने का यह प्रयास एक मराठी शोधार्थी ने किया है, इसके लिए उन्होंने मेरी मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

उन्होंने मेरे प्रबंध की हस्तलिपि का अवलोकन कर अपने स्वयं के हस्ताक्षर मेरे प्रबंध पर किए और मुझे उनकी किताब भेंट स्वरूप प्रदान की और शुभाशीर्वाद प्रदान किए। उनका वह हस्ताक्षर अभिप्राय एवं भेंट केवल भेंट नहीं थे, बल्कि मेरे वर्षों के परिश्रम को मिली सर्वोच्च स्वीकृति थी।

8. रामदरश मिश्र और व्यंकटेश माडगूळकर : तुलनात्मक अध्ययन (विस्तृत विश्लेषण)

भारतीय साहित्य के पटल पर जब हम प्रादेशिक और ग्रामीण साहित्य का अध्ययन करते हैं, तब उत्तर

भारत के गोरखपुर के 'कछार' क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले डॉ. रामदरश मिश्र और महाराष्ट्र के 'माणदेश' के सूखाग्रस्त क्षेत्र का चित्रण करने वाले व्यंकटेश माडगूळकर के मध्य एक सूक्ष्म और सुदृढ़ आत्मिक संबंध दृष्टिगोचर होता है। दोनों साहित्यकारों ने अपनी-अपनी भाषाई परिधि में रहते हुए लोकजीवन का जो प्रामाणिक दस्तावेज तैयार किया है, वह अभूतपूर्व है।

मेरे Ph.D. अनुसंधान के मूल आधार इन दो अमर साहित्यकारों के साहित्य के प्रमुख तुलनात्मक पहलू निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर रेखांकित किए जा सकते हैं :-

अ. भौगोलिक पर्यावरण और आंचलिक यथार्थ (Regional Reality) :-

किसी भी आंचलिक लेखक के साहित्य में वहां के भूगोल और प्रकृति की एक विशिष्ट गंध होती है।

- **रामदरश मिश्र :-** मिश्र जी के साहित्य में (विशेष रूप से 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' उपन्यासों में) उत्तर प्रदेश की राप्ती और गोर्रा नदियों के कछार क्षेत्र का मनमोहक और भीषण चित्र आता है। नदियों की विनाशकारी बाढ़, उस बाढ़ से उजड़ते हुए घर-खेत और फिर भी प्रतिवर्ष नए सिरे से गृहस्थी बसाने वाला सामान्य मनुष्य— यह मिश्र जी के साहित्य का केंद्र बिंदु है।

- **व्यंकटेश माडगूळकर :-** इसके विपरीत माडगूळकर के साहित्य में ('बनगरवाडी', 'गावाकडच्या गोष्टी' या 'माणदेशी माणसं') महाराष्ट्र के सांगली-सातारा जिले के अकाल पीड़ित मानदेश का शुष्क, कठोर और पथरीला यथार्थ चित्रित है। वहां जल की एक-एक बूंद के लिए संघर्ष, अकाल के कारण गांवों का जनशून्य होना और चरवाहा समाज का पलायन मुख्य विषय हैं।

तुलनात्मक निष्कर्ष :- एक ओर जल का आधिक्य (भीषण बाढ़) और दूसरी ओर जल का भयानक अभाव (अकाल)— इन दो विपरीत भौगोलिक छोरों पर ये दोनों लेखक खड़े हैं। परंतु इन विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करने वाला 'सामान्य मनुष्य' और उसकी जीवन-जिजीविषा इन दोनों लेखकों को एक ही सूत्र में पिरोती है।

ब. उपेक्षित और शोषित वर्गों का यथार्थ चित्रण :-

दोनों साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के अंतिम व्यक्ति और शोषित वर्ग को मुख्य धारा में प्रस्तुत किया।

- **मिश्र जी के पात्र :-** मिश्र जी के उपन्यासों के पात्र ग्रामीण किसान, भूमिहीन मजदूर, नारियां और सामाजिक विषमता से पीड़ित वर्ग हैं। वे केवल निर्धनता का प्रदर्शन नहीं करते, बल्कि स्वाभिमान और परस्पर सहयोग की भावना को भी रेखांकित करते हैं।

- **माडगूळकर के पात्र :-** माडगूळकर की श्वनगरवाडीश के रामा बनगर, कारभारी या आनंदा जैसे चरवाहे और उपेक्षित समाज के पात्र मराठी साहित्य के मील के पत्थर सिद्ध हुए। माडगूळकर ने इन पात्रों को बिना किसी कृत्रिम सहानुभूति के, जैसा हैं, वैसा ही यथार्थ रूप में पाठकों के समक्ष रखा।

तुलनात्मक निष्कर्ष :- दोनों साहित्यकारों की दृष्टि मानवतावादी है। उन्होंने पात्रों को किसी काल्पनिक आदर्श में न बांधकर उनके गुणों, दोषों और संघर्षों के साथ सजीव रूप में खड़ा किया है।

क. मानवीय मूल्य और नैतिकता की खोज :-

आधुनिकता के प्रवाह और शहरीकरण के प्रभाव में ग्रामीण क्षेत्र के पारंपरिक मूल्य किस प्रकार परिवर्तित हो रहे हैं, इसका अध्ययन दोनों लेखकों ने किया।

मिश्र जी के 'अपने लोग' और 'जल टूटता हुआ' उपन्यासों में गांव की पुरानी और नई पीढ़ी का संघर्ष तथा राजनीति के कारण बिखरता ग्रामीण जीवन दिखाई देता है।

माडगूळकर की 'सत्तांतर' जैसी कृति में मानव स्वभाव, सत्ता की लालसा और पशु जगत के व्यवहार से मानवीय व्यवहार की तुलना अत्यंत सूक्ष्मता से की गई है।

ड. भाषाई सहजता, लोकबोली और शैली :-

दोनों साहित्यकारों की लेखनी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सरल, सीधी और हृदयस्पर्शी भाषा है।

• **मिश्र जी की भाषा :-** मिश्र जी ने अपने हिंदी लेखन में भोजपुरी लोकबोली का अत्यंत स्वाभाविक प्रयोग किया। उनके काव्य और गद्य में लोकगीतों की लयबद्धता और कहावतों का सुंदर समावेश मिलता है।

माडगूळकर जी की भाषा :- माडगूळकर जी ने मानदेशी बोली का ऐसा प्रयोग किया कि वह भाषा केवल संवाद का माध्यम न रहकर स्वयं एक जीवंत पात्र बन गई। कम से कम शब्दों में गहन अर्थ व्यक्त करना माडगूळकर जी की शैली की प्रमुख विशेषता थी।

इ. तुलनात्मक अध्ययन का महत्व :-

हिंदी और मराठी साहित्य का यह तुलनात्मक अध्ययन केवल दो लेखकों की तुलना मात्र नहीं है, अपितु यह उत्तर और पश्चिम/दक्षिण भारत के मध्य एक सांस्कृतिक और सामाजिक सेतु है। डॉ. रामदरश मिश्र जी ने स्वयं Ph.D. हस्तलिपि का अवलोकन करते समय इस बात का विशेष संज्ञान लिया था। एक मराठी भाषी शोधार्थी द्वारा हिंदी और मराठी के आंचलिक जीवन का जो तुलनात्मक अनुशीलन किया गया, उससे भारतीय साहित्य की एकात्मकता और अधिक सुदृढ़ होती है— ऐसा विश्वास उन्होंने व्यक्त किया था।

५. निष्कर्ष और भावपूर्ण आदरांजलि :-

भारतीय साहित्य के विस्तृत पटल पर डॉ. रामदरश मिश्र और व्यंकटेश माडगूळकर इन दो महान विभूतियों का स्थान अचल है। प्रस्तुत तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्रांतीय सीमाएं, भाषा और सांस्कृतिक पद्धतियां भिन्न होने पर भी मनुष्य का मूल दुःख, प्रकृति से उसका संघर्ष और लोकजीवन की सत्यनिष्ठा पूरे भारत में एक समान है।

मिश्र जी ने अपने 909 वर्षों के दीर्घ जीवन में साहित्य को ही अपना जीवन माना। सौ वर्ष की आयु पार करने के पश्चात भी उनकी सृजनशीलता, प्रखर मेधा और साहित्य के प्रति समर्पण संपूर्ण जगत के लिए प्रेरणादायी है। साहित्य के इतने महान शिखर होने के बाद भी उनकी सादगी, नम्रता और नए शोधार्थियों को प्रोत्साहित करने की वृत्ति उनके व्यक्तित्व की वास्तविक महानता थी।

Ph.D. अनुसंधान के समय दिल्ली स्थित उनके निवास पर हुई वह ऐतिहासिक भेंट मेरे जीवन की सबसे अमूल्य उपलब्धि है। पूज्य सरस्वती जी का वात्सल्यपूर्ण स्नेह और मिश्र जी द्वारा मेरे प्रबंध पर अपने स्वयं के हस्ताक्षर मेरे संपूर्ण जीवन की अनमोल निधि है।

अक्तूबर २०२५ में उनके देवलोक गमन को एक वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर, उनकी प्रथम पुण्यतिथि के इस पावन समय में यह शब्द—पुष्पांजलि अर्पित करते हुए मन अत्यंत कृतज्ञता से भरा है। डॉ. रामदरश मिश्र और पूज्य सरस्वती जी की पावन स्मृति में, उनकी महान साहित्य—साधना को और उनके द्वारा प्राप्त आशीर्वाद को मेरी यह नम्र, सविनय और भावपूर्ण आदरांजलि!

६. परिशिष्ट एवं संदर्भ सूची

१. डॉ. रामदरश मिश्र का साहित्य (हिंदी) :-

- मिश्र, रामदरश. (१९६१). पानी के प्राचीर (उपन्यास), अंकुर प्रकाशन, नई दिल्ली।
- मिश्र, रामदरश. (१९६६). जल टूटता हुआ (उपन्यास), कृष्णचंद बेरी एंड संस, वाराणसी।
- मिश्र, रामदरश. (१९७८). अपने लोग (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- मिश्र, रामदरश. (१९६९). सहचर है समय (आत्मकथा/संस्मरण), किताबघर, नई दिल्ली।
- मिश्र, रामदरश. (२०१५). मैं तो यहां हूं (काव्यसंग्रह), इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली।
- मिश्र, रामदरश. (२०१८). हिंदी उपन्यास : एक अंतरयात्रा (समीक्षा), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

२. व्यंकटेश माडगूळकर का साहित्य (मराठी) :-

- माडगूळकर, व्यंकटेश. (१९५५). बनगरवाडी (उपन्यास), मौज प्रकाशन गृह, मुंबई।
- माडगूळकर, व्यंकटेश. (१९४६). माणदेसची माणसं (कहानी संग्रह), मौज प्रकाशन गृह, मुंबई।
- माडगूळकर, व्यंकटेश. (१९७७). सत्तांतर (उपन्यास), मेहता पब्लिशिंग हाउस, पुणे।
- माडगूळकर, व्यंकटेश. (१९८१). करुणाष्टक (उपन्यास), उत्कर्ष प्रकाशन, पुणे।

३. तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक ग्रंथ/प्रबंध :-

- सूर्यराव, नरेंद्र चिमण "रामदरश मिश्र और व्यंकटेश माडगूळकर के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन" (Ph.D. प्रबंध पर पूज्य डॉ. रामदरश मिश्र जी के प्राप्त हस्ताक्षर तथा उनकी भेंट की गई काव्यसंग्रह पुस्तक पर अंकित सस्नेह संदेश युक्त संदर्भ), यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विश्वविद्यालय, नासिक, २०१७।
- तिवारी, रामचंद्र. (२०१२). हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
- जोशी, प्रल्हाद. (२००५). मराठी प्रादेशिक साहित्य आणि लोकसंस्कृती, स्नेहवर्धन प्रकाशन, पुणे।
- मिश्र, रामदरश शोधकर्ता को प्रत्यक्ष भेंट के दौरान दिया गया साक्षात्कार एवं हस्ताक्षरित अभिप्राय (दिनांक : २४/११/२०१५), नई दिल्ली।

डॉ. नरेंद्र चिमण सूर्यराव

रूम नंबर ३०४, डव्हान्स इन्वलेव्ह वन-ए

को-ऑपरेटिव्ह हाऊसिंग सोसायटी समर्थ नगर शिरगाव

बदलापूर (पूर्व) तहसील-अंबरनाथ जिल्हा-ठाणे। पिनकोड-४२१५०३

भ्रमणध्वनी :- ९२०६१६४८१०



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 174-178

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

प्राचीन भारतीय स्त्री- अभिव्यक्तियाँ

सुप्रिया सिंह

शोधार्थी (हिन्दी विभाग)

जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

शोध सारांश -

प्राचीन भारतीय स्त्री-अभिव्यक्तियाँ यह वाक्य पूरे भारतीय समाज में स्त्री-अभिव्यक्ति को एक नयी फलक दे रही है। प्राचीन भारतीय स्त्रियाँ काफी स्वतंत्र एवं सुशिक्षित थीं। भारतीय समाज में स्त्री को प्राचीन काल से ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। प्राचीन भारत का वैदिक काल स्त्री स्वतंत्रता एवं स्त्री-अभिव्यक्ति की दृष्टि से स्वर्ण युग माना जाता है। यह काल स्त्रियों के अभिव्यक्ति के लिए बौद्धिक दृष्टि से अत्यंत उर्वर काल था। इस समय नर-नारी को समान शिक्षा का अधिकार एवं उपनयन संस्कार का प्रावधान था। वैदिक काल में प्राचीन भारतीय स्त्री-अभिव्यक्ति का स्वरूप वैदिक वाग्मय के संवर्धन के आधार पर स्त्री विदुषियों का योगदान काफी था। वैदिक काल में अनेक विदुषी स्त्रियों का वर्णन गाथा सप्तशती से पता चलता है जैसे-रेखा, रोहा, माधवी, अनुलक्ष्मी, पाहई, बद्धवही, शाशिप्रभा, घोषा, अवन्तिसुन्दरी, अपाला, विश्ववारा, सरस्वती, लोपामुद्रा आदि। प्राचीन भारतीय स्त्रियाँ अपनी ज्ञानमयी अभिव्यक्तियों को समाज के सामने प्रस्तुत करती, वे कुण्ठा, शोषण, अत्याचार आदि से ग्रसित नहीं थीं। प्राचीन काल की स्त्रियों ने समय पड़ने पर अपने अधिकारों के प्रति आवाज उठाई तथा गलत प्रावधानों का प्रतिकार भी किया।

अतः इन्हीं सभी तथ्यों के आधार पर मैंने अपने शोध पत्र में संदर्भित विषय पर लेखन का विनम्र प्रयास किया है।

बीच शब्द : स्त्री-अभिव्यक्ति, वेदकालिन विदुषियाँ, वैदिक वाग्मय, स्त्री-शिक्षा, स्त्री-स्वतंत्रता।

मूल आलेख -

प्राचीन काल से ही स्त्री को जीवन का मूल आधार माना गया है। नर-नारी दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं ना की प्रतिद्वन्द्वी। जब ईश्वर ने इन दोनों जातियों के बीच भेद-भाव नहीं किया तो हम-आप कौन होते हैं भेद-भाव करने वाले। शिव भी अपनी शक्ति के बिना शव के समाज है। स्त्री ही ऐसे शक्ति है जो पुरुष के जीवन में प्रेरणा तथा साहस का प्रतीक मानी जाती है। प्राचीन काल में प्राचीन भारतीय स्त्री-अभिव्यक्तियाँ एवं स्वतंत्रता स्त्रियों को काफी उन्नत बनाए हुए था। वैदिक युग में स्त्री की शिक्षा अपनी उच्चतम सीमा पर थी। वह पुरुषों के समकक्ष बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करती थी। वह बुद्धि तथा ज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी थी। इस युग में पुत्र की तरह पुत्री का भी विधारम्भ से पहले उपनयन संस्कार तथा वे ब्रह्मचर्य का भी पालन करती थीं। इस

काल से स्त्रियों को यज्ञ-सम्पादन तथा वेदाध्ययन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। प्राचीन भारत में स्त्री समाजिक विकास के क्रम में एक सशक्त भूमिका के रूप में दिखाई पड़ती हैं। प्राचीन काल में स्त्री की पवित्रता के संबंध में शास्त्रकारों का मत है कि वह ऋतुमती होते ही वह पुनः पवित्र हो जाती है—व्यास ने कहा है :

“व्याभिचारेण दृष्टानामं पातिनां दर्शनाद्दृते

धिकृतात्याम वाच्यामन्यत्र वासयेत पतिः

पुनस्तामार्तवस्नायां पूर्ववद् व्यवहारयेत्।”

व्यास कहते हैं कि स्त्री किसी के साथ सम्भोग करे तो अगली बार राजस्वला होने तक ही अपवित्र है। उसके बाद वह अपने पुरुष के लिए स्वीकार्य है। गौतम का स्वयं का जीवन उदाहरण है। अहल्या को त्याग देने के बाद उन्होंने पुनः सहजीवन जीया सन्तान उत्पन्न की।¹ भारतीय परम्परा के अनुसार पूर्ववैदिक काल में स्त्री व पुरुष में परस्पर बराबरी का दर्जा प्राप्त था। वैदिक काल में स्त्री जितनी स्वतंत्र थी उतनी परवर्ती काल के किसी भी युग में नहीं थीं।

प्राचीन भारतीय स्त्री-अभिव्यक्ति की दृष्टि से स्त्री के विभिन्न गुणों एवं अभिव्यक्ति का पता चलता है। उस युग में बौद्धिक योगदान करने वाले कवयित्रियाँ, अनेक ऋचाओं के प्रणयन में लगी रहने वाली स्त्रियाँ जो ऋग्वेद की विदुषियाँ रही हैं जैसे—घोषा, रोमा, निवावरी, उर्वशी, रोमाशा आदि पंडिता स्त्रियाँ थीं। उत्तर वैदिक युग में कई ऐसी भी स्त्रियाँ थीं जो अपनी अभिव्यक्तियों को शिक्षा, ज्ञान एवं ब्रह्मचर्य के माध्यम से अभिव्यक्त करती थीं। जैसे—याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी विख्यात दार्शनिक थीं। ऋषि कुशहवज की कन्या वेदवती ब्रह्मवादिनी स्त्री, ज्ञानी, प्रतिभा सम्पन्न बुद्धि में पारंगत होने के साथ अनेक मंत्रों की उद्गत्री थीं। महाभारत की कुन्ती अथर्ववेद में पारंगत थीं। परम विदुषी गार्गी ने भी अपने ज्ञान तथा अद्भुत तर्कशक्ति का प्रदर्शन राजा जनक के राज्य सभा में दिया था। कौशल्या और तारा दोनों मन्त्रविद् थीं। मंडन मिश्र और शंकर के बीच हुए शास्त्रार्थ की निर्णायिका मंडन मिश्र की विदुषी पत्नी थीं। जो तर्क, मीमांसा, वेदांत और साहित्य में पूर्ण पारंगत थीं। बौद्ध युग तथा जैन साहित्य की विदुषी स्त्रियाँ कौशाम्बी की पुत्री जयन्ता ज्ञान एवं दर्शन में परांगत थीं। इसी प्रकार बौद्ध युग में अनेक ऐसी स्त्रियाँ थीं जो विद्या, धर्म, दर्शन आदि में रुचि रखती थीं जैसे—भिक्षुणी खेमा, सुभद्रा, सुमधा, शुभा, अनोपमा आदि।

प्राचीन भारतीय स्त्री-अभिव्यक्ति का हास धीरे-धीरे उत्तर वैदिक काल से प्रारंभ होने लगा और स्त्री की दशा अवन्ति की ओर अग्रसर होने लगी। उसके सामाजिक तथा धार्मिक अधिकार धीरे-धीरे समाप्त होने लगे। उसका स्वतंत्र अस्तित्व भी समाप्त होने लगा। मनु, विज्ञानेश्वर जैसे ज्ञानियों ने उसके स्वतंत्र अस्तित्व पर अंकुश लगाने लगे। स्त्री को पति, पुत्र, भाई आदि पुरुषों के संरक्षण में हर अवस्था में रहना चाहिए।

हमारा भारतीय समाज बहुत ही समृद्ध समाज है। इस समाज में हिन्दी साहित्य को एक अलग ही प्रतिष्ठा प्राप्त है। हिन्दी साहित्य की कई ऐसी गणमान्य महिला लेखिकाएँ हैं जिन्होंने स्त्री-अभिव्यक्ति को अपने साहित्य तथा अपनी अद्भुत लेखनी के माध्यम से समाज के सामने प्रकट किया है। उनमें से कुछ प्रमुख लेखिकाएँ हैं—कृष्णा सोबती जी, उषा प्रियंवदा, मंजुल भगत, मन्नु भण्डारी, अमृता प्रीतम, शिवानी, आशापूर्णा देवी, मृणाल पाण्डे, मृदुला गर्ग, इन्हीं में से एक हैं बिहार की सुप्रसिद्ध वरिष्ठ लेखिका डॉ. उषाकिरण खान। जिन्होंने अपने कई उपन्यास, कथा-कहानियाँ, साक्षात्कार, पत्र-पत्रिका आदि में स्त्री-अभिव्यक्ति के प्रश्नों को बखुबी उठाया है।

इनकी पुस्तक 'मैं एक बलुआ प्रस्तर खण्ड' में उन्होंने प्राचीनकाल की परम विदुषी घोषा से लेकर इंदिरा गाँधी तक का स्त्री-विमर्श अंकित किया है। यह पुस्तक स्त्री-अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करती है। इस पुस्तक में प्राचीन भारतीय स्त्री-अभिव्यक्ति का निरूपण प्राचीन काल की स्त्रियों की भी अभिव्यक्ति की कथा अंकित हुई है। उषाकिरण खान ने इस पुस्तक में स्त्री की अभिव्यक्ति को बहुत ही मार्मिक प्रश्नों के साथ उठाया है। "स्त्री की स्थिति क्या रही उस समय? शूर्पनखा को अपमानित करने में कोई संकोच नहीं, सीता को बलपूर्वक हरण करने में पुरुषार्थ। लौट कर आई सीता को समाज के कारण राम जो स्वयं राजा थे ने त्याग दिया। संस्कृति का अत्यंत क्षोभकारी काल था जहाँ स्त्री पत्नी रूप में स्वतंत्र नहीं थीं। भीम ने जिस जनजातीय कन्या हिडिम्बा से विवाह किया उसे कभी राजभवन न ला पाये। सुसंस्कृत सभा कैसी थी कि एक स्त्री जो सब की कोई-न-कोई लगती थी राजसभा में नंगी कर दी गई। अतः भूमि के लिए स्त्री जिसे अब तक भूमि की संज्ञा दी जाती थी कि बलि दी जा सकती थी।"²

आगे चल कर स्त्रियों में धीरे-धीरे कुछ बदलाव आने लगा। सीता का भविष्य युगान्तकारी होना आवश्यक था स्त्री-अभिव्यक्ति के लिए— "विद्रोह की शुरुआत हो चुकी थी। अपने अस्तित्व के संकट को अभिजात स्त्रियों द्वारा पहचाने जाने की शुरुआत थी। उसके पहले गौतम ऋषि द्वारा त्याज्य अहल्या ने फिर से उनके साथ गृहस्थी बसा ली परन्तु सीता ने ऐसा न कर एक मिसाल तो कायम की।"³ यहाँ पर स्त्री-अभिव्यक्ति के साथ ही साथ विद्रोह तथा प्रतिकार की भावना भी प्रकट होती है।

आगे चल कर कुछ ऐसी भी स्त्रियाँ हुई जो शासन-व्यवस्था और राज्य के प्रबन्ध कार्यों में दक्ष होती थी तथा शासक अथवा अभिभावक के अभाव में स्वयं शासन व्यवस्था की बागडोर अपने हाथों में लेती थीं। परन्तु कहीं-न-कहीं स्त्री-अभिव्यक्ति अवरुद्ध भी होती गई। जन्म होते ही कन्या को विषकन्या की संज्ञा देने लगा समाज। युद्ध में प्राजित राजा एवं राज्य की कन्याएँ भावी अत्याचार के डर से या तो अग्निकुंड में कुदती या, स्वामी के शव के साथ सती, जौहर होती। स्त्री, जो माँ है जिसका एक युग रहा है, जिसे जगदम्बा समझा गया उसे दीवार के अंदर बंद कर अधिक नहीं रखा जा सकता है।

"कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में आर्थिक और सामाजिक अधिकारों का तो वर्णन किया है किन्तु उन्हें स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने के अधिकार नहीं थे।"⁴

स्त्री-अभिव्यक्ति के सम्बंध में लेखक डॉ. राजेन्द्र मिश्र टिप्पणी करते हैं— "शारीरिक रूप से पुरुष के समाज उसमें शक्ति नहीं होती और उसे मानसिक स्तर पर ही मजबूत होने की जरूरत है।"⁵

यह टिप्पणी भारत की प्राचीन एवं नवीन सभी स्त्रियों के लिए स्त्री-अभिव्यक्ति का एक नवीन स्वर जागृत करती है। जिसके कारण नारी सशक्तिकरण की अभिव्यक्ति तथा अवधारणा सार्थक होती है।

भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल आधार यहाँ की संस्कृति तथा यहाँ का वैदिक ज्ञान है। जो आदि से अन्त काल तक भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल को कायम रखेगा। भारतीय ज्ञान परम्परा में चरित्र निर्माण के रूप में नर तथा नारी दोनों ही महत्वपूर्ण हैं जो आदि काल से चले आ रहे हैं क्योंकि नर और नारी दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जिस प्रकार शिव-शक्ति के बिना अपूर्ण हैं अर्थात् शव के समान है उसी प्रकार नर और नारी का चरित्र ईश्वर ने ही रचा है। ऋद्धा और मनु अपने-अपने चरित्रों के निर्माण के कारण ही मानव परम्परा को जन्म देते तथा आगे बढ़ाते आये थे। हमारी सभ्यता और संस्कृति विश्व विख्यात है।

भारतीय संस्कृति विश्व विख्यात है। भारतीय ज्ञान परम्परा तथा भारतीय संस्कृति अपनी विविधता तथा ज्ञान जुजुप्षा के लिए विश्व में एक विशिष्ट पहचान रखती है। भारतीय संस्कृति में नारी की अनन्य भूमिका रही है।

यूँ तो हमारा देश पुरुष प्रधान देश माना जाता है परन्तु पुरुष को जन्म देने वाली एक नारी हैं इसीलिए नारी को जननी भी कहा जाता है। मनुस्मृति में, स्त्री को प्रतिष्ठा दी गई थी— **‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता’** मतलब स्पष्ट था कि वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना करने के लिए उनके महत्व को ऊँचा बताया गया। वैदिक सभ्यता के धर्म को यज्ञ के रूप में स्थापित माना जाता है जिसके लिए सपत्नीक बैठना आवश्यक था। गृहस्थ जीवन का यह मूल था, उसके साथ ही गृहस्थी के सारे कार्य पत्नी के साथ ही पूर्ण होते। स्त्री को पूज्य मानकर लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती, काली के रूप में प्रतिष्ठित हम मनुष्य ही करते हैं और कभी-कभी समाज के तुच्छ व्यवहार के कारण उसका अपमान करते हैं, परन्तु नारी के श्रेष्ठ, गुण, महत्वों को सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग में अच्छी तरह से देखा जा सकता है। जैसे— 1. सतयुग की देवी रेवती, 2. त्रेतायुग की सीता, अहल्या, तारा, मंदोदरी, 3. द्वापर की कुन्ती, द्रौपदी, 4. कलियुग में तो बहुत सारी महिलाएँ हैं जो चाँद-तारे छू रही हैं। ये नारियाँ भारतीय ज्ञान परम्परा को उज्ज्वल भविष्य दिखाई हैं। इनके साथ ही साथ और भी ज्ञानी, विदुषी नारियाँ हैं जैसे की घोषा, गार्गी, मैत्री, अवन्तिसुन्दरी, माधवी, रोहा, लोपामुद्रा, मिथिला की राजकुमारी मलिननाथ, सीता आदि। आगे चलकर भारतीय ज्ञान परम्परा तथा स्त्री अभिव्यक्ति में नारी चरित्र के योगदान के रूप में ध्रुवस्वामिनी, आम्रपाली, सुजाता, कोशा, स्वतंत्रता संग्राम में भी भाग लेने वाली तथा प्रेरणा स्रोत के रूप में भारतीय ज्ञान परम्परा को आगे बढ़ाने वाली नारियाँ जैसे—महारथी त्रयितकरो, नूरजहाँ, यक्षिणी, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, सुंदर बाई, मुंदर बाई, शक्ति घोष, आदिवासी कन्या फूलो और ज्ञानो, सावित्री बाई फूले, अजीजन बाई, मातंगिनी हाजरा, प्रीतिलता, सुहासिनी गांगुली, सरोजिनी नायडू, कमला देवी चहोपाध्याय, दुर्गाबाई देशमुख, प्रभावती देवी, अरुणा आसफ अली, इंदिरा गाँधी आदि और भी बहुत सारी महिलाएँ हैं जो भारतीय ज्ञान परम्परा के सथ-साथ चल रही हैं। हमारे देश में अध्यात्म, ज्ञान, भाषा, परम्परा, तकनीकी ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, वेद, उपनिषदों, ऋचाओं, धर्म, ग्रंथों आदि का भण्डार से भरा हुआ देश है जिसमें नर-नारी का समान रूप से सम्मान पूर्वक अधिकार एवं कर्तव्य, दोनों ही निहित हैं। तथापि हम सबो को इस भरे हुए भण्डार को और भी विपुल-वैभव के साथ आगे बढ़ाना है।

भारत विविधताओं का देश है। यहाँ पर विभिन्न जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा के लोग निवास करते हैं। भारत अध्यात्म का भंडार है। प्राचीन काल से लेकर अब तक अध्यात्म दर्शन विज्ञान, अनुसंधान, आविष्कार, विचारों तथा तकनीकों आदि का विकास होते आ रहा है। भारतीय ज्ञान परम्परा हमारी समृद्ध विरासत का प्रतीक माना जाता है। इस भारतीय ज्ञान परम्परा में नारी जाति का विशेष महत्व रहा है जो कि प्राचीन काल से अब तक चला आ रहा है। जहाँ तक अगर हम बुद्धि की बातें करें तो वे नारी में कूट-कूट कर भरा पड़ा है क्योंकि वे ही ज्ञान की देवी माँ सरस्वती है, वे ही शक्ति की देवी माँ काली है, वे ही धन की देवी माँ लक्ष्मी है। इन तीनों के संयोग के बिना मनुष्य का जीवन व्यर्थ है। इसलिए कहा गया है—

‘या देवी सर्वभूतेषु विद्या-रूपेण, शक्ति-रूपेण, धन-रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।’ अर्थात् जो देवी सभी प्राणियों में विद्या, शक्ति, धन तथा सभी रूप से विराजमान हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारम्बार नमस्कार है। इसका मतलब नारी के हर उस विराट, महान् स्वरूप को नमस्कार

है जो कल्याण के लिए है। हमारे भारतीय समाज में वैदिक काल से ही नारी ज्ञान की पिपासु थीं। उन्हें ज्ञान अर्जन के लिए काफी मेहनत करनी पड़ी।

अब आगे हम देखते हैं कि किस प्रकार तथा कौन-कौन सी महत्वपूर्ण नारियों ने वैदिक काल से भारतीय ज्ञान परम्परा के रूप में अधिक योगदान रहा है तथा उनका चरित्र निर्माण ज्ञान के अवलोकनार्थ किस प्रकार हुआ है। आर्यों के प्रारंभिक समाज में स्त्रियाँ काफी स्वतंत्र एवं स्वच्छ थीं। वे बिना किसी प्रतिबंध के सामाजिक गतिविधियों में सम्मिलित होती थीं। वस्तुतः वैदिक काल में स्त्री जितनी स्वतंत्र और मुक्त थी, उतनी परवर्ती काल में नहीं थी। सभी दृष्टियों से वह पुरुष के समान थीं। उसके अधिकार किसी भी प्रकार पुरुषों से कम नहीं थे। शिक्षा, ज्ञान, यज्ञ आदि विभिन्न क्षेत्रों में वह निर्विरोध, स्वतंत्र तथा स्वतंत्रतापूर्वक सम्मिलित होती तथा सम्मानपूर्वक आदर प्राप्त करती थीं। इन्हीं सभी तथ्यों के आधार पर यह कहना सर्वथा उचित होगा कि प्राचीन भारतीय स्त्री-अभक्तियाँ स्त्रियों के लिए स्वर्ण युग रहा है।

निष्कर्ष :-

प्राचीन वैदिक काल प्राचीन भारतीय स्त्री-अभिव्यक्ति की दृष्टि से स्त्रियों के लिए समृद्ध काल होने के साथ ही साथ महिला सशक्तिकरण एवं स्त्री-शिक्षा के हिसाब से काफी उन्नत काल था। जिसके कारण स्त्रियों को वेद ज्ञाता एवं अपनी क्षमता, श्रेष्ठा को समाज के सामने प्रस्तुत करने के लिए एक अच्छा विस्तृत अवसर प्राप्त हुआ था। उनकी संवेदना, अभिव्यक्ति भाँप कर उन्हें महिमामंडित करने की भावना का उद्भव हुआ, तभी लिखा गया 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'।

संदर्भ सूची :-

1. उषाकिरण खान, पहला संस्करण 2021, 'मैं एक बलुआ प्रस्तर खण्ड : राजपाल एण्ड सप्त, नई दिल्ली, पृ. सं- 8
2. वही, पृ. सं.- 74
3. वही, पृ. सं.- 40
4. 'भारतीय इतिहास लेखन में महिला विमर्श', पत्रिका, राँची विश्वविद्यालय, पृ. सं.- 13
5. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, 'भविष्य का साहित्य', पृ. सं.-110

ई-मेल – supriyapvc57@gmail.com



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 179-187

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

The Role of Public Policy in Promoting Innovation in India : A Comprehensive Review

Suresh Sharma,

S. K. Kulshrestha

School of Humanities and Social Science,

Vardhman Mahaveer Open University, Kota, Rajasthan, India

Abstract :

Innovation has emerged as a central determinant of productivity, competitiveness, employment generation, and sustainable economic development. In a developing country such as India, public policy assumes a particularly important role because private markets alone may not provide adequate investment in research and development, basic science, technological infrastructure, and high-risk innovation. This paper reviews the evolution and contemporary architecture of India's innovation policy, with particular emphasis on Startup India, the Atal Innovation Mission (AIM), the Production Linked Incentive (PLI) Scheme, the Startup India Seed Fund Scheme (SISFS), the intellectual property rights regime, the Anusandhan National Research Foundation (ANRF), and the National Quantum Mission (NQM). India's innovation performance has improved considerably during the last decade. The country ranked 38th among 139 economies in the Global Innovation Index (GII) 2025 and continued to be classified as an innovation overperformer relative to its level of economic development. At the same time, the country faces a structural challenge in research intensity: the GII 2025 reports India's R&D expenditure at approximately 0.65% of GDP. Thus, the central policy question is not merely how to generate more innovative ideas, but how to strengthen the complete innovation chain—from research and experimentation to intellectual-property protection, financing, commercialisation, manufacturing, and global diffusion. The paper identifies regional concentration, inadequate private R&D investment, limited university-industry collaboration, financing constraints for early-stage technology ventures, and uneven innovation infrastructure as continuing concerns. It concludes with policy suggestions aimed at strengthening research funding, decentralising innovation, improving

technology transfer, deepening industry-academia collaboration, and creating a more inclusive and globally competitive innovation ecosystem.

Keywords : Innovation policy, Global Innovation Index, Startup India, Atal Innovation Mission, Production Linked Incentive, intellectual property rights, ANRF, National Quantum Mission, research and development

Introduction :

Innovation is increasingly recognised as a fundamental source of long-term economic growth. It contributes not only to the development of new products and technologies but also to improvements in production processes, organisational practices, public services, and social welfare. For developing economies, innovation can facilitate structural transformation by enabling domestic enterprises to move towards higher productivity, greater value addition, and participation in global value chains.

Public policy becomes particularly significant because innovation is characterised by uncertainty, knowledge spillovers, and relatively long gestation periods. Private firms may therefore hesitate to invest sufficiently in basic research or technologies whose benefits are uncertain or widely shared. Government intervention can address such market failures through research funding, financial incentives, public procurement, infrastructure creation, incubation, intellectual-property protection, and regulatory reform.

India presents an important case in this regard. The country possesses a large scientific and technical talent base, a rapidly expanding digital economy, and an increasingly dynamic startup ecosystem. The Global Innovation Index 2025 placed India 38th among 139 economies (World Intellectual Property Organization [WIPO], 2025a). However, innovation performance cannot be assessed only through rankings or the number of startups. WIPO's 2025 profile places India at 52nd in innovation inputs but 32nd in innovation outputs, indicating relatively strong conversion of available inputs into outputs while also pointing to the need to strengthen the input side of the innovation system (WIPO, 2025b).

A particularly important concern is the relatively low intensity of national expenditure on research and development. WIPO reports India's R&D investment at around 0.65% of GDP in its 2025 assessment (WIPO, 2025a). Strengthening the volume, quality, and effectiveness of R&D expenditure therefore remains a central requirement for sustaining India's innovation trajectory.

Evolution of India's Innovation Policy :

India's innovation policy has evolved through several stages. During the early post-independence period, the emphasis was largely on building scientific institutions, public-sector enterprises, and indigenous technological capabilities. The objective was closely associated with self-reliance and

the development of domestic scientific and industrial capacity.

Economic liberalisation in the 1990s gradually altered the policy environment. Greater integration with international markets increased competition and created new opportunities for technology transfer, private investment, and entrepreneurship. The growth of information technology and knowledge-intensive services further demonstrated India's potential to compete in global markets through human capital and technological capability.

The policy environment has subsequently moved towards an ecosystem-based approach. Instead of treating innovation exclusively as the responsibility of government laboratories, contemporary policy increasingly seeks interaction among universities, research institutions, startups, investors, established companies, and government agencies.

Startup India Initiative :

The Startup India Initiative, launched in January 2016, represents a major policy intervention for developing India's entrepreneurial ecosystem. The initiative was designed to encourage innovation, facilitate investment, and create an enabling environment for startups.

According to the Government of India, more than 55,200 startups were officially recognised during FY 2025–26 alone. By 31 March 2026, the total number of recognised startups had crossed 2.23 lakh and these startups had generated more than 23.36 lakh direct jobs (Ministry of Commerce & Industry, 2026a).

These figures indicate the increasing economic importance of entrepreneurship. At the same time, the geographical distribution of recognised startups remains uneven, with major concentrations in regions possessing stronger financial, technological, and institutional infrastructure. This suggests that future startup policy needs to address not only aggregate growth but also wider geographical and social participation.

Startup India Seed Fund Scheme :

Access to early-stage capital is a major constraint for technology-oriented startups. The Startup India Seed Fund Scheme was created with an outlay of ₹945 crore to support proof-of-concept development, prototypes, product trials, market entry, and commercialisation (Startup India, 2021).

The policy significance of seed funding lies in its ability to reduce the initial risk associated with experimentation. Such interventions are particularly relevant for deep-tech and science-based startups, where product development may require substantial time and technical investment.

Atal Innovation Mission :

The Atal Innovation Mission (AIM), established under NITI Aayog in 2016, seeks to develop a culture of innovation and entrepreneurship across India. Its approach extends beyond financial

assistance by attempting to build innovation capabilities among students, entrepreneurs, incubators, and communities.

AIM's official figures indicate the establishment of 10,000 Atal Tinkering Labs, engagement of more than 1.1 crore students, 72 Atal Incubation Centres, and support to more than 3,500 startups. The initiative also reports more than 32,000 jobs created and a network of over 6,200 Mentors of Change (Atal Innovation Mission, 2024).

Atal Tinkering Labs are particularly relevant from an educational perspective because they encourage experimentation, design thinking, problem-solving, and hands-on learning. They can help shift the educational culture from memorisation towards inquiry and creation.

Production Linked Incentive Scheme :

The Production Linked Incentive (PLI) Scheme represents another important dimension of India's innovation strategy. Introduced across 14 strategic sectors, the scheme links incentives to incremental production and sales, thereby attempting to encourage investment, scale, technological adoption, and domestic manufacturing.

As of 31 December 2025, official government data indicated cumulative investments exceeding Rs. 2.16 lakh crore, production and sales exceeding Rs. 20.41 lakh crore, and employment generation of more than 14.39 lakh persons across the 14 sectors (Ministry of Commerce & Industry, 2026b). The PLI approach is important because innovation requires not only invention but also the capacity to manufacture, scale, and commercialise technologies. A strong manufacturing base can provide domestic firms with opportunities to move from product assembly towards component development, process innovation, and higher domestic value addition.

The long-term effectiveness of production-linked incentives should nevertheless be evaluated through sustained productivity, technological capability, domestic value addition, export competitiveness, and innovation outcomes rather than investment and production numbers alone.

Intellectual Property Rights and Innovation :

An effective intellectual-property regime is a fundamental component of an innovation ecosystem. Inventors and firms are more likely to invest in research when they have reasonable mechanisms for protecting and commercialising their intellectual creations.

India's National Intellectual Property Rights Policy, 2016, recognised intellectual property as an economic asset and emphasised awareness, protection mechanisms, and commercial utilisation of intellectual property (Department for Promotion of Industry and Internal Trade [DPIIT], 2016).

The challenge is therefore not simply the existence of IPR legislation. Effective innovation policy requires a complete pathway from invention to patenting, technology transfer, licensing, and

commercialisation.

Universities and publicly funded research institutions can play a larger role in this process. Technology-transfer offices, patent-support cells, and industry liaison mechanisms can help researchers understand and develop the commercial potential of their discoveries.

Anusandhan National Research Foundation :

The establishment of the Anusandhan National Research Foundation (ANRF) represents an important development in India's research policy. The framework is intended to strengthen research and innovation across universities, colleges, research institutions, and laboratories while encouraging collaboration among academia, industry, and government.

The Department of Science and Technology has described an overall budget of Rs. 50,000 crore over five years for ANRF, with an emphasis on mobilising non-government sources and increasing private-sector participation in R&D (Department of Science and Technology [DST], 2023a).

The significance of ANRF lies particularly in addressing fragmentation within the research system. Universities may face limited research infrastructure, while industry may have insufficient incentives to undertake long-term research. A stronger mechanism for competitive research funding and collaborative projects can help bridge this divide.

National Quantum Mission and Deep Technology :

The future of innovation increasingly depends upon emerging technologies such as quantum computing, quantum communication, artificial intelligence, advanced materials, and biotechnology. Public policy has an important role in these areas because risks are high, development periods are long, and initial infrastructure costs can be substantial.

The National Quantum Mission (NQM), approved in April 2023 with a total outlay of ₹6,003.65 crore for 2023–24 to 2030–31, seeks to promote scientific and industrial R&D and build an innovation ecosystem around quantum technologies (DST, 2023b).

The mission covers quantum computing, quantum communication, quantum sensing and metrology, and quantum materials and devices. It also envisages collaboration among academia, R&D laboratories, and industry through thematic technology hubs (DST, 2023b).

India's Innovation Ecosystem: Emerging Strengths :

The available evidence suggests that India's innovation ecosystem possesses several significant strengths. First, India has a large scientific and technical talent base. Second, the startup ecosystem has expanded considerably. Third, digital infrastructure has created opportunities for new business models and technology-enabled public services. Fourth, policy interventions have increasingly connected education, research, entrepreneurship, and manufacturing.

The GII 2025 indicates that India's stronger areas include knowledge and technology outputs, where it ranked 22nd, and market sophistication, where it ranked 38th. At the same time, the comparatively lower performance in areas such as business sophistication, infrastructure, and institutions indicates areas requiring continued policy attention (WIPO, 2025b).

Major Challenges :

Low R&D Intensity :

India's R&D expenditure remains relatively low in relation to the scale of its economy. WIPO's 2025 assessment places the figure at around 0.65% of GDP (WIPO, 2025a). Increasing expenditure is important, but equally important is ensuring that additional resources produce measurable research, technological, and social outcomes.

Limited Private-Sector R&D :

Private industry has a critical role in transforming research into commercially viable products. Greater private-sector participation is therefore necessary, particularly in deep technology, advanced manufacturing, and applied research.

Weak University–Industry Linkages :

India has a large higher-education system, yet mechanisms for sustained collaboration between universities and industry remain uneven. Joint research laboratories, technology-transfer offices, industry-funded chairs, and collaborative doctoral programmes can strengthen these linkages.

Regional Concentration :

Innovation infrastructure and startup activity are concentrated in a relatively small number of states and metropolitan centres. This creates a risk of widening regional disparities. Innovation policy should therefore encourage incubators, research facilities, and technology-based enterprises in Tier-II and Tier-III cities.

Financing Gap for Deep-Tech Startups :

Traditional startup finance often prefers relatively short development cycles. Deep-tech enterprises, however, may require several years of research and product development before generating revenue. Public seed capital, patient capital, and blended financing mechanisms can therefore be important.

Commercialisation of Research :

The conversion of scientific discoveries into marketable products remains a critical challenge. Patent ownership alone does not constitute innovation unless intellectual property is effectively utilised, licensed, or commercialised.

Human Capital and Research Culture :

Innovation requires more than technical skills. Creativity, interdisciplinary thinking, risk-taking, experimentation, and problem-solving must become integral components of education and research.

Policy Recommendations :

India should gradually increase public and private R&D expenditure, with special attention to basic science, frontier technologies, and mission-oriented research.

Mechanisms should be developed to increase private-sector participation in R&D through competitive grants, co-funded research programmes, and industry-academia consortia.

University innovation ecosystems should be strengthened through incubation, intellectual-property support, technology transfer, and industry collaboration.

Innovation policy should be decentralised so that Tier-II and Tier-III cities, aspirational districts, and economically less-developed regions receive targeted support for incubators, laboratories, maker spaces, and entrepreneurship programmes.

Financing mechanisms should recognise the different requirements of conventional startups and deep-tech ventures. Longer-duration patient capital is particularly important for technologies with substantial research and development cycles.

Government procurement can become a stronger instrument for innovation by providing appropriately designed opportunities for innovative domestic enterprises to test and demonstrate technologies while maintaining transparency and competitive standards.

Intellectual-property awareness should be expanded among students, faculty, researchers, MSMEs, and startups, and patent facilitation and technology-transfer systems should become more accessible.

Innovation indicators should go beyond counting startups, patents, or expenditure and should also consider survival rates, productivity, technology adoption, domestic value addition, export performance, employment quality, and social impact.

School and higher-education curricula should give greater emphasis to design thinking, experimentation, interdisciplinary learning, and entrepreneurship.

Emerging-technology missions such as the National Quantum Mission should be linked more closely with startups, universities, public laboratories, and industry so that research outputs have pathways towards practical deployment.

Discussion :

The Indian experience demonstrates that public policy can influence innovation through multiple channels. Startup policy affects entrepreneurship and financing; AIM affects the development of

innovation capabilities; PLI affects manufacturing and technology adoption; IPR policy provides institutional protection; ANRF addresses the research ecosystem; and NQM focuses on frontier technologies.

These interventions should not be viewed as independent programmes. Innovation is an interconnected process. A student may develop an idea through an innovation laboratory, receive incubation support, obtain seed funding, develop intellectual property, collaborate with a university laboratory, access manufacturing support, and eventually enter domestic or international markets. Policy effectiveness therefore depends upon the connections among these stages.

The evidence from the GII 2025 is particularly relevant. India's output ranking of 32nd is stronger than its input ranking of 52nd (WIPO, 2025b). This indicates considerable efficiency in converting available resources into innovation outputs, but it also suggests that expanding the quality and scale of innovation inputs could provide additional opportunities for future growth.

Consequently, the policy objective should not simply be to improve India's position in international rankings. The deeper objective should be to create an innovation system capable of continuously generating knowledge, translating knowledge into technology, converting technology into productive enterprises, and ensuring that the resulting benefits reach different sections and regions of society.

Conclusion :

India has moved from a predominantly state-led model of scientific and technological development towards a more diversified innovation ecosystem involving government, universities, research institutions, startups, investors, and industry. Programmes such as Startup India, Atal Innovation Mission, and PLI have expanded the entrepreneurial and manufacturing dimensions of innovation policy, while the National IPR Policy, ANRF, and National Quantum Mission address intellectual property, research capacity, and frontier technologies.

The improvement in India's Global Innovation Index position to 38th in 2025 reflects substantial progress. WIPO also identifies India as a long-standing innovation overperformer relative to its level of economic development (WIPO, 2025a). Nevertheless, the relatively low level of R&D investment, uneven infrastructure, limited university-industry interaction, and regional concentration of innovation activity remain important structural issues.

The next stage of India's innovation journey therefore requires a shift from simply expanding programmes to strengthening linkages among them. Research funding must connect with commercialisation; universities must connect with industry; startups must connect with patient capital; intellectual property must connect with markets; and innovation infrastructure must reach regions

beyond established metropolitan hubs.

Public policy will remain indispensable, but its role should increasingly be that of an ecosystem builder—reducing barriers, sharing risks, enabling collaboration, and creating conditions in which researchers, entrepreneurs, and enterprises can experiment, scale, and compete globally.

India's future innovation capacity will ultimately depend not only on the number of ideas generated but on the country's ability to transform those ideas into technologies, enterprises, productive employment, and solutions to social and economic challenges. A coherent, inclusive, and evidence-based public policy framework can therefore become one of the principal foundations for India's transition towards a knowledge-driven and innovation-oriented economy.

References :

- Atal Innovation Mission. (2024). 'Atal Innovation Mission : Impact and initiatives'. NITI Aayog, Government of India.
- Department for Promotion of Industry and Internal Trade. (2016). 'National intellectual property rights policy'. Government of India.
- Department of Science and Technology. (2023a). 'Anusandhan National Research Foundation'. Government of India.
- Department of Science and Technology. (2023b). 'National Quantum Mission'. Government of India.
- Ministry of Commerce & Industry. (2026a, April 17). 'Government recognizes more than 55,200 startups during FY 2025–26, highest ever in a single year since launch of Startup India initiative'. Press Information Bureau, Government of India.
- Ministry of Commerce & Industry. (2026b, February 20). 'Production Linked Incentive Scheme with Rs. 1.91 lakh crore outlay drives strong industry participation across 14 strategic sectors'. Press Information Bureau, Government of India.
- Startup India. (2021). 'Startup India Seed Fund Scheme'. Department for Promotion of Industry and Internal Trade, Government of India.
- World Intellectual Property Organization. (2025a). 'Global Innovation Index 2025 : India ranking'. WIPO.
- World Intellectual Property Organization. (2025b). 'Global Innovation Index 2025: India economy profile'. WIPO.



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 188-194

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

मृदुला गर्ग एवं आशा प्रभात के उपन्यासों में स्त्री चेतना : तुलनात्मक अध्ययन

रश्मि प्रसाद

शोधार्थी, मगध विश्वविद्यालय, गया।

सारांश :

हिंदी उपन्यास में स्त्री का चित्रण लंबे समय तक परिवार, विवाह, मातृत्व और सामाजिक मर्यादाओं से जुड़ी भूमिकाओं के भीतर किया जाता रहा है। आधुनिक और समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री स्वयं अपने जीवन, इच्छाओं, संवेदनाओं और अस्तित्व को समझने वाली चेतन सत्ता के रूप में सामने आती है। इस परिवर्तन के साथ स्त्री के सामने केवल बाहरी सामाजिक बंधनों का प्रश्न नहीं रह जाता, बल्कि उसके मन के भीतर चलने वाले अंतर्द्वंद्व, आत्मसम्मान, देहबोध, प्रेम, दाम्पत्य, मातृत्व और स्वतंत्र पहचान के प्रश्न भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

मृदुला गर्ग और आशा प्रभात के उपन्यासों में स्त्री-चेतना का स्वर अलग-अलग परिस्थितियों में विकसित होता है। मृदुला गर्ग की स्त्रियाँ सामाजिक रूढ़ियों, दाम्पत्य संबंधों, प्रेम और देह से जुड़े प्रश्नों को अपेक्षाकृत मुखर ढंग से सामने रखती हैं। वे अपने जीवन के निर्णयों को स्वयं समझने और निर्धारित करने की कोशिश करती हैं। इसके विपरीत आशा प्रभात की स्त्रियाँ परिवार, सामाजिक अपेक्षाओं और संबंधों के बीच रहते हुए अपनी अस्मिता की तलाश करती हैं। उनके प्रतिरोध में मौन, धैर्य, संवेदना और आत्मसम्मान की भूमिका दिखाई देती है।

आशा प्रभात के 'जाने कितने मोड़' की लता, 'मैं जनक नंदिनी' की सीता और 'मैं और वह' की मुक्ता के माध्यम से स्त्री के वस्तुकरण, अस्मिता, सम्मान, प्रेम, मातृत्व और स्वतंत्र अस्तित्व के प्रश्न सामने आते हैं। वहीं मृदुला गर्ग के 'उसके हिस्से की धूप', 'चित्तकोबरा', 'मैं और मैं' तथा 'कठगुलाब' आदि उपन्यासों में स्त्री के आत्मबोध और संबंधों के भीतर उसकी स्वतंत्र सत्ता के प्रश्न को देखा जा सकता है।

प्रस्तुत आलेख में दोनों लेखिकाओं के स्त्री-पात्रों को किसी एक निश्चित साँचे में बाँधने के बजाय उनकी परिस्थितियों, मानसिक संघर्षों और प्रतिरोध के अलग-अलग रूपों को समझने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द : स्त्री चेतना, स्त्री अस्मिता, आत्मबोध, आत्मसम्मान, प्रतिरोध, देहबोध, दाम्पत्य, मातृत्व, मृदुला गर्ग, आशा प्रभात।

1. भूमिका :

साहित्य समाज का केवल बाहरी प्रतिबिंब नहीं होता, बल्कि वह मनुष्य के भीतर घटने वाली प्रक्रियाओं

को भी अभिव्यक्त करता है। स्त्री के संदर्भ में यह बात विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसके जीवन की अनेक स्थितियाँ ऐसी रही हैं जिन्हें सामाजिक व्यवस्था ने सामान्य मानकर स्वीकार किया, जबकि स्त्री के व्यक्तिगत अनुभव और मन की पीड़ा उन स्थितियों को अलग अर्थ देते हैं।

परंपरागत व्यवस्था में स्त्री से त्याग, सहनशीलता, समर्पण और पारिवारिक दायित्व निभाने की अपेक्षा की जाती रही है। उसे परिवार की प्रतिष्ठा और संबंधों की निरंतरता से जोड़कर देखा गया। ऐसी स्थिति में उसका अपना व्यक्तित्व कई बार उसके संबंधों के पीछे छिप गया। आधुनिक स्त्री-चेतना इसी स्थिति पर प्रश्न खड़ा करती है।

स्त्री के सामने यह प्रश्न धीरे-धीरे अधिक स्पष्ट हुआ कि वह केवल किसी की बेटी, पत्नी, बहू या माँ नहीं है। इन संबंधों के अतिरिक्त भी उसका अपना एक व्यक्तित्व है, जिसकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, असहमतियाँ और निर्णय महत्वपूर्ण हैं। यही बोध स्त्री-अस्मिता की ओर ले जाता है।

मृदुला गर्ग और आशा प्रभात का कथा-साहित्य इसी बदलती हुई स्त्री-दृष्टि को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। दोनों लेखिकाओं के यहाँ स्त्री केवल परिस्थितियों को सहन करने वाली पात्र नहीं है। वह अपने अनुभवों पर विचार करती है और किसी न किसी स्तर पर अपने अस्तित्व की पहचान की ओर बढ़ती है।

2. स्त्री चेतना : अर्थ और स्वरूप :

स्त्री चेतना को केवल पुरुष-विरोधी दृष्टिकोण के रूप में समझना उचित नहीं होगा। इसका मूल संबंध स्त्री के अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होने से है। जब स्त्री यह प्रश्न करती है कि उसके जीवन का निर्णय कौन करेगा, उसके सुख-दुःख का मूल्य क्या है और क्या उसे अपने जीवन के बारे में स्वयं निर्णय लेने का अधिकार है, तब स्त्री चेतना सक्रिय होती है।

स्त्री चेतना के कई स्तर हैं— आत्मबोध, अस्मिता-बोध, आत्म सम्मान, निर्णय की स्वतंत्रता, देहबोध, प्रतिरोध तथा आर्थिक एवं मानसिक स्वतंत्रता। इस दृष्टि से स्त्री चेतना बाहरी परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ भीतर के परिवर्तन की प्रक्रिया भी है।

3. मृदुला गर्ग के उपन्यासों में स्त्री चेतना :

मृदुला गर्ग का कथा-साहित्य स्त्री के जीवन को परंपरागत आदर्शों की सीमाओं में रखकर देखने के बजाय उसके जटिल अनुभवों को सामने लाता है। उनकी स्त्रियाँ अपने जीवन में घटने वाली घटनाओं को केवल स्वीकार नहीं करतीं, बल्कि उनके अर्थ पर विचार भी करती हैं।

‘उसके हिस्से की धूप’, ‘चित्तकोबरा’, ‘मैं और मैं’ तथा ‘कठगुलाब’ जैसे उपन्यासों में स्त्री के सामने प्रेम, दाम्पत्य, सामाजिक अपेक्षा, देह और स्वतंत्र व्यक्तित्व के प्रश्न अलग-अलग रूपों में आते हैं।

मृदुला गर्ग की स्त्री के लिए स्वतंत्रता का अर्थ केवल घर से बाहर निकलना नहीं है। वह यह भी जानना चाहती है कि अपने जीवन के बारे में निर्णय लेने का अधिकार उसके पास कितना है। इस प्रक्रिया में उसे समाज की नैतिक धारणाओं और अपने भीतर पैदा होने वाले अपराध-बोध दोनों से संघर्ष करना पड़ता है।

मृदुला गर्ग के यहाँ स्त्री का व्यक्तित्व उसके संबंधों से पूरी तरह समाप्त नहीं होता। वह पत्नी या प्रेमिका हो सकती है, लेकिन इन संबंधों के बाहर भी उसका एक स्वतंत्र मन है। यही स्वतंत्र मन स्त्री चेतना का आधार बनता है।

4. आशा प्रभात के उपन्यासों में स्त्री चेतना :

आशा प्रभात के उपन्यासों में स्त्री की स्थिति को परिवार और सामाजिक संबंधों के संदर्भ में समझना अधिक उपयोगी है। उनकी स्त्रियाँ अपने आसपास की व्यवस्था से जुड़ी हुई हैं। वे संबंधों को पूरी तरह नकारती नहीं हैं, लेकिन संबंधों के भीतर अपने अस्तित्व की कीमत भी पहचानने लगती हैं।

उनके पात्रों में संघर्ष कई बार भीतर ही भीतर चलता है। स्त्री बहुत कुछ सहती है, लेकिन सहनशीलता को उसकी अंतिम नियति मान लेना उचित नहीं है। उसके भीतर धीरे-धीरे प्रश्न पैदा होते हैं और वही प्रश्न उसके आत्मबोध का आधार बनते हैं।

5. 'जाने कितने मोड़' की लता : स्त्री के वस्तुकरण से अस्मिता तक :

'जाने कितने मोड़' की लता का चरित्र स्त्री के वस्तुकरण की गंभीर स्थिति को सामने लाता है। उसका जीवन उसकी अपनी इच्छा से निर्धारित नहीं होता। परिवार और सामाजिक व्यवस्था उसके जीवन को अपने हित के अनुसार व्यवस्थित करती है।

लता को ऐसे पुरुष के साथ विवाह के लिए बाध्य किया जाता है जिसकी संतान उत्पन्न करने की क्षमता नहीं है। विवाह के पीछे पाँच बीघा जमीन का संदर्भ आता है। इस स्थिति में विवाह दो मनुष्यों का समान संबंध न रहकर सामाजिक और आर्थिक लेन-देन में बदल जाता है।

यहाँ सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इस पूरे निर्णय में लता की इच्छा कहाँ है?

जब उसके जीवन और मातृत्व का उपयोग परिवार के हित में किया जाता है, तब समाज की नैतिकता मौन रहती है। लेकिन जब लता अपने सुख और अपनी भावनात्मक आवश्यकता के बारे में सोचती है, तब उसके चरित्र पर प्रश्न उठने लगते हैं।

उसके भीतर उठने वाला प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है— "आखिर मैं कौन हूँ? मैं क्यों हूँ? इस दुनिया में मेरा स्थान क्या है?"

यह प्रश्न लता के आत्मबोध का केंद्र है। वह महसूस करती है कि उसने जीवन में अनेक लोगों के लिए त्याग किया है। उसने माता-पिता की गरीबी को सहा, पति की असमर्थता को स्वीकार किया और परिवार की प्रतिष्ठा तथा वंश-वृद्धि के लिए स्वयं को समर्पित किया। लेकिन उसके अपने मन की आवश्यकता पर किसी ने विचार नहीं किया।

यहीं से लता अपने जीवन को एक नए स्तर पर देखना शुरू करती है। उसे यह समझ में आता है कि स्त्री होना दूसरों के लिए लगातार त्याग करते रहना नहीं है। स्त्री को भी प्रेम, सम्मान और भावनात्मक सहारे की आवश्यकता होती है।

6. 'मैं जनक नंदिनी' की सीता : सम्मान और निर्णय की चेतना :

आशा प्रभात की 'मैं जनक नंदिनी' की सीता पारंपरिक मिथकीय पात्र होते हुए भी आधुनिक स्त्री-अस्मिता के प्रश्नों को सामने लाती हैं।

अशोक वाटिका में हनुमान उन्हें अपने साथ ले जाने का प्रस्ताव देते हैं। सीता उस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करतीं। उनका निर्णय परिस्थितियों की गंभीर समझ और अपने सम्मान के प्रति सजगता से जुड़ा है।

'राम के दर्शन की लालसा मुझे भी व्यग्र रही है वत्स, किंतु अभी तुम्हारे साथ मेरा चोरी से जाना

युक्तिसंगत नहीं होगा...।'

सीता का निर्णय केवल राम से मिलने की इच्छा से संबंधित नहीं है। वह चाहती हैं कि जिस व्यक्ति ने उनका अपहरण करके उनकी अस्मिता को चुनौती दी है, उसके अन्याय का उचित अंत हो।

‘मेरा अपहरण कर मेरी अस्मिता को अपमानित करने वाले रावण का जब विनाश कर राम सम्मानपूर्वक मुझे यहाँ से ले जायेंगे...’।

बाद में उनका वन में रहना, लव-कुश का पालन-पोषण करना और अंततः अयोध्या वापस न लौटना प्रतिरोध का दूसरा रूप प्रस्तुत करता है। यह प्रतिरोध ऊँचे स्वर में व्यक्त नहीं होता, यह एक निर्णय है जिसमें स्त्री अपनी गरिमा को सामाजिक स्वीकृति से ऊपर रखती है।

7. ‘मैं और वह’ की मुक्ता : संबंध से स्वतंत्र व्यक्तित्व तक :

‘मैं और वह’ की मुक्ता के जीवन में प्रेम और संबंध के माध्यम से स्त्री-अस्मिता का प्रश्न सामने आता है। जब मीनो उससे दूर होने लगता है और वह चिंता के कारण उसके घर पहुँचती है, तब उसके सामने संबंध की वास्तविकता का एक दूसरा पक्ष खुलता है।

‘तुम इतनी परेशान क्यों हो, मेरी जान, तुम्हें क्या लगा कि मैं तुम्हें छोड़ दूंगा?’

मुक्ता को अपने स्थान का बोध होने लगता है और उसके भीतर गहरी बेचैनी पैदा होती है—

‘मैं उसकी पत्नी नहीं हूँ, उसकी पहचान नहीं हूँ... मैं महज उसके आनंद का एक साधन हूँ...’।

यहीं मुक्ता के भीतर परिवर्तन आरंभ होता है। वह अपने अस्तित्व को केवल पत्नी या प्रेमिका की भूमिका में स्वीकार नहीं करना चाहती। उसका व्यक्तित्व इससे बड़ा है। वह माँ है, लेकिन केवल माँ भी नहीं है। वह स्वयं भी एक स्वतंत्र व्यक्ति है।

मुक्ता का अपने जीवन को नए ढंग से व्यवस्थित करने का निर्णय आत्मनिर्णय की ओर उसका कदम है।

8. स्त्री के प्रति सामाजिक दृष्टि और अस्मिता का प्रश्न :

समाज ने स्त्री को अनेक सम्मानजनक उपाधियाँ दी हैं। कभी उसे त्याग की मूर्ति कहा गया, कभी देवी, कभी माँ, कभी शक्ति। लेकिन समस्या तब उत्पन्न होती है जब इन संबोधनों के पीछे स्त्री का वास्तविक मनुष्य होना दिखाई देना बंद हो जाता है।

स्त्री को देवी कह देना उसके अधिकारों की गारंटी नहीं है। उसे महाशक्ति कह देना उसकी स्वतंत्रता का प्रमाण नहीं है। यदि उसके जीवन का निर्णय कोई और लेता है, तो सम्मानजनक संबोधन भी उसके अस्तित्व को स्वतंत्र नहीं बना सकते।

लता, सीता और मुक्ता के अनुभव इस विरोधाभास को अलग-अलग रूपों में सामने लाते हैं। स्त्री से त्याग की अपेक्षा की जाती है, लेकिन उसके त्याग को उसका अधिकार नहीं बनाया जा सकता। उससे प्रेम की अपेक्षा की जाती है, लेकिन उसके अपने प्रेम को गलत नहीं ठहराया जा सकता। उससे मातृत्व की अपेक्षा की जाती है, लेकिन उसके पूरे व्यक्तित्व को केवल मातृत्व में सीमित नहीं किया जा सकता।

9. प्रेम और दाम्पत्य : सुरक्षा या बंधन?

भारतीय सामाजिक संरचना में विवाह को स्त्री के जीवन की महत्वपूर्ण संस्था माना गया है। विवाह स्त्री को सामाजिक पहचान देता है, लेकिन जब इसी संस्था में उसकी इच्छा और निर्णय का कोई स्थान न रहे, तब

वही संस्था उसके लिए बंधन बन सकती है।

मृदुला गर्ग के यहाँ प्रेम और दाम्पत्य के भीतर स्त्री की इच्छाओं और मानसिक आवश्यकताओं पर प्रश्न उठते हैं। उनकी स्त्रियाँ यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि विवाह के बाद उनका व्यक्तिगत व्यक्तित्व समाप्त हो जाए।

आशा प्रभात के यहाँ यह प्रश्न अधिक जटिल सामाजिक संदर्भ में आता है। लता के विवाह का अनुभव बताता है कि विवाह यदि स्त्री की इच्छा और गरिमा से अलग हो जाए तो वह केवल सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने का माध्यम बन सकता है।

मुक्ता के माध्यम से यह प्रश्न और आगे बढ़ता है कि क्या किसी संबंध में होना ही स्त्री की पहचान है? दोनों लेखिकाओं के यहाँ संबंध महत्वपूर्ण हैं, लेकिन स्त्री की स्वतंत्र पहचान भी उतनी ही महत्वपूर्ण है।

10. देहबोध और स्त्री की स्वतंत्रता :

स्त्री की देह लंबे समय से सामाजिक नैतिकता और पुरुषवादी दृष्टि के नियंत्रण का क्षेत्र रही है। स्त्री की देह को उसके चरित्र, परिवार की प्रतिष्ठा और सामाजिक सम्मान से जोड़ दिया जाता है।

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में देह को स्त्री के अनुभव और आत्मबोध से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। स्त्री अपनी देह के संबंध में स्वयं क्या सोचती है, उसकी इच्छाओं और भावनाओं का क्या महत्व है— ये प्रश्न उनके कथा-संसार में महत्वपूर्ण हैं।

आशा प्रभात के यहाँ लता की स्थिति देह के सामाजिक उपयोग की समस्या को सामने लाती है। उसके शरीर और मातृत्व को परिवार की आवश्यकता के अनुसार देखा जाता है। यहाँ स्त्री की देह पर उसका अधिकार ही मूल प्रश्न बन जाता है।

इस प्रकार दोनों लेखिकाओं के यहाँ देहबोध अंततः स्वतंत्र व्यक्तित्व और आत्मसम्मान से जुड़ जाता है।

11. मातृत्व और स्त्री की पहचान :

भारतीय समाज में मातृत्व को स्त्री के जीवन की सर्वोच्च उपलब्धियों में से एक माना गया है। मातृत्व स्त्री के अनुभव का महत्वपूर्ण पक्ष है, लेकिन उसे स्त्री की संपूर्ण पहचान बना देना उसके व्यक्तित्व को सीमित कर देता है।

लता के संदर्भ में मातृत्व सामाजिक आवश्यकता के रूप में सामने आता है। उसके शरीर और मातृत्व का उपयोग वंश-वृद्धि के लिए किया जाता है।

मुक्ता मातृत्व को स्वीकार करती है, लेकिन उसके लिए मातृत्व स्वयं की पहचान को समाप्त करने का माध्यम नहीं है। वह माँ होने के साथ अपनी व्यक्तिगत पहचान भी बनाए रखना चाहती है।

सीता के जीवन में भी मातृत्व और आत्मसम्मान साथ-साथ उपस्थित हैं। वह लव-कुश का पालन करती हैं, लेकिन मातृत्व के कारण अपने आत्मसम्मान से समझौता नहीं करती।

इस प्रकार इन पात्रों में मातृत्व दायित्व है, लेकिन स्त्री की पूरी पहचान नहीं।

12. प्रतिरोध के विभिन्न रूप :

स्त्री का प्रतिरोध हर जगह एक जैसा नहीं होता। मृदुला गर्ग की स्त्रियों में प्रतिरोध अधिक स्पष्ट और मुखर दिखाई देता है। वे अपने संबंधों, इच्छाओं और सामाजिक मान्यताओं पर प्रश्न करती हैं।

आशा प्रभात की स्त्रियों में प्रतिरोध का स्वर कई बार शांत दिखाई देता है, लेकिन उसकी आंतरिक शक्ति कम नहीं होती। लता का अपने जीवन के अर्थ पर प्रश्न करना, सीता का परिस्थितियों के बीच स्वयं निर्णय लेना और मुक्ता का संबंधों से आगे अपनी पहचान की तलाश करना कृपे सभी प्रतिरोध के रूप हैं।

इसलिए प्रतिरोध को केवल विद्रोह के बाहरी प्रदर्शन से नहीं आँकना चाहिए। अपने लिए निर्णय लेना भी प्रतिरोध है। अन्यायपूर्ण स्थिति को पहचानना भी प्रतिरोध है। सामाजिक अपेक्षा के विरुद्ध आत्मसम्मान को चुनना भी प्रतिरोध है।

13. स्त्री का मनोजगत और अंतर्द्वंद्व :

स्त्री चेतना की वास्तविक गहराई उसके बाहरी संघर्ष से अधिक उसके मन के भीतर दिखाई देती है। लता जब स्वयं से पूछती है कि वह कौन है, तब उसके भीतर वर्षों से दबे प्रश्न सामने आते हैं। मुक्ता जब यह अनुभव करती है कि संबंध में उसकी स्वतंत्र पहचान नहीं है, तब उसका मानसिक संसार बदलने लगता है। सीता अपने निर्णयों में केवल बाहरी परिस्थितियों को नहीं देखती, बल्कि सम्मान और न्याय के प्रश्न पर भी विचार करती हैं।

मृदुला गर्ग की स्त्रियाँ भी अपनी इच्छाओं और सामाजिक मान्यताओं के बीच संघर्ष करती हैं। यह अंतर्द्वंद्व स्त्री को कमजोर नहीं बनाता, यही मानसिक प्रक्रिया उसके आत्मबोध को जन्म देती है।

14. मृदुला गर्ग और आशा प्रभात : तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य :

दोनों लेखिकाओं के स्त्री-चित्रण में समानता और भिन्नता दोनों दिखाई देती हैं।

मृदुला गर्ग की स्त्री अपने व्यक्तिगत अनुभवों को अधिक प्रत्यक्ष रूप में सामने रखती है। उसके लिए स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय महत्वपूर्ण हैं। वह सामाजिक नैतिकता को अंतिम सत्य मानने से इनकार करती है।

आशा प्रभात की स्त्री का संघर्ष पारिवारिक और सामाजिक संबंधों के भीतर अधिक दिखाई देता है। वह संबंधों से पूरी तरह बाहर निकलने के बजाय उनके भीतर अपने अस्तित्व को पहचानती है।

दोनों के यहाँ स्त्री के सामने मूल प्रश्न एक ही है—क्या वह अपने जीवन की स्वयं स्वामिनी हो सकती है? यहीं दोनों लेखिकाओं की स्त्री चेतना एक-दूसरे से जुड़ती है।

15. समकालीन संदर्भ में स्त्री चेतना :

आज शिक्षा, रोजगार, तकनीकी विकास और आर्थिक आत्मनिर्भरता ने स्त्री के जीवन में अनेक परिवर्तन किए हैं। स्त्री अपने निर्णयों में पहले की तुलना में अधिक सक्रिय है। फिर भी केवल आर्थिक स्वतंत्रता से स्त्री के सभी प्रश्न समाप्त नहीं हो जाते।

घर और काम के बीच संतुलन, विवाह और व्यक्तिगत स्वतंत्रता, बच्चों की जिम्मेदारी, संबंधों में बदलती अपेक्षाएँ तथा सामाजिक प्रतिष्ठा जैसे प्रश्न आज भी स्त्री के जीवन को प्रभावित करते हैं।

इसलिए आज स्त्री चेतना का अर्थ केवल घर की चारदीवारी से बाहर निकलना नहीं है। इसका संबंध मानसिक स्वतंत्रता, निर्णय की स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और अपनी पहचान को स्वीकार करने से भी है।

मृदुला गर्ग और आशा प्रभात के उपन्यासों की स्त्रियाँ इसी व्यापक परिवर्तन की साहित्यिक अभिव्यक्ति हैं।

16. निष्कर्ष :

मृदुला गर्ग और आशा प्रभात के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि समकालीन

हिंदी साहित्य में स्त्री अब केवल परिस्थितियों की शिकार पात्र नहीं रह गई है। वह अपने जीवन को समझने और उसके अर्थ को स्वयं निर्धारित करने वाली चेतन सत्ता के रूप में सामने आती है।

मृदुला गर्ग की स्त्रियाँ प्रेम, देह, दाम्पत्य और सामाजिक नैतिकताओं के संदर्भ में अपने अस्तित्व पर प्रश्न करती हैं। उनके यहाँ स्त्री की व्यक्तिगत इच्छा और आत्मनिर्णय विशेष महत्व रखते हैं।

आशा प्रभात की लता, सीता और मुक्ता अलग-अलग परिस्थितियों में स्त्री-अस्मिता की तलाश करती हैं। लता का संघर्ष उस सामाजिक व्यवस्था से है जो स्त्री को वस्तु की तरह इस्तेमाल करती है। सीता का संघर्ष सम्मान और निर्णय की स्वतंत्रता से जुड़ता है। मुक्ता संबंधों के भीतर अपने व्यक्तित्व को खो देने की स्थिति से निकलकर स्वयं को स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में पहचानना चाहती है।

इन स्त्रियों को केवल पीड़ित स्त्री के रूप में देखना उनके चरित्र की जटिलता को कम कर देना होगा। इनके भीतर पीड़ा के साथ प्रश्न है, प्रश्न के साथ आत्मबोध है और आत्मबोध के साथ निर्णय की क्षमता है।

स्त्री को समाज ने अनेक नाम दिएकृदेवी, त्यागमूर्ति, माँ, शक्ति और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति। लेकिन स्त्री चेतना का सबसे महत्वपूर्ण आग्रह यह है कि इन सभी पहचानों के पीछे उसका अपना मनुष्य होना भी स्वीकार किया जाए।

अतः मृदुला गर्ग और आशा प्रभात के उपन्यासों में स्त्री चेतना का केंद्रीय स्वर आत्मबोध, आत्मसम्मान, अस्मिता और स्वतंत्र अस्तित्व की खोज है। दोनों लेखिकाएँ अपनी-अपनी रचनात्मक दृष्टि से उस सामाजिक सोच को चुनौती देती हैं जिसमें स्त्री का मूल्य उसके संबंधों से निर्धारित किया जाता है। उनकी स्त्रियाँ यह स्थापित करती हैं कि स्त्री किसी की पहचान मात्र नहीं, बल्कि स्वयं एक पूर्ण मानवीय व्यक्तित्व है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. प्रभात, आशा — 'जाने कितने मोड़', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 2005, पृ. 1।
2. प्रभात, आशा — 'जाने कितने मोड़', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 2005, पृ. 138।
3. प्रभात, आशा — 'मैं जनक नंदिनी', राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2017, पृ. 178-179।
4. प्रभात, आशा — 'मैं और वह', राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2006, पृ. 112।
5. प्रभात, आशा — 'मैं और वह', राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2006, पृ. 115।
6. गर्ग, मृदुला — 'उसके हिस्से की धूप', राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 1987, पृ. 101।
7. गर्ग, मृदुला — 'चित्तकोबरा' राजकमल, प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली 2025, पृ. 115।
8. गर्ग, मृदुला — 'मैं और मैं' राजकमल, प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली 2014।
9. गर्ग, मृदुला — 'कठगुलाब' भारतीय ज्ञानपीठ, 2004।

ई-मेल : rashmiguptadk@gmail.com

मोबाइल 7903421385



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 195-198

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREEED PRINT RESEARCH JOURNAL

जीवन कौशल शिक्षा की विद्यार्थियों के जीवन में उपयोगिता

डॉ. (प्रो.) रीटा शर्मा, डीन, शिक्षा विभाग

यूनिवर्सिटी ऑफ राजस्थान।

सुरभि श्रीवास्तवा

शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय।

सारांश :

वर्तमान समय में शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्यार्थियों को विषयगत ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि उन्हें जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का प्रभावी ढंग से सामना करने में सक्षम बनाना भी है। इसी संदर्भ में जीवन कौशल शिक्षा का विशेष महत्व है। जीवन कौशल वे क्षमताएँ हैं जो व्यक्ति को दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं, चुनौतियों और सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावी ढंग से निपटने में सहायता करती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने जीवन कौशलों में निर्णय लेने, समस्या-समाधान, सृजनात्मक चिंतन, आलोचनात्मक चिंतन, प्रभावी संप्रेषण, पारस्परिक संबंध, आत्म-जागरूकता, सहानुभूति तथा भावनाओं और तनाव से निपटने जैसे कौशलों को महत्वपूर्ण माना है। विद्यार्थियों के संदर्भ में जीवन कौशल शिक्षा उनके आत्मविश्वास, सामाजिक समायोजन, निर्णय क्षमता, भावनात्मक संतुलन, समस्या-समाधान क्षमता तथा भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयारी को मजबूत करती है। प्रस्तुत शोध-लेख का उद्देश्य विद्यार्थियों के जीवन में जीवन कौशल शिक्षा की उपयोगिता को स्पष्ट करना तथा विद्यालयी एवं उच्च शिक्षा में इसके प्रभावी समावेशन की आवश्यकता पर प्रकाश डालना है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी अनेक प्रकार की शैक्षिक, सामाजिक, भावनात्मक और व्यक्तिगत चुनौतियों का सामना करते हैं। परीक्षा का दबाव, प्रतिस्पर्धा, भविष्य के करियर को लेकर चिंता, पारिवारिक अपेक्षाएँ, साथियों का प्रभाव तथा डिजिटल माध्यमों का बढ़ता उपयोग उनके जीवन को प्रभावित कर रहा है। ऐसी परिस्थितियों में केवल पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान विद्यार्थियों को सफल एवं संतुलित जीवन के लिए पर्याप्त तैयारी प्रदान नहीं करता। उन्हें यह सीखना भी आवश्यक है कि वे समस्याओं का विश्लेषण कैसे करें, उचित निर्णय कैसे लें, अपनी भावनाओं को कैसे नियंत्रित करें, दूसरों के साथ सकारात्मक संबंध कैसे स्थापित करें और कठिन परिस्थितियों में सकारात्मक दृष्टिकोण कैसे बनाए रखें। जीवन कौशल शिक्षा इसी आवश्यकता को पूरा करने वाली एक महत्वपूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया है।

जीवन कौशल शिक्षा का मूल उद्देश्य विद्यार्थियों में ऐसी व्यवहारात्मक एवं मनो-सामाजिक क्षमताओं का विकास करना है, जिनके माध्यम से वे दैनिक जीवन की परिस्थितियों का विवेकपूर्ण ढंग से सामना कर सकें।

यह शिक्षा विद्यार्थी को केवल 'क्या जानना है' तक सीमित नहीं रखती, बल्कि 'कैसे व्यवहार करना है' और 'किस परिस्थिति में क्या निर्णय लेना है' जैसे प्रश्नों के उत्तर खोजने में सक्षम बनाती है। उदाहरण के लिए, यदि विद्यार्थी में समस्या-समाधान का कौशल विकसित है, तो वह किसी कठिन परिस्थिति में घबराने के स्थान पर समस्या के कारणों को समझकर उसके संभावित समाधानों पर विचार कर सकता है। इसी प्रकार निर्णय लेने का कौशल उसे विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करके उचित विकल्प चुनने में सहायता करता है।

विद्यार्थियों के जीवन में आत्म-जागरूकता एक अत्यंत महत्वपूर्ण जीवन कौशल है। आत्म-जागरूकता के माध्यम से विद्यार्थी अपनी क्षमताओं, रुचियों, कमजोरियों, भावनाओं और आवश्यकताओं को समझने लगते हैं। इससे उनमें आत्मविश्वास का विकास होता है और वे अपनी क्षमताओं के अनुरूप लक्ष्य निर्धारित कर पाते हैं। आत्म-जागरूक विद्यार्थी दूसरों से अनावश्यक तुलना करने के बजाय अपनी प्रगति पर ध्यान केंद्रित कर सकता है। इस प्रकार आत्म-जागरूकता विद्यार्थी के व्यक्तित्व विकास और शैक्षिक प्रगति दोनों में सहायक होती है।

जीवन कौशल शिक्षा विद्यार्थियों में भावनात्मक संतुलन विकसित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। क्रोध, भय, निराशा, चिंता और असफलता जैसी भावनाएँ विद्यार्थी के व्यवहार और सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती हैं। भावनाओं को पहचानना और उन्हें उचित तरीके से व्यक्त करना सीखने से विद्यार्थी तनावपूर्ण परिस्थितियों में भी संतुलित व्यवहार कर सकता है। तनाव से निपटने का कौशल विद्यार्थियों को परीक्षा, प्रतियोगिता और व्यक्तिगत कठिनाइयों के समय सकारात्मक रणनीतियों का प्रयोग करने में सहायता करता है। इस प्रकार जीवन कौशल शिक्षा विद्यार्थियों के भावनात्मक विकास को मजबूत करती है।

प्रभावी संप्रेषण भी जीवन कौशल शिक्षा का एक प्रमुख घटक है। विद्यार्थी को अपनी बात स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के साथ-साथ दूसरों की बात ध्यानपूर्वक सुनना भी आना चाहिए। प्रभावी संप्रेषण के कारण विद्यार्थी शिक्षक, सहपाठियों, परिवार और समाज के अन्य सदस्यों के साथ बेहतर संबंध स्थापित कर सकता है। संवाद कौशल विकसित होने से गलतफहमियाँ कम होती हैं और सहयोग की भावना बढ़ती है। इसी प्रकार सहानुभूति का विकास विद्यार्थी को दूसरों की भावनाओं और समस्याओं को समझने में सहायता करता है तथा उसमें संवेदनशील और मानवीय दृष्टिकोण का विकास करता है।

जीवन कौशल शिक्षा विद्यार्थियों में आलोचनात्मक एवं सृजनात्मक चिंतन के विकास में भी सहायक है। आलोचनात्मक चिंतन के माध्यम से विद्यार्थी किसी सूचना या समस्या को बिना सोचे-समझे स्वीकार करने के बजाय उसके पक्ष-विपक्ष का विश्लेषण करना सीखता है। दूसरी ओर सृजनात्मक चिंतन उसे किसी समस्या के नए और वैकल्पिक समाधान खोजने के लिए प्रेरित करता है। वर्तमान डिजिटल युग में जहाँ विद्यार्थियों को प्रतिदिन बड़ी मात्रा में सूचनाएँ प्राप्त होती हैं, वहाँ इन दोनों कौशलों का महत्व और अधिक बढ़ गया है। ये कौशल विद्यार्थियों को सूचना का विवेकपूर्ण उपयोग करने और तर्कसंगत निर्णय लेने में सक्षम बनाते हैं।

जीवन कौशल शिक्षा सामाजिक समायोजन और पारस्परिक संबंधों को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। विद्यार्थी विद्यालय में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत पृष्ठभूमि वाले सहपाठियों के साथ रहते हैं। सहयोग, सहिष्णुता, सम्मान, सहानुभूति और संघर्ष-समाधान जैसे कौशल विद्यार्थियों को विविधताओं को स्वीकार करने तथा स्वस्थ सामाजिक संबंध स्थापित करने में सहायता करते हैं। समूह कार्य, भूमिका-अभिनय, चर्चा, परियोजना कार्य और सहकारी अधिगम जैसी गतिविधियों के माध्यम से इन कौशलों का

व्यावहारिक विकास किया जा सकता है।

जीवन कौशल शिक्षा का महत्व केवल विद्यालयी जीवन तक सीमित नहीं है। ये कौशल विद्यार्थी के व्यक्तिगत, सामाजिक, शैक्षिक और व्यावसायिक जीवन में लंबे समय तक उपयोगी रहते हैं। समय प्रबंधन, लक्ष्य निर्धारण, निर्णय लेने, समस्या-समाधान, प्रभावी संप्रेषण और तनाव प्रबंधन जैसे कौशल उच्च शिक्षा तथा भविष्य के कार्यक्षेत्र में भी सफलता के लिए आवश्यक हैं। इसलिए जीवन कौशल शिक्षा को अतिरिक्त गतिविधि के रूप में देखने के बजाय शिक्षा की मुख्य प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाना चाहिए।

जीवन कौशल शिक्षा के प्रभावी क्रियान्वयन में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षक को केवल व्याख्यान देने के बजाय ऐसी शिक्षण-अधिगम परिस्थितियाँ निर्मित करनी चाहिए जिनमें विद्यार्थी स्वयं अनुभव करके कौशल सीख सकें। चर्चा, केस स्टडी, भूमिका-अभिनय, समूह गतिविधियाँ, समस्या-आधारित अधिगम, परियोजना कार्य, खेल, वाद-विवाद तथा वास्तविक जीवन की परिस्थितियों पर आधारित गतिविधियाँ जीवन कौशल के विकास के प्रभावी माध्यम हो सकते हैं। शिक्षक का व्यवहार भी विद्यार्थियों के लिए आदर्श प्रस्तुत करता है, इसलिए शिक्षक में प्रभावी संप्रेषण, धैर्य, सहानुभूति और निष्पक्षता जैसे गुणों का होना आवश्यक है।

जीवन कौशल शिक्षा की उपयोगिता को समझने के लिए विभिन्न शोधों और शैक्षिक दृष्टिकोणों का अध्ययन किया गया है। उपलब्ध साहित्य से यह संकेत मिलता है कि जीवन कौशल आधारित कार्यक्रम विद्यार्थियों के आत्मविश्वास, सामाजिक व्यवहार, निर्णय क्षमता, समस्या-समाधान क्षमता और भावनात्मक दक्षता के विकास में सकारात्मक योगदान दे सकते हैं। हालांकि इसकी प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि कार्यक्रम कितनी नियमितता, उपयुक्त शिक्षण विधियों और प्रशिक्षित शिक्षकों के माध्यम से लागू किया जा रहा है। केवल पाठ्यक्रम में जीवन कौशल का उल्लेख कर देना पर्याप्त नहीं है, इसके लिए विद्यालयी वातावरण और शिक्षण प्रक्रिया दोनों में व्यवहारात्मक अवसर उपलब्ध कराना आवश्यक है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में भी विद्यार्थियों के समग्र विकास पर बढ़ता जोर जीवन कौशल शिक्षा की प्रासंगिकता को स्पष्ट करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा को ज्ञान के साथ-साथ कौशल, मूल्य, व्यक्तित्व विकास और समग्र क्षमता निर्माण से जोड़ने पर बल दिया गया है। इस दृष्टि से जीवन कौशल शिक्षा विद्यार्थियों को भविष्य की अनिश्चितताओं और बदलती सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के लिए तैयार करने का प्रभावी माध्यम बन सकती है। विद्यालय और महाविद्यालय यदि जीवन कौशल को नियमित शैक्षिक गतिविधियों के साथ जोड़ते हैं, तो विद्यार्थियों में केवल परीक्षा-केंद्रित उपलब्धि के स्थान पर जीवन-केंद्रित दक्षताओं का विकास किया जा सकता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि जीवन कौशल शिक्षा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की एक आवश्यक आवश्यकता है। यह विद्यार्थी को केवल अच्छा विद्यार्थी बनने में नहीं, बल्कि एक आत्मविश्वासी, जिम्मेदार, संवेदनशील, विवेकशील और सामाजिक रूप से सक्षम व्यक्ति बनने में सहायता करती है। जीवन कौशल शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थी अपनी समस्याओं का समाधान करने, उचित निर्णय लेने, भावनाओं को नियंत्रित करने, तनाव का सामना करने, दूसरों के साथ सकारात्मक संबंध बनाने और जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ सकता है। इसलिए विद्यालयों तथा उच्च शिक्षण संस्थानों में जीवन कौशल शिक्षा को व्यवस्थित, अनुभवात्मक और निरंतर प्रक्रिया के रूप में लागू किया जाना चाहिए।

निष्कर्षतः जीवन कौशल शिक्षा विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास का महत्वपूर्ण आधार है। वर्तमान समय में शिक्षा की सफलता का मूल्यांकन केवल परीक्षा परिणामों से नहीं किया जा सकता, बल्कि यह भी देखना आवश्यक है कि विद्यार्थी वास्तविक जीवन की परिस्थितियों का सामना करने में कितना सक्षम है। जीवन कौशल विद्यार्थी में ज्ञान को व्यवहार में बदलने की क्षमता विकसित करता है। इससे आत्मविश्वास, निर्णय क्षमता, समस्या-समाधान, भावनात्मक संतुलन, सामाजिक समायोजन और सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है। इसलिए जीवन कौशल शिक्षा को शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों में सम्मिलित करते हुए विद्यालयी और उच्च शिक्षा के स्तर पर व्यावहारिक रूप से लागू किया जाना समय की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

इस अध्ययन के आधार पर यह सुझाव दिया जा सकता है कि शिक्षण संस्थानों में जीवन कौशल आधारित गतिविधियों को नियमित पाठ्यक्रम से जोड़ा जाए, शिक्षकों को जीवन कौशल शिक्षा के लिए प्रशिक्षण दिया जाए, विद्यार्थियों के लिए संवाद एवं परामर्श के अवसर बढ़ाए जाएं तथा गतिविधि-आधारित एवं अनुभवात्मक शिक्षण को प्रोत्साहित किया जाए। साथ ही जीवन कौशल के विकास का मूल्यांकन केवल लिखित परीक्षा से न करके विद्यार्थी के व्यवहार, सहभागिता, निर्णय क्षमता, समस्या-समाधान और सामाजिक व्यवहार के आधार पर किया जाना अधिक प्रभावी होगा। इस प्रकार जीवन कौशल शिक्षा शिक्षा को वास्तविक जीवन से जोड़ते हुए विद्यार्थियों के उज्ज्वल, संतुलित और सफल भविष्य की आधारशिला रख सकती है।

संदर्भ सामग्री :

1. World Health Organization (1997), Life Skills Education for Children and Adolescents in Schools.
2. Ministry of Education, Government of India (2020), National Education Policy 2020; UNICEF, Life Skills and Citizenship Education.
3. UNESCO, Education for Sustainable Development and Life Skills.

జానపద సాహిత్యం - బాలానందం

డా.. జూరెడ్డి నిర్మల

తెలుగు అధ్యాపకురాలు, సెయింట్ జోసెఫ్ మహిళా కళాశాల, విశాఖపట్నం - 4.

తెలుగు భాషలో ప్రౌఢ సాహిత్యం ఉద్భవించడానికి ముందే జానపదులు దేశీయ కవిత్వం అల్లినట్లు సాహితీ విమర్శకులు చెబుతారు . ఎంతో ఉద్వేగపూరితంగా పాటలు తెలుగులో ఉన్నట్లు చరిత్ర చెబుతుంది . ఈ పాటలు, మాటలు జనంలోకి పోయి జానపద సాహిత్యంగా వర్ధిల్లింది. జానపదులు సమాజంలో జరిగిన కొన్ని సంఘటనల్ని, నిత్య జీవితానుభవాలను పాటలుగా పల్లెపదాలుగా మలచుకున్నారు . ఈ జానపద సాహిత్యం ప్రాచీనమైనది . నన్నయకు పూర్వమే వెలసిందంటే ఆశ్చర్యపడవలసినది లేదు . అనుసృతంగా వస్తూ , జనజీవనంలో కలసి పోయింది . ఒకరు పాడుతుంటే మరికొందరు వెనుక బృందగానం చేస్తారు . ఇంకా కొందరు వింటూ ఆనందిస్తారు . ఒకరి నోటి నుండి మరొకరికి ప్రాకిపోతూ వ్యాపించిపోయాయి . ఈ పాటలు సులభశైలిలో ఉంటాయి . జనం నాలుకలపై ఉండే పదాలు కాబట్టి సులువుగా పాడవచ్చును . కూని రాగాల్లో ఈ పాటలు పాడి మానసికంగా ఆనందించి అలసట తీర్చుకుంటారు జానపదులు .

సి.పి.బ్రౌన్ దృష్టి బాల సాహిత్యం వైపు సాగలేదు గానీ బాల సాహిత్యానికి దగ్గరి సంబంధం ఉన్న తాతాచారి కథలు సేకరించి కొన్నింటికి పీరికలు రాసి ఒక సంపుటిగా 1885లో బ్రౌన్ ఇంగ్లీషు తర్జుమాతో సహా అచ్చు వేశారు . 1900 లో ఏలూరుకు చెందిన నందిరాజు చలపతిరావు ప్రచురించిన స్త్రీల పాటలలో కొన్ని పిల్లల పాటలున్నాయి . 1905-06లో ఇండియన్ ఏంటిక్వేరీ భాగంలో కొన్ని బాలగేయాలు రోమన్ లిపిలో

ప్రచురించారు . తర్వాత బాలగేయాలు ప్రత్యేకంగా గ్రంథ రూపంలో ప్రచురించడం ప్రారంభమయింది . 1912 లో వేంకటపార్వతీశ్వర కవులు - బాటగీతావళి , 1916లో బి.వి. రంగయ్య- బాలికా భూషణము , 1924లో టేకుమళ్ళ అచ్యుతరావు ఆంధ్రపదములు - పాటలు , 1941లో టేకుమళ్ళ కామేశ్వరరావు-పాతపాటలు, 1941లో గొర్రెపాటి సుబ్బయ్య - నవ్వులు -పువ్వులు , 1949లో వేదుల సత్యనారాయణశర్మ - బాలల గ్రంథాలు ప్రచురింపబడ్డాయి. బాలసాహిత్యం గురించి వేటూరి ప్రభాకర శాస్త్రి ముగ్ధ మధురం వాఙ్మయం , హృద్యవచోవల్లరులమయం అన్నారు .

బాలానందం ; -

పిల్లల ఆటలలో పాటలు ; -

మరీ చిన్న పిల్లలు ఉత్సాహంగా ఒకరి పిడికిళ్ళ మీద మరొకరి పిడికిలి పెట్టి పైపిడికిలి మధ్య ఖాళీలో వేలు పెట్టి త్రిప్పుతూ “ గుడిగుడి గుంచం గుండారాగం ” అని పాటలు పాడుతూ భలే ముచ్చటగా మురిసిపోతూ పరవశిస్తుంటారు .

అలాగే పిల్లలందరూ ఒకరి ప్రక్క ఒకరు కూర్చోని కాళ్ళు బారజాపుకొని “ కాళ్ళ గజ్జీ కంకాళమ్మా ” పాటతో ఆ కాళ్ళను ఒకటొకటిగా పండించుకుంటూ ఆడుకుంటుంటారు ఆనందంగా . ఇందులో తమ కాళ్ళు ముందు పండాలనే తపన ఆ లేత హృదయాల్లో జీవతంలో అన్నింటా తాము ముందుండాలనే మనస్తత్వానికి బీజమేస్తుంది . పాటలో మరో అందమైన ఆట ఎవరో ఒకరి నెత్తి మీద వెనుక నుంచి ఒక చిన్న ఆకో , సాలిగూడో వారికి తెలియకుండా వేసి

“ ఒకమ్మగారి నెత్తి మీద గోరింక

చెప్పకు చెప్పకు చినపాప

చెబితే నీకళ్ళోతాయి ” అని వేసినవాళ్ళు పాడుతుంటే కూడా అందరూ పాడుతూ

వినోదిస్తుంటారు . అసలు మనిషి అది తెలిసికొని తీసివేసుకునే వరకూ

“ తప్పట్లోయ్ తాళాలోయ్

దేవుడి గుళ్ళో బాజాలోయ్

పప్పు బియ్యం దేవుడికోయ్

పాలూ నెయ్యి బాలుడికోయ్ ” అని పాట పాడుతూ అందరూ ఒకే మాత్రా వ్యవధిలో

చప్పట్లు కొల్లడం చిన్నప్పుడే తాళాన్ని నేర్చుతుంది .

చిన్నగా వానతుంపర వస్తుంటే పిల్లలు వీధుల్లో చేతులు బారజాపుకొని తమ చుట్టూ తాము

గిరగిరా తిరుగుతూ ఆహ్లాదంగా

“ వానావానా చెల్లప్పా,వాకిలి తిరుగు చెల్లప్పా

తిరుగూ తిరుగు చెల్లప్పా, తిరగాలేనూ చెల్లప్పా ”అంటూ పాడుతూ ఆ తిరగడంలో కళ్ళు తిరిగి గాలిలోకి తేలిపోతున్నట్టు చిత్రమైన అనుభూతిని పొందుతుంటారు . ఇలా తిరిగేటప్పుడు కొన్ని చోట్ల పిల్లలు

“ వానల్లా కురవాలి వానదేవుడా

వరిచేలూ పండాలి వానదేవుడా

గాదుల్లా నిండాలి వానదేవుడా

మా బొజ్జా నిండాలి వానదేవుడా ”.....అని వర్షాన్ని ఆహ్వానిస్తారు . బాలవాక్కు బ్రహ్మ వాక్కు గదా ! మరీ చిన్న పిల్లలు “ వానాలప్పా ,తిరగాలప్పా ” అంటూ గిర్రున తిరుగుతూ తేలిపోతున్న అనుభూతిని ఆస్వాదిస్తుంటారు . కొన్ని చోట్ల “ వానాచ్చే వరదాచ్చే బుడుగో బుడుగో ” అని పాడు తుంటారు .

“ కొక్కారోకోయని కోడి కూసింది

తెల్లవారింది కాకి అరిచింది

అమ్మ లెమ్మంది ఆడుకోమంది ”అనే పాట పిల్లలకు వేకువజామునే లేవాలనే ఒక మంచి అలవాటును అజాఞాతంగా ఉద్బోధిస్తుంది .

పిల్లలకు ఎవరిమీదనైనా కోపం వచ్చినప్పుడు ఆ మిత్రబృందమంతా జట్టుగా ఏర్పడి ఎదుటి వారి కులాల మీదా, వృత్తుల మీదా, పేర్ల మీదా ఇలా ఎద్దేవా చేస్తూ పాడతారు .

కోమటి మీద ; - “ కోమటి కోమటి కొత్తబెల్లం

కొంటే దబ్బు ఖర్చు , తింటే కడుపు నొప్పి ”

బ్రాహ్మడు మీద ; - “ బేమ్ముడు బేమ్ముడు బెడ్డుముక్క

చేల్లో పడితే చేపముక్క

ఒడ్డున పడితే గడ్డిమొక్క ”

కాపుల మీద ; - “ కాపులు కాపులు కయ్యాలూ

తెల్లారిలేస్తే దెయ్యాలు ” కాపులకు వారిలో వారికి పడదట .

ఉపాధ్యాయుని మీద కోపం వస్తే ; - “ మేష్టారు మేష్టారు మెట్టొంకాయ్

మేష్టారు పెళ్ళాం నీటొంకాయ్ ” అని పాడతారు .

మరీ ఘటికులైన కొంటె పిల్లలు దసరా పాటల్ని అనుకరిస్తూ ఇలా పాడతుంటారు .

“ గిలకల్ని పట్టుకొని ఎలకల్ని చంపి
మావూరు పంతులకు కూరొండి పెట్టి
దాక దగ్గరబెట్టి దవడూడగొట్టి
తాటాకు వెలిగించి తలక్రింద పెట్టి
అయ్యయ్యో పంతులా అయిపోయినావ
మాదొడ్డ పంతులా మాడిపోయేవా

జయాభిజయభవ దిగ్విజయభవ ” . ఇది “ ఏదయా మీదయా మామీద లేదా ”

అని దసరాల్లో బడిపిల్లలు పాడే గిలకల పద్యానికి పేరడీ . ఇది ఉపాధ్యాయుని మీద ఆ విద్యార్థికి గట్టిగా
కోపం వచ్చినప్పుడు ఆ కసిని ఇలా పాటలో తీర్చుకుంటాడు .

ఇక వదిన గారి మీద కోపం వస్తే ; - “ వదినా వదినా వల్లంగి పిట్ట

గదిలో పెట్టి గోడకేసి కొట్ట ” అనీ

నారాయణ పేరు గలవాని మీద కోపం వస్తే ; - “ నారాయణ నారాయణ నక్క తోక

నారాయణ పెళ్ళాం కుక్క తోక ” అనీ

ముసలితాత మీద ; - “ తాతా సీతా ఉల్లికోళ్ళుతా ”

అనే అనుప్రాసలతోనూ , అంత్యప్రాసలతోనూ అల్లుకు పోతుంటారు . ముసలి తాతను వెక్కిరిస్తూ మరో
పాట కూడా ఉంది .

“ కూకుంటే లేవలేవు

కూరాకు తెంపలేవు

తాతా నీకెందుకురా పెళ్ళాము ” అని .

సూర్యనారాయణ పేరు గల వానితో గాని , సూరమ్మ పేరు గల వానితో గాని విరోధము వస్తే

“ సూరీ సూరీ చుంచెలుక

మా యింటికొస్తే మంచెలుక ” అని పాడతారు . ఇందులో విరోధంలో క్రోధం కనిపిస్తున్నా
కలిసిపోదాం రమ్మనే ఆహ్వానం కూడా ఉంది .

పిల్లలు ఎవరినైనా అభినందించాలనుకుంటే ప్రాస క్రీడలతో మంచి మజాగా ఇలా అభినందిస్తారు.

“ రాజా నా రాజా

నా రాజ నిమ్మల పండు

అప్పారావు కొండ

నేతి మిఠాయుండ ” అని .

పిల్లలు వాళ్ళలో వాళ్ళు పందాలు వేసుకొని పరుగులెడుతుంటారు . ఆ పరుగులో ఎవరైనా పడిపోయినప్పుడు కాలికి దెబ్బ తగిలితే ఇలా పాడతారు కోరస్లా

“ కొండ మీద వెండిగిన్నె
కొక్కిరాయి కాలు విరిగె
దానీకేమి మందు
వేపాకు చేదు
వెల్లుల్లిగడ్డ
నూనమ్మ బొడ్డు
పొయ్యి పొయ్యి నూరి

పూటకొక్క తూరి ” అని ఇందులో దెబ్బకు మందేదో చెప్పబడింది .

పిట్టల్ని చూస్తే పిల్లల ఆనందం పట్టనలవి కాదు . పాటలు వాటికవే పొంగి పొర్లి వస్తాయి .

గువ్వ కనిపిస్తే ; - “ గువ్వా గూడెక్కె

రాజూ మేడెక్కె ” అని పాడతారు .

చిలుకను చూస్తే ; - “ చిలుక చిలుక రామచిలుక పలుకనన్నది

అత్త తెచ్చిన కొత్త కోక కట్టనన్నది

మామ తెచ్చిన మల్లెమొగ్గ ముడువనన్నది

మొగుడి చేత మొట్టికాయ తింటానన్నది ” అని పాడతారు .

కాకిని చూస్తే మగపిల్లలు ; - “ కాకీ కాకీ కడవల కాకీ

కాకిని తీసుకెళ్ళి గంగలో ముంచ

గంగా నాకూ గంధా మిచ్చే

గంధం తీసుకెళ్ళి అవుకు రాస్తే

ఆవూ నాకూ పాలు ఇచ్చే

పాలూ తీసుకెళ్ళి అమ్మా కిస్తే

అమ్మా నాకూ పాయసమిచ్చే

పాయసం తీసుకెళ్ళి మామా కిస్తే

మామా నాకూ పిల్లా నిచ్చే

పిల్లా పేరు మల్లె మొగ్గ

నా పేరు జమీందార్ ”.....అంటూ ఇలా తమ ఆధిక్యతని తామే పెంచుకుంటూ మంచి

హుషారుగా పాడతారు .

పిల్లలు ఒకరి పరోక్షంలో మరొకరు ఏమన్నా అంటే విన్న వారితో ఎవరైనా ఆ వ్యక్తికది చెప్పేస్తానంటే ఉక్రోషం వచ్చేసి కోపంతో

“ చెప్పుకో చెప్పుకో చెప్పుచుక్కొట్టుకో
మామిడాకు తెచ్చుకో మందేస్తాను
ఈతాకు తెచ్చుకో ఇల్లు కడతాను

తాటాకు తెచ్చుకో తగలేస్తాను ” అనే గేయ రూపంలో అదిరిస్తూ బెదిరిస్తాను .

సాయంత్రం సమయాల్లో చల్లబాటు వేళల్లోనూ , రాత్రి వెన్నెల్లోనూ చిన్న పిల్లల ఒకచేట చేరి వీధుల్లో తమ చుట్టూ తాము గిర్రున తిరుగుతూ కృష్ణుడి మీద

“ తారంగం తారంగం తాండవ కృష్ణ తారంగం

వేణునాథా తారంగం వెంకటరమణ తారంగం ” అనీ .

ఏనుగు మీద ; - “ ఏనుగొచ్చిందేనుగు , ఏవూరొచ్చిందేనుగు

మావూరొచ్చిందేనుగు , మంచినీళ్ళు తాగిందేనుగు ” అని,

రాముని మీద ; - “ ఏనుగు ఏనుగు నల్లన, ఏనుగు దంతం తెల్లన

ఏనుగు మీద రాముడూ , ఎంతో చక్కని దేవుడూ ” అనీ కోరన్ గా పాడుతంటారు .

అలాగే సీత మీద ; - “ సీతమ్మ వాకిటా సిరిమల్లె చెట్టు

సిరిమల్లె చెట్టేమొ విరగ పూసింది

చెట్టు కదలాకుండ కొమ్మ వంచండి

కొమ్మ విరగాకుండ పూలు కోయండి

కోసినా పూలన్ని సీతకివ్వండి

తీసుకో సీతమ్మా రాముడంపేడు

దొడ్డి గుమ్మంలోన దొంగలున్నారు

దాచుకో సీతమ్మ దాచుకోవమ్మ

దాచుకోకుంటేను దోచుకుంటారు ” అని పాడతారు వీనుల విందుగా , వీని

వల్ల ఆ చిన్న వయస్సులోనే గొంతులకు శృతి జ్ఞానం అలవడుతుంది .

ఆడపిల్లలు ఇద్దరు గాని , నలుగురు గాని ఎదురుబొదురుగా నిలిచి ఒకరి అరచేయి మరొకరి అరచేతికి తాకిస్తూ ... “ చెమ్మచెక్క చేరడేసి మొగ్గ

అట్ల పొయ్యంగ ఆరగించంగ ” అని పాడే పాటలో ఒక ఔషధ ప్రక్రియ ఉందట. రజస్వల కాని స్త్రీలకు చెమ్మచెట్టు చెక్కదాని పువ్వులు, మొగ్గ అట్లపిండితో రుబ్బి ఆ అట్లు ఆరగించుట మంచి ఔషధమట.

పల్లెలలో కన్నెపిల్లలు సంక్రాంతి రోజుల్లో వీధుల్లో గుమ్మం ముందు పేడతో గొబ్బిళ్ళు పెట్టి ,పసుపూ కుంకుమా బొట్టులు పెట్టి,బంతిపూలతో అలంకరించి తమ మనసులోని కోరికలు ముడివేసి ఇలా పాడతారు..... “ సుబ్బీ గొబ్బిమ్మా సుబ్బిణ్ణియ్యావే

తామరపువ్వుంటి తమ్ముణ్ణియ్యావే

చేమంతీపువ్వుంటి చెల్లెల్నియ్యావే

అరటిపువ్వుంటి అత్తానియ్యావే

మల్లెపువ్వుంటి మామానియ్యావే

బంతిపువ్వుంటి బావానియ్యావే

మొగలిపువ్వుంటి మొగుడూనియ్యావే ”

ఇలాగే వాళ్ళకు తెలిసినన్ని పండ్లచుట్ల పేర్లు కలుపుకుంటూ పాట పెంచుకుంటూపోతారు. ఇది పిల్లల్లో వృక్షశాస్త్ర విజ్ఞానాన్ని, భావుకతనూ, కవితాశక్తి ప్రోది చేస్తుంది .

పిల్లలందరూ రెండు జట్లుగా విడి వియ్యాలవారి ఆట ఆడుతుంటారు . సంభాషణాపరమైన పాటతో, అందులో ఒక జట్టు దూరంగా నిలుచున్న ఎదుటి జట్టు వారితో

“ చిన్నీ బిన్నీ నెల సింగలగోరీకెన్నో నెల

తాడీబీడీకెన్నో నెల తామరగిరి మొగ్గాలమ్మా మొగ్గలు ” అని మగపెళ్ళి వారి వలె ఒకరి భుజాల మీద ఒకరు చేతులు వేసి జట్టు కట్టుకుని, రెండవ జట్టువారి వద్దకు వెళ్ళి ప్రశ్నించి వెనక్కి వెళతారు. అప్పుడు రెండవ జట్టువారు ఆడపెళ్ళివారి వలె మొదటి జట్టు దగ్గరకు వెళ్ళి

“ చిన్నీ బిన్నీకి ఎన్నో ఒకటో నెల సింగలగోంకి ఒకటో నెల

తాడీబీడీకి ఒకటోనెల తామరగిరి మొగ్గాలమ్మా మొగ్గలు ” అని పాడుతూ జవాబు చెబుతారు. ఇలాగ అమ్మాయికి 16 ఏళ్ళు వచ్చే వరకూ పాడి, పెళ్ళి నిశ్చయం చేసి బొమ్మల పెళ్ళిళ్ళు చేస్తారు. అట్లతద్దినాడు వేకువజామున పిల్లలు జట్లుజట్లుగా తిరుగుతూ

“ అట్లతద్దోయ్ ఆరట్లోయ్

ముద్దపప్పోయ్ మూడట్లోయ్ ” అంటూ ఊరంతటిని నిద్ర లేపుతారు మేలుకొలుపు పాటగా .

శిష్ట సాహిత్యపు బీజాలు భూమిపై పడక ముందే ప్రపంచంలో జానపద సాహిత్యం వెలిసిందనేది అందరికీ తెలిసిన విషయమే . జానపద సాహిత్యంలో పిల్లల మానసిక ఉల్లాసాన్ని పెంపొందించే పాటలు కోకొల్లలు . అవన్నీ నేటి మరియు భవిష్యత్తు తరానికి నిధి . రేపటి బాలబాలికలకు అందించవలసిన బాధ్యత మనందరిపై ఉంది.

ఆధార గ్రంథాలు ; - 1. హరిఆదిశేషువు-జానపద గేయ వాఙ్మయ పరియము.

2. నేదునూరి గంగాధరం- జానపద రత్నావళి,



संगम

Impact Factor : 7.834

Website :
www.ginajournal.com

ISSN : 2321-8037

SANGAM

Vol. 14, Issue 9-10

पृष्ठ : 206-212

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक-बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL

समाज में महिलाओं की स्थिति : सशक्तिकरण, विकास और परंपरागत मूल्यों के बीच संतुलन का विश्लेषण

शुभा रमोला, शोधार्थी
डॉ. रीना अग्रवाल, शोध निर्देशक,

सारांश :

भारतीय समाज में महिलाओं की सामाजिक स्थिति समय के साथ शिक्षा, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, राजनीति और सामाजिक परिवर्तन से प्रभावित होती रही है। पारंपरिक व्यवस्था में महिलाओं की जिम्मेदारियाँ प्रायः परिवार, घरेलू दायित्वों तथा सांस्कृतिक परंपराओं के निर्वहन से जुड़ी थीं। वर्तमान संदर्भ में शिक्षा, रोजगार, आय अर्जन और निर्णय-निर्माण के क्षेत्रों में उनकी भागीदारी पहले की अपेक्षा व्यापक हुई है। फिर भी सशक्तिकरण का अर्थ केवल आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करना नहीं है। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, अधिकारों की समझ, संसाधनों तक पहुँच, सामाजिक सम्मान और अपने जीवन से जुड़े निर्णयों पर प्रभाव भी शामिल हैं।

इस अध्ययन का केंद्र भारतीय समाज में महिलाओं की बदलती स्थिति तथा सशक्तिकरण, विकास और परंपरागत मूल्यों के बीच संबंध को समझना है। शोध द्वितीयक स्रोतों पर आधारित वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक अध्ययन है। सरकारी रिपोर्टें, नीतिगत दस्तावेजों और संबंधित अकादमिक साहित्य के आधार पर विषय का विश्लेषण किया गया है। उपलब्ध सूचनाएँ बताती हैं कि महिलाओं की आर्थिक भागीदारी के अवसर बढ़े हैं, लेकिन अवैतनिक घरेलू कार्य का असमान बोझ, लैंगिक रुढ़ियाँ, रोजगार संबंधी अंतर और निर्णय लेने में असमानता अभी भी बनी हुई है। इसलिए विकास के नए अवसरों और सामाजिक मूल्यों के बीच ऐसा सामंजस्य आवश्यक है जिसमें परंपरा महिलाओं की गरिमा, अधिकार और स्वायत्तता को सीमित न करे।

प्रमुख शब्द :

महिला सशक्तिकरण, महिला विकास, लैंगिक समानता, सामाजिक मूल्य, आधुनिकता, वैश्वीकरण, आर्थिक स्वावलंबन, सामाजिक परिवर्तन

1. प्रस्तावना एवं शोध की पृष्ठभूमि :

भारतीय सामाजिक जीवन का निर्माण परिवार, समुदाय, संस्कृति तथा पीढ़ियों से चली आ रही परंपराओं के आपसी संबंध से हुआ है। इस व्यवस्था में महिलाओं ने परिवार को संगठित रखने, बच्चों के पालन-पोषण, सामाजिक व्यवहार और सांस्कृतिक परंपराओं को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही, कुछ सामाजिक मान्यताओं ने महिलाओं की स्वतंत्रता, आवागमन और निर्णय लेने की क्षमता पर सीमाएँ भी लगाई हैं।

इसलिए महिलाओं की स्थिति का अध्ययन केवल पुराने और नए समय की तुलना तक सीमित नहीं रह सकता, इसके माध्यम से बदलते सामाजिक संबंधों और लैंगिक भूमिकाओं को भी समझा जा सकता है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान ने समानता, गरिमा और भेदभाव-विरोधी सिद्धांतों को आधार दिया। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, कानूनी संरक्षण और सामाजिक सुरक्षा से जुड़े कार्यक्रमों ने महिलाओं के लिए नए अवसर पैदा किए। आज महिलाएँ शिक्षा, प्रशासन, विज्ञान, तकनीक, उद्यमिता, राजनीति और विभिन्न पेशों में सक्रिय दिखाई देती हैं। इसके बावजूद किसी अवसर का उपलब्ध होना और उसका वास्तविक लाभ मिलना एक समान बात नहीं है।

इसी संदर्भ में महिला सशक्तिकरण को व्यापक रूप में देखना आवश्यक है। सशक्तिकरण तब अर्थपूर्ण होता है जब व्यक्ति उपलब्ध अवसरों का उपयोग करने की क्षमता तथा अपने निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता रखता हो। कबीर (1999) ने संसाधन, अभिकरण और उपलब्धियों के संबंध को सशक्तिकरण की समझ का आधार बनाया है। अतः महिला विकास में शिक्षा और रोजगार के साथ निर्णय क्षमता तथा सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन को भी महत्व देना आवश्यक है।

समकालीन भारत में महिलाओं की प्रगति को परंपरागत मूल्यों के साथ जोड़कर समझने की आवश्यकता है। परिवार, पारस्परिक सहयोग, सामुदायिक उत्तरदायित्व और सामाजिक एकजुटता जैसे मूल्य सहायक सामाजिक आधार दे सकते हैं। कठिनाई तब पैदा होती है जब परंपरा के नाम पर शिक्षा, रोजगार, संपत्ति, गतिशीलता या सार्वजनिक भागीदारी पर रोक लगाई जाती है। इसलिए लक्ष्य परंपरा को पूरी तरह समाप्त करना नहीं, बल्कि ऐसे मूल्यों की पुनर्व्याख्या करना होना चाहिए जो समानता और मानवीय गरिमा के अनुरूप हों।

1.1 अध्ययन के उद्देश्य :

- भारतीय समाज में महिलाओं की पारंपरिक भूमिकाओं और वर्तमान सामाजिक स्थिति की तुलना करते हुए विश्लेषण करना।
- महिला सशक्तिकरण की संकल्पना तथा उसके विभिन्न आयामों को समझना।
- शिक्षा, रोजगार और आर्थिक स्वावलंबन के संदर्भ में महिलाओं की भूमिका में आए परिवर्तनों का अध्ययन करना।
- वैश्वीकरण तथा आधुनिकीकरण से महिला सशक्तिकरण पर पड़ने वाले प्रभावों का विवेचन करना।
- परंपरागत सामाजिक मूल्यों और महिला सशक्तिकरण के बीच संबंध तथा उनसे जुड़ी प्रमुख चुनौतियों की पहचान करना।
- आधुनिक विकास और सकारात्मक सामाजिक मूल्यों के सह-अस्तित्व की संभावनाओं का विश्लेषण करना।

1.2 शोध पद्धति :

यह शोध द्वितीयक सामग्री पर आधारित वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का अध्ययन है। अध्ययन के लिए भारत सरकार के सांख्यिकीय आँकड़ों और नीतिगत दस्तावेजों, शिक्षा तथा श्रम से संबंधित आधिकारिक रिपोर्टों, संयुक्त राष्ट्र की सामग्री और महिला सशक्तिकरण पर उपलब्ध अकादमिक साहित्य को आधार बनाया गया है। विशेष रूप से आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण 2023-24, समय-उपयोग सर्वेक्षण 2024 तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति

2020 से संबंधित आधिकारिक सूचनाओं का उपयोग किया गया है। साहित्य को विषयगत रूप से देखते हुए महिलाओं की सामाजिक स्थिति, आर्थिक सहभागिता, शिक्षा, घरेलू कार्य, परंपरा और आधुनिकता के बीच संबंधों की व्याख्या की गई है। इस अध्ययन में प्राथमिक सर्वेक्षण अथवा शोधकर्ता द्वारा तैयार किए गए नए आँकड़ों का उपयोग नहीं किया गया है।

1.3 साहित्य की समीक्षा :

महिला सशक्तिकरण संबंधी साहित्य इसे एक बहुस्तरीय प्रक्रिया के रूप में देखता है। कबीर (1999) ने संसाधनों की उपलब्धता, अभिकरण तथा प्राप्त परिणामों को सशक्तिकरण के प्रमुख आधारों के रूप में समझाया। सेन (1999) का दृष्टिकोण विकास को मानव क्षमताओं के विस्तार से जोड़ता है और स्वतंत्रता तथा विकल्पों को इसके केंद्रीय तत्वों में रखता है। नुसबाम (2000) ने महिलाओं के संदर्भ में गरिमा, स्वास्थ्य, शिक्षा, शारीरिक सुरक्षा और सामाजिक सहभागिता जैसी क्षमताओं पर बल दिया।

भारतीय संदर्भ में अग्रवाल (1994) ने भूमि, संपत्ति तथा अन्य संसाधनों पर महिलाओं की पहुँच को उनके सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण से जोड़ा। सरकारी और अंतरराष्ट्रीय स्रोतों से यह संकेत मिलता है कि भारत में शिक्षा तथा आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं के अवसरों का विस्तार हुआ है, परंतु लैंगिक असमानता समाप्त नहीं हुई है। इस साहित्य से यह समझ विकसित होती है कि महिला सशक्तिकरण को केवल नौकरी या शिक्षा के एक संकेतक से नहीं आँका जा सकता। सामाजिक मान्यताएँ, घरेलू श्रम का बँटवारा, संसाधनों पर नियंत्रण और परिवार तथा समाज में निर्णय लेने की क्षमता भी इसके महत्वपूर्ण पक्ष हैं।

2. मुख्य विश्लेषण/चर्चा :

2.1 भारतीय समाज में महिलाओं की पारंपरिक स्थिति :

भारतीय समाज में परिवार को लंबे समय से सामाजिक संगठन की प्रमुख इकाई माना गया है। इस व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका परिवार की निरंतरता और सांस्कृतिक जीवन से निकटता से जुड़ी रही है। पारंपरिक सामाजिक अपेक्षाओं के अनुसार महिलाओं से घर की देखभाल, घरेलू श्रम, बच्चों के पालन-पोषण और पारिवारिक संबंधों के निर्वाह की जिम्मेदारी निभाने की अपेक्षा की जाती रही, जबकि पुरुषों की भूमिका मुख्यतः आय अर्जन और सार्वजनिक गतिविधियों से जोड़ी गई।

फिर भी भारतीय महिलाओं के अनुभवों को एक ही रूप में नहीं समझा जा सकता। वर्ग, जाति, क्षेत्र, ग्रामीण या शहरी परिवेश, शिक्षा तथा आर्थिक स्थिति के कारण उनके अनुभव अलग-अलग रहे हैं। अनेक समुदायों में महिलाओं की कृषि, हस्तशिल्प, व्यापार, शिक्षा, सामाजिक आंदोलनों और सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भूमिका रही है। चुनौती तब बढ़ती है जब लैंगिक भूमिकाएँ कठोर सामाजिक अपेक्षाओं का रूप ले लेती हैं। शिक्षा और रोजगार का विस्तार होने के बाद भी इन अपेक्षाओं का प्रभाव कई स्तरों पर दिखाई देता है।

2.2 महिला सशक्तिकरण की अवधारणा एवं आयाम :

महिला सशक्तिकरण को ऐसी प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है जिसमें महिलाएँ अपने जीवन से जुड़े निर्णयों में प्रभावी भूमिका निभाएँ, आवश्यक संसाधनों तक पहुँच बना सकें और अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकें। कबीर (1999) के अनुसार संसाधन, अभिकरण और उपलब्धियाँ इस प्रक्रिया के केंद्रीय तत्व हैं। इसलिए आर्थिक साधनों के साथ शिक्षा, सूचना, सामाजिक सहयोग और निर्णय क्षमता को भी समान महत्व देना

आवश्यक है।

सशक्तिकरण के प्रमुख क्षेत्र शिक्षा, अर्थव्यवस्था, समाज, राजनीति और कानून से संबंधित हैं। शिक्षा ज्ञान और अवसरों का दायरा बढ़ाती है। आर्थिक स्वावलंबन संसाधनों के लिए दूसरों पर निर्भरता घटाने में सहायक हो सकता है। राजनीतिक भागीदारी निर्णय-निर्माण में प्रतिनिधित्व को मजबूत करती है। जबकि कानूनी जागरूकता अधिकारों के उपयोग की क्षमता बढ़ाती है। इसी कारण महिला सशक्तिकरण का आकलन केवल रोजगार प्राप्ति से नहीं किया जा सकता। आय पर नियंत्रण, परिवार के निर्णयों में भागीदारी तथा सामाजिक संस्थाओं में प्रभावी उपस्थिति भी इसके आवश्यक संकेतक हैं।

2.3 आधुनिक भारत में महिला विकास और बदलती सामाजिक स्थिति :

आधुनिक भारत में शिक्षा के विस्तार और सार्वजनिक जीवन में बढ़ती भागीदारी ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन के अवसर पैदा किए हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक समानता को प्राथमिकता दी गई है तथा लड़कियों और अन्य लक्षित समूहों के लिए लैंगिक समावेशन निधि का प्रावधान किया गया है (शिक्षा मंत्रालय, 2023)।

आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण 2023-24 के अनुसार 15 वर्ष और उससे अधिक आयु की महिलाओं की श्रम बल भागीदारी दर अखिल भारतीय स्तर पर 41.7 प्रतिशत थी। ग्रामीण महिलाओं के लिए यह 47.6 प्रतिशत और शहरी महिलाओं के लिए 28.0 प्रतिशत रही (सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, 2024)। ये आँकड़े महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी के साथ-साथ ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच अंतर को भी सामने रखते हैं।

आर्थिक भागीदारी को घरेलू दायित्वों से अलग करके देखना उचित नहीं है। समय-उपयोग सर्वेक्षण 2024 के अनुसार 6 वर्ष और उससे अधिक आयु की 81.5 प्रतिशत महिलाओं ने अवैतनिक घरेलू सेवाओं में भाग लिया, जबकि पुरुषों में यह अनुपात 27.1 प्रतिशत था। महिलाओं ने इन सेवाओं पर औसतन 289 मिनट प्रतिदिन लगाए, जबकि पुरुषों का औसत 88 मिनट रहा (सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, 2025)। इससे संकेत मिलता है कि महिलाओं की आर्थिक सक्रियता बढ़ने के साथ भी घरेलू श्रम का भार समान रूप से वितरित नहीं हुआ है।

2.4 शिक्षा, रोजगार और आर्थिक आत्मनिर्भरता में महिलाओं की भूमिका :

शिक्षा महिलाओं की क्षमता और स्वायत्तता को विकसित करने वाला महत्वपूर्ण साधन है। इसके माध्यम से रोजगार के अवसरों के अतिरिक्त कानूनी अधिकारों, स्वास्थ्य, वित्तीय निर्णयों और सामाजिक संस्थाओं से संबंधित जानकारी तक पहुँच बढ़ती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने शिक्षा व्यवस्था में लैंगिक समानता को प्राथमिकता देते हुए लैंगिक समावेशन निधि का प्रावधान किया है। इससे बालिकाओं के लिए समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अवसरों को बढ़ाने की नीति-स्तरीय दिशा मिलती है।

रोजगार और आर्थिक स्वावलंबन भी महिला विकास के महत्वपूर्ण पक्ष हैं। आय अर्जित करने से संसाधनों तक पहुँच और परिवार के निर्णयों में भागीदारी की संभावनाएँ बढ़ सकती हैं, लेकिन केवल रोजगार मिल जाना अपने आप में सशक्तिकरण का प्रमाण नहीं है। काम की प्रकृति, पारिश्रमिक, कार्यस्थल की सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा और आय पर महिला का नियंत्रण भी महत्वपूर्ण हैं। इसलिए कौशल निर्माण, सुरक्षित रोजगार, उद्यमिता,

वित्तीय साक्षरता और अवसरों तक समान पहुँच को व्यापक महिला-विकास रणनीति में शामिल किया जाना चाहिए।

2.5 महिला सशक्तिकरण पर वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण का प्रभाव :

वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण ने महिलाओं के सामने अवसरों और चुनौतियों दोनों का नया परिदृश्य बनाया है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, डिजिटल शिक्षा, ऑनलाइन कार्य, ई-कॉमर्स और डिजिटल वित्त ने कुछ महिलाओं को शिक्षा तथा आर्थिक गतिविधियों से जुड़ने के नए साधन उपलब्ध कराए हैं। इसके साथ ही डिजिटल पहुँच में असमानता, तकनीकी दक्षता की कमी और इंटरनेट तक सीमित पहुँच नई बाधाओं का रूप ले सकती है।

आधुनिकीकरण ने परिवार, रोजगार और सामाजिक भूमिकाओं के पारंपरिक संबंधों को भी प्रभावित किया है। उच्च शिक्षा तथा पेशेवर अवसरों के विस्तार ने महिलाओं की आकांक्षाओं को प्रभावित किया है, किंतु पेशेवर भूमिकाओं और घरेलू अपेक्षाओं के बीच असंतुलन दोहरे कार्यभार की स्थिति पैदा कर सकता है। वैश्वीकरण का प्रभाव सभी महिलाओं पर समान नहीं पड़ता। वर्ग और क्षेत्र के अनुसार इसके परिणाम अलग हो सकते हैं। इसलिए इसके प्रभाव को केवल नए अवसरों की संख्या से नहीं, बल्कि उन अवसरों के वास्तविक वितरण और संसाधनों तक महिलाओं की पहुँच से समझना आवश्यक है।

2.6 परंपरागत मूल्यों और महिला सशक्तिकरण के बीच अंतर्संबंध एवं चुनौतियाँ :

परंपरा और महिला सशक्तिकरण को अनिवार्य रूप से परस्पर विरोधी मानना उचित नहीं है। परिवार, सहयोग, सामुदायिक उत्तरदायित्व और सामाजिक एकजुटता जैसे मूल्य महिलाओं सहित पूरे समाज के लिए सहायक सामाजिक आधार प्रदान कर सकते हैं। समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब कुछ परंपरागत धारणाओं को बदलने योग्य न मानकर महिलाओं के अवसरों पर सीमाएँ लगा दी जाती हैं।

लैंगिक भूमिकाओं से जुड़ी रूढ़ धारणाएँ शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी को प्रभावित कर सकती हैं। समय-उपयोग सर्वेक्षण 2024 में महिलाओं द्वारा अवैतनिक घरेलू सेवाओं पर पुरुषों की तुलना में अधिक समय देना इस असमानता का एक संकेत है। इसके अलावा सुरक्षा, कार्यस्थल पर भेदभाव, संपत्ति एवं संसाधनों तक असमान पहुँच और सामाजिक निर्णयों में सीमित भागीदारी जैसी चुनौतियाँ भी बनी हुई हैं। कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा से संबंधित 2013 का कानून रोकथाम तथा शिकायत निवारण के लिए संस्थागत व्यवस्था उपलब्ध कराता है। इसलिए समाधान परंपरा या आधुनिकता में से किसी एक को चुनना नहीं, बल्कि उन सामाजिक मूल्यों को नए संदर्भ में समझना है जो समान गरिमा और अवसरों के अनुकूल हों।

2.7 आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन की संभावनाएँ :

महिला सशक्तिकरण और सामाजिक मूल्यों के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए परिवार की भूमिका को सहयोगी रूप में विकसित करना आवश्यक है। परिवार महिलाओं की शिक्षा, रोजगार और निर्णय लेने की क्षमता को सीमित करने के बजाय उन्हें आगे बढ़ने के लिए समर्थन देने वाला आधार बन सकता है। इसके साथ घरेलू तथा देखभाल संबंधी जिम्मेदारियों को अधिक समान रूप से बाँटना भी आवश्यक है।

शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि लैंगिक दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन लाना भी है। संवेदनशील शिक्षा के माध्यम से लड़कियों और लड़कों दोनों में समानता, सम्मान तथा साझा जिम्मेदारी

की भावना विकसित की जा सकती है। इसी तरह कौशल प्रशिक्षण, उद्यमिता, वित्तीय समावेशन, डिजिटल साक्षरता और सुरक्षित रोजगार महिलाओं की आर्थिक क्षमता को मजबूत करने में सहायक हो सकते हैं।

परंपरागत मूल्यों का महत्व तभी स्थायी रह सकता है जब वे मानव गरिमा, समानता और स्वतंत्रता के साथ सामंजस्य रखते हों। परिवार और समुदाय की सकारात्मक भूमिका को बनाए रखते हुए महिलाओं की शिक्षा, रोजगार, आवागमन तथा निर्णय लेने की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करना आधुनिक भारतीय समाज के लिए अधिक समावेशी सामाजिक आधार तैयार कर सकता है।

3. निष्कर्ष :

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया में है। शिक्षा, रोजगार, राजनीतिक भागीदारी, कानूनी संरक्षण और आर्थिक अवसरों में वृद्धि ने महिलाओं के लिए सामाजिक जीवन के नए क्षेत्र खोले हैं। आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण 2023-24 में दर्ज महिला श्रम बल भागीदारी तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति में लैंगिक समावेशन पर दिया गया जोर इस परिवर्तन के महत्वपूर्ण संकेत हैं। दूसरी ओर समय-उपयोग सर्वेक्षण 2024 से घरेलू अवैतनिक कार्य के असमान बँटवारे का पता चलता है। इससे स्पष्ट होता है कि सार्वजनिक अवसरों का विस्तार होने के बावजूद पारिवारिक और सामाजिक भूमिकाओं में समान पुनर्वितरण अभी पूरा नहीं हुआ है।

इसलिए महिला सशक्तिकरण को केवल रोजगार या आर्थिक विकास के आँकड़ों के आधार पर परिभाषित करना पर्याप्त नहीं होगा। वास्तविक सशक्तिकरण में शिक्षा, संसाधनों तक पहुँच, सुरक्षित कार्य, निर्णय लेने की क्षमता, कानूनी संरक्षण और सामाजिक सम्मान का समावेश होना चाहिए। इसी प्रकार परंपरागत मूल्यों को एक स्थिर व्यवस्था मानने के बजाय उनके उपयोगी तथा सीमितकारी पक्षों का विवेकपूर्ण परीक्षण आवश्यक है। अपेक्षित संतुलन ऐसा होना चाहिए जिसमें परिवार और समुदाय के सकारात्मक मूल्य बने रहें, परंतु वे महिलाओं की स्वतंत्रता, गरिमा और समान अवसरों के रास्ते में बाधा न बनें।

4. सुझाव :

- बालिकाओं और महिलाओं के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की निरंतरता तथा पहुँच को और मजबूत किया जाना चाहिए।
- कौशल प्रशिक्षण, उद्यमिता, वित्तीय साक्षरता और रोजगार के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक स्वावलंबन क्षमता बढ़ाई जानी चाहिए।
- घरेलू एवं देखभाल संबंधी जिम्मेदारियों के साझा निर्वहन के लिए परिवार और समुदाय में समानतापूर्ण दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- प्रत्येक कार्यस्थल पर सुरक्षा, समान व्यवहार और सम्मानजनक कार्य-परिवेश सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
- ग्रामीण तथा सामाजिक रूप से वंचित महिलाओं के लिए डिजिटल सेवाओं और वित्तीय संसाधनों तक पहुँच को अधिक सुलभ बनाया जाना चाहिए।
- शिक्षा तथा सामाजिक जागरूकता के माध्यम से उन लैंगिक रूढ़ियों को चुनौती दी जानी चाहिए जो महिलाओं की शिक्षा, रोजगार या सार्वजनिक सहभागिता को सीमित करती हैं।
- परंपरागत मूल्यों के सकारात्मक तत्वों को सुरक्षित रखते हुए उन सामाजिक प्रथाओं की समीक्षा की जानी

चाहिए जो समानता और महिला स्वायत्तता के प्रतिकूल हैं।

- महिला-केंद्रित नीतियों के निर्माण और उनके क्रियान्वयन में महिलाओं की सार्थक एवं प्रत्यक्ष भागीदारी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

5. संदर्भ सूची :

- अग्रवाल, बी. (1994). दक्षिण एशिया में लैंगिक और भूमि अधिकार. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- भारत सरकार (2013). कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न निवारण, प्रतिषेध और प्रतितोष अधिनियम, 2013. विधि और न्याय मंत्रालय।
- कबीर, एन. (1999). संसाधन, अभिकरण और उपलब्धियाँ : महिला सशक्तिकरण के मापन पर विचार. विकास और परिवर्तन, 30(3), 435–464.
- शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. भारत सरकार।
- सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार (2024). आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण 2023–24 की वार्षिक रिपोर्ट. भारत सरकार।
- सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार (2025). समय–उपयोग सर्वेक्षण 2024. भारत सरकार।
- नुसबाम, एम. सी. (2000). महिला और मानव विकास : क्षमताओं का दृष्टिकोण. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- सेन, ए. (1999). विकास स्वतंत्रता के रूप में. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- संयुक्त राष्ट्र महिला (2021). भारत में महिलाओं के लिए शिक्षा, कौशल, उद्यमिता और रोजगार संबंधी कार्यक्रम। संयुक्त राष्ट्र।
- संयुक्त राष्ट्र महिला (2022). भारत में महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता का अवलोकन। संयुक्त राष्ट्र।

भगवद्गीता में कर्मयोग सिद्धान्त की सजग नैतिक दृष्टिकोण

डॉ. वीरेन्द्र कुमार

दर्शनशास्त्र विभाग, दी. द. उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय।

सार तत्व :

भारतीय दर्शन का एक अनुपम एवं पवित्र ग्रन्थ भगवद्गीता है। भगवद्गीता जो है वह न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से बल्कि नैतिक, दार्शनिक और व्यावहारिक जीवन के लिए भी बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सर्वोच्च ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कर्मयोग का सिद्धान्त है उसका विशेष स्थान है, जिसे योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जीवन को संघर्षों से उबारने के लिए समझाया था। कर्मयोग ही वह प्रथम योग है जिसे उपनिषदों ने योग में पूर्णता की अवस्था के बोध हेतु आवश्यक माना है। यह वैदिक एवं दार्शनिक परम्परा में वर्णित यौगिक विद्या के प्रमुख पहलुओं या अंगों में से एक है। कर्म का शाब्दिक तात्पर्य कार्य से है। संसार जगत में प्रत्येक मनुष्य कार्य करता है, चाहे चेतनापूर्वक करे या अचेतनापूर्वक। जब कर्म शब्द के साथ योग शब्द जोड़ देते हैं तो वह शब्द कर्मयोग बन जाता है। तब इसका तात्पर्य ऐसे कार्य से होता है जिसका सम्पादन ध्यानात्मक सजगता से किया जाय। इस प्रकार कर्मयोग वस्तुतः गत्यात्मक ध्यानयोग है।

कर्मयोग का मूल सार है— कर्म करते रहो, फल की चिन्ता मत करो।

भगवद्गीता में कहा गया है कि—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥”

अर्थात: तेरा अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फलों में कभी नहीं। तु कभी भी कर्मों के फल की कारण मत बन अर्थात् फल की इच्छा से कर्म मत कर और तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

कर्म जो है उसके अनेक अर्थ हो सकते हैं। सृष्टि का जो प्रत्येक पहलू है वह कर्म के नियमों के अनुसार ही संचालित होता है। कर्म जो है वह मनुष्य के व्यक्तित्व एवं जीवन के अनुभूत ज्ञान की मूल प्रतिकृति है। भौतिक जगत् या संसार में आनन्द का अनुभव प्राप्त करने हेतु बुद्धि, विचार एवं इन्द्रियों के द्वारा जो कार्य किए जाते हैं वे भी कर्म ही हैं। उदाहरण स्वरूप हम कह सकते हैं कि आत्मा की तुलना एक ऐसे बच्चे से की जा सकती है जो संसार रूपी क्रीड़ाभूमि में खेल रहा है और उसके खिलौने हैं— विचार, इच्छाएँ, महत्वाकांक्षाएँ, परिस्थितियाँ, उसकी भिन्न-भिन्न भूमिकाएँ एवं उनसे सम्बन्धित अन्य बातें। यह बच्चा इस संसारिक क्रीड़ाभूमि में इन समस्त खिलौनों के साथ खेल रहा है। ये जो कर्म हैं उसकी प्रकृति के अभिन्न अंग होते जा रहे हैं क्योंकि कर्म जो है वह जीवन के अव्यक्त आयाम के कार्य भी हैं।

अगर दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो कर्म का तात्पर्य इच्छा के आद्य या मूल बीज से है। कर्म के जो अवधारणा है उसके विकास का आधार यह है कि इच्छा का यह आद्य बीज प्रत्येक व्यक्ति की नियति, कार्य, विचार एवं व्यवहार को निर्देशित एवं निर्धारित करता है। अमूर्त कर्म के संदर्भ में इच्छा के इस आद्य बीज को समझ सकना बहुत ही कठिन है, क्योंकि यहाँ इसे अव्यक्त प्रकृति, अहंकार एवं अन्तःकरण के प्रसंग में समझना होगा।

अतः कर्म की अवधारणा को इस गहन एवं गूढ़ आयाम में समझने के पूर्व सर्वप्रथम भौतिक स्तर पर समझने का प्रयास करना चाहिए, हमें भौतिक आयाम के उन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का पता लगाना होगा जहाँ हम कर्मों का अनुभव करते हैं।

इन्द्रियों के द्वारा सम्पादित जो कार्य है वह कर्म का ही एक क्षेत्र है। इन्द्रियों की अवधारणा के अन्तर्गत ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ दोनों ही आती हैं। हाथों एवं पैरों की गतिशीलता से ही जो कार्य होते हैं वे कर्मेन्द्रियों के कार्यों के उदाहरण हैं। पुनः आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, जीभ स्वाद लेती हैं। देखना, सुनना, स्वाद लेना इत्यादि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सम्पादित कार्य है। इनके माध्यम से हमें वाह्य वातावरण का अनुभव प्राप्त होता है। ये समस्त एवं सम्पूर्ण कर्म मूर्त या भौतिक प्रकृति के हैं।

इन्द्रियाँ मानसिक प्रकृति की भी होती हैं। इन्द्रियों का वर्णन मन के विभिन्न क्रियाकलापों के रूप में किया गया है। “किसी कर्म के सम्पन्न होने में पाँच कारकों का योगदान रहता है— अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा और देव।”² ये क्रियाकलाप या कारक हमें शरीर तथा पदार्थ एवं इन्द्रिय जगत् से इसके सम्बन्धों के संदर्भ में सजगता बनाते हैं। सनातन धर्म एवं वैदिक परम्परा के अनुसार इन क्रियाकलापों या कार्यों के विभिन्न पहलुओं का सम्पादन इन्द्रियों, मन, बुद्धि, संस्कारों और कर्मों के द्वारा होता है। इन्द्रिय भौतिक और मानसिक प्रकृति की होती है। मन तथा बुद्धि क्रमशः विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक प्रक्रियाएँ हैं। संस्कार भूतकालिक अनुभवों के वैसे प्रभाव हैं जो चेतना की गहराई में पड़े रहते हैं और इच्छाओं के अन्तर्निहित आद्य बीज हैं। इस प्रकार “कर्म मात्र कर्ता नहीं, बल्कि ऊपर के सभी कारकों द्वारा सम्पन्न होता है। यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि कर्म केवल वह करता है, तो यह उसका अज्ञान है। इसी अज्ञान के कारण उसमें कर्म करने का अहंकार पैदा हो जाता है।”³

भगवद्गीता में भी कहा गया है कि “चैतन्य आत्मा (मनुष्य) अज्ञानवश अपने चेतना स्वरूप को भूल जाता है और अचेतन प्रकृति (शरीर) द्वारा किये गए कर्मों का कर्ता अपने को सही समझने लगता है।”⁴ यही कारण है कि कुरुक्षेत्र के महाभारत युद्ध मैदान में गांडीवधारी अर्जुन द्वारा गांडीव धनुष का रख देना उसका अहंकार माना जाता है। अर्जुन के उस अहंकार को समाप्त करने के लिए कहा गया कि “वास्तव में मनुष्य कुछ नहीं करता है। उसके कर्तव्य निर्धारित होते हैं। अर्जुन के कर्तव्य भी निर्धारित हैं। वह क्षत्रिय है और क्षत्रिय का कर्तव्य युद्ध करना है। इसलिए ‘सुख—दुःख, लाभ—हानि और जय—पराजय को समान समझकर युद्ध में प्रवृत्त होना चाहिए।”⁵ इसलिए इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य के अपने कर्तव्य भी निर्धारित हैं, जिनका पालन करना ही प्रत्येक मनुष्य का उचित कर्म है। पाश्चात्य दार्शनिक इमेनुअल काण्ट ने भी माना है कि कर्तव्य कर्तव्य के लिए किया जाना चाहिए। इसलिए इसी कर्मयोग को ही निष्काम कर्मयोग कहा जाता है।

मूल शब्द : भगवद, गीता, कर्म, योग, कर्मयोग, सिद्धस्त, रजग, नैतिक, निष्काम, दृष्टिकोण, धर्म, ग्रन्थ, इन्द्रिय, आध्यात्मिक, मनुष्य, दर्शन।

प्रस्तावना :

महाभारत महाकाव्य के भीष्मपर्व के अध्याय स्वरूप अंश ही भगवद्गीता है। भगवद्गीता जो है वह हमारे धर्म ग्रन्थों का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पवित्रतम एवं अत्यन्त ही तेजस्वी और निर्मल हीरा के समान ग्रन्थ है। पिण्डब्रह्माण्ड—ज्ञानसहित आत्मविद्या के गूढ़ और पवित्र तत्वों को थोड़े में और सुस्पष्ट रीति से समझा देने वाला उन्हीं तत्वों के आधार पर मनुष्य मात्र के पुरुषार्थ की अर्थात् आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान करा देने वाला ज्ञान और भक्ति का मेल कारके इन दोनों का शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ संयोग करा देने वाला और इसके द्वारा जगत से त्रस्त मनुष्य के शान्ति देकर उसे निष्काम कर्तव्य के नैतिक आचरण में लगाने वाला भगवद्गीता के समान बालबोध ग्रन्थ संस्कृत को कौन कहे, सम्पूर्ण संसार/जगत् के साहित्य में भी नहीं मिल सकता। यदि केवल काव्य की ही दृष्टि से ही इसकी परीक्षा की जाये तो भी यह ग्रन्थ उत्तम काव्यों में गिना जा सकता है, क्योंकि इसमें आत्मज्ञान के अनेक गूढ़ सिद्धान्त ऐसी प्रासादिक भाषा में लिखे गए हैं। भगवद्गीता एक सरल एवं सुगम रूप में प्रयुक्त है और इसमें ज्ञानयुक्त भक्ति रत्न भी भरा पड़ा है।

कर्म रूपान्तरण की प्रक्रिया :

हम बिना किसी सजगता ज्ञान या बोध के इन सम्पूर्ण एवं समस्त विभिन्न स्तरों पर एक साथ ही कार्य करते हैं। जब आन्तरिक और बाह्य रूप से सम्पादित हो रहे कार्यों के प्रति सजगता बनी रहती है तब वह सजगता ध्यानात्मक सजगता बन जाती है। कर्मयोग को योग के सही मनोवैज्ञानिक पहलू के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है क्योंकि गत्यात्मक ध्यान की इस प्रक्रिया में हमें अपने व्यक्तित्व के सूक्ष्म क्षेत्रों के प्रति सहज होना पड़ता है। ध्यान की इस गत्यात्मक प्रक्रिया में मनः शक्ति एवं सजगता जागृत होती है।

कर्मयोग के स्तर :

कर्मयोग का जो तात्पर्य है वह सतत ध्यानात्मक सजगता से कार्य सम्पादित करना है। केवल कार्य को ही चेतनता पूर्वक नहीं करना चाहिए बल्कि कर्ता को भी कार्य के प्रति अपने दृष्टिकोण का भी अवलोकन करते रहना चाहिए। भौतिक कर्म तो प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा किये जा रहे हैं। व्यक्ति भौतिक कर्मों का सम्पादन आत्मसन्तुष्टि या प्राप्ति की इच्छा से अभिप्रेरित होकर करता है। किन्तु कर्मयोग लक्ष्य होता है सदैव देते रहना—देते रहना। वहाँ प्राप्ति या उपलब्धि का कोई भाव नहीं रहता। बाह्य कार्यों के प्रति सजग रहने से कार्यों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है और दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है और दृष्टि बहुत ही बृहद एवं व्यापक बनती है। शारीरिक स्तर पर कार्य करते समय पूर्ण सजगता बनी रहनी चाहिए तथा यह ध्यानात्मक सजगता की अवस्था होनी चाहिए।

जब हम अपने व्यक्तित्व, मन एवं भावनाओं को सम्भालने और परिपोषित करने से सम्बन्धित कार्यों में लगे हो तब उन कार्यों का भी अवलोकन होते रहना चाहिए। यह देखते रहना चाहिए कि हमारे कार्य अहंकारयुक्त हैं या अहंकाररहित, सामान्यतः 99.9 प्रतिशत कार्य जो है वह अहंकार युक्त ही होते हैं। इस प्रकार के कार्य सकाम कर्म कहे जाते हैं। कर्म दो हैं। वे हैं—

1. सकाम कर्म
2. निष्काम कर्म।

भगवद्गीता अनुसार “सकाम कर्म स्वार्थयुक्त और निष्काम कर्म स्वार्थविहीन है।”⁶ हमारे अहंकार द्वारा

निर्देशित वैसे कार्य जो किसी उद्देश्य या इच्छा से सम्पादित किये जाते हैं, अहंकार युक्त या सकाम कर्म कहलाते हैं। अहंकार रहित कार्य की अनुभूति प्राप्त करने के लिए प्रथमतः हमें अपनी ही बौद्धिक क्षमता का उपयोग करना होगा, इस क्षमता के द्वारा परिस्थितियों एवं प्राप्त अनुभवों का विश्लेषण करते हुए अन्ततः हमें स्वयं को एक केन्द्र में स्थापित करने का प्रयास करना होगा। यह ऐसा बिन्दु होना चाहिए जो अहंकार से निर्देशित न होता हो।

अन्तःक्रिया वाणी का स्तर :

अन्य लोगों के साथ होने वाली अन्तः क्रिया कर्मयोग या अहंकार रहित कार्य का परीक्षण स्थल है। अन्तःक्रिया का सम्बन्ध वाणी के कार्य या कर्म से है। अन्य लोगों से अन्तःक्रिया करते समय हम अपने व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक सजग रहते हैं। हमें अपने स्वरूप को एक आदर्श रूप देने हेतु हमें अपने विचार, व्यवहार एवं प्रतिक्रियाओं में कुछ परिवर्तन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि मैं स्वयं को एक उत्तम व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करना चाहता हूँ तो कोई व्यक्ति मुझे बुरा, कुटिल या झूठा क्यों न कहें, मैं अपने अहंकार को पी जाऊँगा और उत्तम बने रहने का प्रयास करूँगा। किन्तु उसे समय मेरी समस्त एवं सम्पूर्ण सजगता अपने को सर्वश्रेष्ठ रूप में प्रस्तुत करने में लगी हुई है। मैं अपनी प्रतिक्रियाओं का अवलोकन नहीं कर रहा हूँ। दूसरे व्यक्ति के शब्द और भाव मुझे किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं? मैं उसे नकारात्मक रूप से प्रभावित किए बना ही अपनी भावनाओं तथा शब्दों को किस प्रकार व्यक्त कर रहा हूँ? इस प्रकार व्यक्तित्वों के बीच होने वाली अन्तःक्रिया वस्तुतः कर्मयोग का परीक्षण स्थल है।

उतेजना : मानसिक स्तर :

अभिप्रेरणा एवं उतेजना का सम्बन्ध कर्मों के मानसिक स्तर से है। उतेजना के अभाव में कर्म जो है वह नीरस या उबाऊ हो जाते हैं। अतः ऊब नीरसता पर काबू पाना ही कर्मयोग का एक अन्य पहलू है। यह जो कार्य है वह एक अत्यन्त ही सर्वाधिक कठिन कार्य है क्योंकि मन स्भावतः उतेजना की खोज करते रहता है। एक उतेजना की शक्ति ज्यों ही कम होती है, वह दूसरी उतेजना की तलाश करने लगता है। अतः कुछ समय के बाद एक ही कार्य उबाऊ और नीरस हो जाता है और नित्यचर्या जैसा लगने लगता है। व्यक्ति सोचने लगता है कि दिन-रात मुझे एक ही कार्य करना पड़ता है। हम एक ही कार्य को बार-बार करने तथा कंचन एवं अभिनव उतेजनात्मक निवेश के अभाव के कारण ही ऊब या नीरसता का अनुभव करते हैं।

यदि आत्मावलोकन किया जाये तो उतेजना की इच्छा दिखाई पड़ सकती है। अनेक बार उतेजना हमारी रचनात्मक क्षमता और सकारात्मक गुणों के लिए अभिप्रेरणात्मक कारण भी बन जाती है। उतेजना के अभाव में हमारी क्रियाशीलता घटने लगती है और हमारा मन सुस्त एवं निष्क्रिय हो जाता है। यह मन की एक त्रुटि या अपूर्णता है। योग में इसका वर्णन सक्रियता के अन्तर्गत निष्क्रियता की अवस्था के रूप में किया गया है। एक कार्य करते हुए व्यक्ति निष्क्रियता की अवस्था में पहुँच जाता है और इस अवस्था में ऊब या नीरसता का अनुभव करने लगता है। भगवद्गीता में कहा गया है कि यदि आप सक्रियता एवं निष्क्रियता के बीच सन्तुलन बनाए रख सकते हैं तो आप एक योगी हैं।

अब हम देखें कि व्यक्ति के जीवन के सन्दर्भ में सक्रियता और निष्क्रियता की अवस्था का क्या तात्पर्य है। किन्तु इसे समझने के पूर्व कर्मयोग के मौलिक सिद्धान्तों को जानना अति आवश्यक है। हमने देखा कि हम उतेजनात्मक निवेश के अभाव में ऊब या नीरसता आजादी है और एक सकारात्मक मानसिक दृष्टिकोण का

अभाव हो जाता है। यह मानसिक अपूर्णता या त्रुटि की अवस्था है, क्योंकि मन स्वयं में सामंजस्यपूर्ण या संतुलित अवस्था में नहीं है। हमारे विचार एक दिशा में हो जाते हैं और इच्छाएँ जो वह दूसरी दिशा में तथा हमारी कमजोरियाँ हमें एक अन्य दिशा में ले जाती है और इन सब के परिणाम स्वरूप हमारा व्यक्तित्व विघटित या विखण्डित हो जाता है। मन की अपूर्णता या त्रुटि को दूर करने के लिए विखराव को समझना और रोकना होगा, कर्मयोग में निहित ये प्रारम्भिक विचार हैं।

सामाजिक अनुबन्धन : बौद्धिक स्तर :

परम्परागत शास्त्रों के अनुसार कर्म का जो सम्पादन है वह वाणी, मन एवं बुद्धि के द्वारा ही होता है। वाणी जो है वह अन्तःक्रिया का पहलू है और मन जो है वह अभिप्रेरणा एवं उत्तेजना के निवेश का पहलू है। तदुपरान्त बुद्धि आती है। कारण जानने का प्रयास करना और यह सोचने का प्रयास करना कि क्या यह तर्क या विवेचन जीवन की परिस्थितियों की हमारी समझदारी के उपयुक्त है, बौद्धिक कर्मयोग है। बौद्धिक समझदारी का सम्बन्ध हमारे विश्वास, विचारों और अवधारणाओं से है जिन्हें हमने अपने संस्कृति समाज तथा धार्मिक पृष्ठभूमि से ग्रहण किया है। हम अपने अंदर पूर्व से स्थित किसी विचार की तुलना एक नए विचार से करते हैं और तदुपरान्त उसे स्वीकार या अस्वीकार करते हैं। बौद्धिक कर्मयोग की अवधारणा तुलना की पद्धति या तरीके पर आधारित है। किसी विचार या परिस्थिति को स्वीकार या अस्वीकार करने की अभिप्रेरणा हमें अपने विश्वास से या अपनी पसन्दगी एवं नापसन्दगी से प्राप्त होती है।

प्रभाव या प्रतीक : संस्कार का स्तर :

तदनन्तर कर्मयोग का एक पहलू संस्कार के स्तर पर देखा जा सकता है। संस्कार एक अतिविचित्र चीज है। यह डी. एन. ए. (D.N.A.) अणु के अंदर स्थित एक पुस्तकालय के समान है। हमने आज तक जो कुछ भी ग्रहण या प्राप्त किया है वह सब कुछ इसके अन्दर समाहित है। एक डी. एन. ए. अणु के अंदर समस्त एवं सम्पूर्ण जगत् के सभी पुस्तकालयों की समस्त सूचनाएँ सन्निहित हैं और संस्कार भी इसी प्रकार के हैं। संस्कार की तुलना अनगिनत ग्रंथों में समाहित ऐसी सूचनाओं से की जा सकती है जो हमारे करोड़ों वर्ष की अवधि में एकत्रित हुई हैं। जब ये संस्कार मन के स्तर पर प्रकट होते हैं तो बड़े शक्तिशाली होते हैं, वे भोजन या निद्रा की इच्छा या सिर दर्द के रूप में अभिव्यक्त हो सकते हैं। इस समय से प्रभाव या प्रतीक के रूप में स्वीकार किये जाते हैं।

परम्परा के अनुसार संस्कार के प्रति सजग होने के अनेक तरीके हैं। एक तरीका ये भी है कि किसी संस्कार को फिर से जीना और उसमें समाहित सुख या दुःख के पहलू का अनुभव करना। संस्कार को निःशेष करने का पहलू या दूसरा तरीका कर्मयोग का अभ्यास है। जब हम पूर्ण एकाग्रता से कर्मयोग करते हैं। तब हमारे अन्दर आन्तरिक सुद्धिकरण की एक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। इसके परिणाम स्वरूप हमारे व्यक्तित्व की गहराई में छिपे संस्कार हमारी चेतना के स्तर पर पसन्दगी—नापसन्दगी और विचारों या अवधारणाओं के रूप में प्रकट होते हैं। जब हम पदार्थ या चीजों को एक भिन्न प्रकाश में देखते हैं और अधिक ग्रहणशील एवं रचनात्मक होते हैं तो वह भी संस्कार का ही एक रूप है।

यह कहना बहुत ही कठिन है कि परिपक्व होने पर संस्कार किस प्रकार प्रकट होते हैं और हमारे व्यवहार तथा कार्यों को वे किसी प्रकार प्रभावित कर सकते हैं। किन्तु यह एक मान्य तथ्य है कि परिपक्व हो रहे संस्कारों

के प्रति सजग होने में कर्मयोग के अभ्यास सहायक होते हैं। इन अभ्यासों के परिणाम स्वरूप हमारे मन से संस्कारों के नकारात्मक एवं अशान्तिकारक प्रभाव दूर होते हैं और आन्तरिक शुद्धता, सामंजस्य एवं संतुल की अवस्था की प्राप्ति होती है। कर्मों के शुद्धिकरण के लिए भी यही तकनीक अपनायी जाती है क्योंकि कर्म ही इच्छा के आद्य बीज है।

कार्य के प्रति दृष्टिकोण :

कर्मयोग के प्रसंग में कार्य महत्वपूर्ण नहीं माने जाते बल्कि वह मनःस्थिति महत्वपूर्ण होती है जिससे कार्य सम्पादित किये जाते हैं। कार्यों का होना एक सतत प्रक्रिया है। वे होते ही रहते हैं। उनके ऊपर कोई स्वैच्छिक या विवेकपूर्ण नियंत्रण नहीं होता है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है कि कार्य के प्रति हमारा दृष्टिकोण कार्य स्वयं में महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है कार्य के प्रति हमारे सजगता। दृष्टिकोण में परिवर्तन ही अन्तः आन्तरिक परिवर्तन का कारण बनता है। इसकी तुलना एक छुरी से ही जा सकती है। एक हत्यारे के हाथ में रहने पर यह किसी व्यक्ति की जान ले सकती किन्तु एक शल्यचिकित्सक के हाथ में हाने पर यह एक व्यक्ति की जान बचा सकती है।

यहाँ पर उपकरण तो एक ही है एक छुरी तो छुरी ही रहेगी, किन्तु उस उपकार के प्रति दृष्टिकोण एवं उसका उपयोग महत्वपूर्ण हो जाता है। एक ही छुरी किसी की जान ले सकती है या किसी को जीवन प्रदान कर सकती है। यह सब कुछ निर्भर करता है उस व्यक्ति की मनःस्थिति पर जिसके हाथ में वह छुरी है। सही मनःस्थिति को जीवन और जीवन के सम्बन्धित कार्यों के प्रति सकारात्मक शुभ एवं आशावादी अर्थ में समझना होगा। हम अपने जीवन में जिस सकारात्मक कार्य तथा दृष्टिकोण को विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं उसमें अनुभूति प्राप्ति के लिए एक उर्जास्विता एक अभिप्रेरणा होनी चाहिए। यह दृष्टिकोण हमें निश्चय ही एक ध्यानात्मक अनुभूति तक पहुँचा देगा।

कर्मयोग जो है वह लोकोपकारी या परोपकारी कार्य नहीं है। अनेक लोग कर्मयोग की तुलना परोपकारी या उपदारतावादी या उदारतापूर्ण कार्यों से करते हैं। अभावग्रस्त लोगों को भोजन, वस्त्र या आवास प्रदान करने के कार्य को कर्मयोग मानते हैं, किन्तु यह सकाम कर्म है। इच्छा से प्रेरित कर्म है। ऐसे कार्य संभावित प्राप्ति के भाव से किये जाते हैं, जिसमें पद, प्रसिद्धि, प्रतिष्ठा इत्यादि के विचार आ सकते हैं। इस प्रकार के परोपकारी कार्यों के द्वारा अभ्यासी ध्यानात्मक अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता है। ये बाह्य कार्य हैं जिसका सम्पादन मन में निहित एक सामाजिक दृष्टिकोण या समझ से अभिप्रेरित होता है सामाजिक कार्य निष्काम कर्मयोग नहीं हो सकता और न उसे ऐसा मानना ही चाहिए। कर्मयोग का तात्पर्य होता है बिना किसी इच्छा या व्यक्तिगत प्रयोजन अथवा अभिप्राय के कार्य सम्पादित करना।

कर्मयोग का जो अन्तिम लक्ष्य है वह साधक को सजगता की ध्यानात्मक अवस्था या चेतना की जाग्रत अवस्था में पहुँचाना है। उस अवस्था में क्या हो रहा है और ये क्रियाएँ एवं अन्तःक्रियाएँ हमारी अभिव्यक्तियों एवं व्यक्तित्व को किस प्रकार प्रभावित, अनुबन्धित तथा सीमित कर रही हैं। इन सबों के हम द्रष्टा हो जाते हैं। अन्य योगों के संदर्भ में भी इस परिवर्तन को समझना होगा। कर्मयोग के अभ्यास के साथ ही ज्ञायोग भक्तियोग, हठयोग या क्रियायोग का संयोजन आवश्यक है क्योंकि अन्य योगों से संयोग हाने पर यह आध्यात्मिक अभ्यास का एक शक्तिशाली उपकरण का एक शक्तिशाली उपकरण बन जाता है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः : रूप में हम यह कह सकते हैं कि कर्मयोग जो है वह पूर्ण समर्पण का योग है। इसमें अहंकार के समाप्त होते ही यह धारणा, भावना या विचार उत्पन्न होता है कि मैं कर्ता नहीं हूँ। ईश्वर ही कर्ता है। इस तरह की भावना या विचार उत्पन्न होते ही व्यक्ति के अंदर अहंकार की सता का भाव ही समाप्त हो जाता है। ईश्वर ही मेरे माध्यम से सब कुछ सम्पादित कर रहा हूँ। यह कथन ही कर्मों के सम्पूर्ण समर्पण के भाव से युक्त है। जब अहंकार व्यक्तित्व और भावना की सता की समाप्ति एवं प्राप्त की इच्छा के अन्त के बाद कर्मों के स्तर पर इस प्रकार का पूर्ण समर्पण घटित होता है तब मन, वचन, विचार और कर्म की शुद्धता की अनुभूति होती है। शुद्धता की यह अवस्था ही अन्ततः हमें अज्ञात आयाम में पहुँचाती है।

अतः यही पूर्ण कर्मयोग की सम्पूर्ण अवधारणा है, क्योंकि यहाँ कर्म आनन्ददायक हो जाता है। यही कर्मयोग है।

संदर्भ सूची :

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/47
2. तिवारी, प्रो. नरेश प्रसाद, भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सं. 2006, पृ. 44
3. वही, पृ. 44
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/27
5. भगवद्गीता, 2/38
6. तिवारी, प्रो. नरेश प्रसाद, भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सं. 2006, पृ. 55

e-mail : virendrakumar.philosophy@gmail.com

भारतीय संस्कृति एवं संस्कार

डॉ. संजीव कुमार

सहायकाचार्य (अतिथि संकाय)

संस्कृत-विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय क्षेत्रीय केन्द्र, धर्मशाला।

संस्कार भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इनका प्रचलन अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। ये मानवीय जीवन को साक्षात् रूप से प्रभावित करते हैं। कोई भी समाज तब तक उन्नति नहीं कर सकता, जब तक वहां के लोग संस्कारित नहीं होंगे।

अनेक योनियों में भटकता हुआ प्राणी प्रभु कृपा से तथा अपने पुण्यकर्मों से मनुष्य योनि प्राप्त करता है और मनुष्य शरीर प्राप्त करने पर उसके द्वारा जीवनपर्यन्त किए गए अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार उसे सुख-दुःख अथवा पुण्य-पाप आगे के जन्मों में भोगने पड़ते हैं। मानव योनि के अतिरिक्त संसार की जितनी भी योनियाँ हैं वे सब भोग योनियाँ हैं। शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार ही भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म होता है। पाप कर्म करने वालों का पशु-पक्षी कीट-पतंग, पिशाच आदि योनियों में जन्म होता है तथा पुण्य कर्म करने वालों का मनुष्य, देव तुल्य आदि उच्च योनियों में जन्म होता है। मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है जिसमें जीव को अपने विवेक बुद्धि के अनुसार शुभ-अशुभ कर्म करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है।

मनुष्य की मानसिक, आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति के लिए तथा प्रज्ञा और दैवीय गुणों के प्रस्फुटन के लिए शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट संस्कारों से संस्कारित करने की आवश्यकता है। संस्कार शब्द का अर्थ है-दोषों का परिमार्जन करना। मनुष्य के दोषों और कमियों को दूर कर उसे चार पुरुषार्थों – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के योग्य बनाना ही संस्कार का उद्देश्य है। संस्कार का उल्लेख करते हुए शबरस्वामी¹ ने कहा है कि “संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्चिदर्थस्य” अर्थात् संस्कार वह प्रक्रिया है जिसके करने या होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के योग्य हो जाता है।

मीमांसकों² ने संस्कार का अर्थ इस प्रकार से किया है – “प्रोक्षणादिजन्य संस्कारों यज्ञाङ्ग पुरोडाशेष्विति द्रव्य धर्मः” अर्थात् यज्ञाङ्गभूत पुरोडाशादि की विधिवत् शुद्धि ही संस्कारों का आशय है।

नैयायिकों³ ने भावों को अभिव्यक्त करने की आत्म-व्यंजक शक्ति को संस्कार माना है। मनु⁴ का कथन है कि :

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैः निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।

कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥

वेदोक्त पुण्यकर्मों के द्वारा द्विजगणों का गर्भाधान आदि संस्कार करने चाहिए, जो इस लोक और परलोक

को पवित्र करते हैं। सामान्यतः यह समझा जाता है कि विधिपूर्वक संस्कारों के अनुष्ठान से व्यक्ति या बालक में विलक्षण तथा अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

भारतीय सनातन धर्म की यह मान्यता रही है कि बालक का पहला जन्म माता के गर्भ से होता है और दूसरा जन्म उपनयन आदि संस्कारों से। आयुर्वेद⁵ में भी लिखा है कि “संस्कारों हि गुणान्तराधानमुच्यते।” अर्थात् पहले से विद्यमान गुणों से हटाकर उनके स्थान पर सद्गुणों का आधान करने को संस्कार कहते हैं। बालक के पैदा होने के साथ दो प्रकार के संस्कारों का उदय होता है। एक वे जिन्हें वह जन्म-जन्मान्तरों से अपने साथ लाता है तथा दूसरे वे जो वंश परम्परा से माता-पिता से प्राप्त होते हैं। ये संस्कार अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। अतः संस्कारों के द्वारा उस बालक को ऐसे पर्यावरण से घेर दिया जाता है जिससे उसमें अच्छे संस्कारों को पनपने का अवसर प्राप्त हो।

संस्कार भारतीय समाज के आदर्शों एवं महत्वाकांक्षाओं को प्रकट करते हैं। ये प्रतीकात्मक अनुष्ठान की तरह होते हैं। इनमें बहुत से अभिनयात्मक उद्गार, धार्मिक तथा वैज्ञानिक मुद्राएं पाई जाती हैं। यदि संस्कारों के वास्तविक स्वरूप को न समझा जाए तो ये सामान्य लोगों के लिए बच्चों के खेल की तरह प्रतीत होते हैं। इनका उद्देश्य व्यक्तित्व के विकास द्वारा व्यक्ति का कल्याण, समाज तथा विश्व से उसका सामंजस्य स्थापित करते हुए जीवन के विभिन्न अवसरों को महत्त्व एवं पवित्रता प्रदान करना है।⁶

वीर मित्रोदय के अनुसार, “आत्मशरीरान्यतर निष्ठा विहित क्रियाजन्यो अतिशय विशेष संस्कारः।”

संसार की कोई भी जड़ या चेतन वस्तु ऐसी नहीं है जो बिना संस्कार किए हुए मनुष्यों के उपयोग में आती हो। जैसे कोई हम अन्न खाते हैं, किन्तु खेत में जैसा अन्न होता है हम वैसा ही नहीं खाते। पहले उसके दाने और भूसे को अलग किया जाता है उनमें जो दोष हैं उनको दूर करके छान-बीन कर कंकड़ आदि अलग करके उसे खाने योग्य बनाया जाता है। संस्कार संस्कृति और धर्म के द्वारा मानव में मानवता आती है। जिस प्रकार सोना, चांदी तथा हीरा आदि को उनके उद्घाम स्रोत से निकालने पर उनमें चमक-दमक तथा सौन्दर्यकरण के लिए अर्थात् गुणों के आधान के लिए उन्हें भट्ठी में तपाकर तराश-कर मल हटाकर चिकना करना आवश्यक है उसी प्रकार मनुष्य में मानवीय शक्ति का आधान करने के लिए संस्कारित होना आवश्यक है। सम्पूर्ण मानव जीवन का अस्तित्व संस्कारों की परिधि में समाहित हैं।

वीरमित्रोदय⁷ संस्कार प्रकरण में उल्लेख मिलता है कि “संस्कारों से संस्कृत तथा आठ आत्मगुणों से संयुक्त व्यक्ति ब्रह्मलोक में पहुंचकर ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है जिससे वह फिर कभी च्युत नहीं होता।”

वेदों में ऋग्वेद⁸ सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। उसमें ही सर्वप्रथम विवाह, गर्भाधान तथा अंत्येष्टि आदि संस्कारों का विस्तृत स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। संस्कारों के दृष्टिकोण से तैत्तिरीय आरण्यक⁹ का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें परिपक्व आयु में ही विवाहादि संस्कार करने की पुष्टि की गई है। परिणामस्वरूप अविवाहित कन्या का गर्भवती होना पाप माना जाता था— “कुमारीषु कानीनिषु जानीनिषु च ये..... हिताः”¹⁰।

संस्कार जीवन के विभिन्न अवसरों को महत्त्व और पवित्रता प्रदान करते हैं। जीवन के विकास का प्रत्येक चरण केवल शारीरिक क्रिया ही नहीं होता बल्कि इसका सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि, भावना और आत्मिक अभिव्यक्ति से है जिनके प्रति व्यक्ति को जागरूक रहना चाहिए।

संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति सम उपसर्गपूर्वक ‘कृ’ धातु से घञ् प्रत्यय करने पर होती है। संस्कृत साहित्य

में इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों, शिक्षा संस्कृति, प्रशिक्षण, व्याकरण सम्बन्धी, परिष्करण, आभूषण, स्मरण शक्ति पर पड़ने वाला प्रभाव एवं क्रिया की विशेषता, प्रभृति में हुआ है।

वस्तुतः संस्कार शब्द से अभिप्राय किसी वस्तु के स्वरूप को बदलकर उसे नया रूप देना है। गृह्यसूत्रों एवं धर्म सूत्रों में सोलह संस्कारों का उल्लेख किया गया है जिसका अर्थ यह हुआ कि मानव को जीवन में सोलह बार बदलने तथा संस्कारों के द्वारा उसमें नई चेतना प्रदान करना है।

अन्ततः इस प्रकार कहा जा सकता है कि संस्कारों की मनुष्य के जीवन में अहम भूमिका है। संस्कारों के बिना वह पूर्ण रूप से सुसंस्कृत नहीं हो सकता। जिस प्रकार एक कटी-फटी, टेढ़ी एवं खुरदरी लकड़ी पर रन्दा करके उसे समतल एवं उपयोग योग्य बना दिया जाता है उसी प्रकार मनुष्य जाति (बालक आदि) को भी अच्छे संस्कारों के द्वारा उत्तम बनाया जाता है। यही मानव संस्कृति है। मनुष्य शरीर, मन और इन्द्रियों के द्वारा अच्छे और बुरे कर्मों को करता है। इसलिए उसके अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक संस्कृति का विकास होना नितान्त आवश्यक है।

संदर्भ :

1. धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. 176
2. वाचस्पति बृहदिभधान-5, पृ. 5188
3. हिन्दू संस्कार (डॉ. राजबली पाण्डेय) पृ. 18
4. मनु स्मृति, 2.26
5. चरक संहिता (श्री जयदेव विद्यालंकरण) पृ. 210
6. हिन्दू संस्कार (डॉ. राजबली पाण्डेय) पृ. 10
7. वीर मित्रोदय, संस्कार प्रकरण, भाग-1, पृ० 132
8. वीर मित्रोदय, संस्कार प्रकरण, भाग-1, पृ० 142
9. ऋग्वेद, 10.85, 10.183, 184
10. तैत्तिरीय आरण्यक, 1.27

email : san29174@gmail.com

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा



Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :

www.bohalshodhmanjusha.com

Email : grsbohal@gmail.com

Editor :

Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित



ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com

Email : grngobwn@gmail.com

Office : 8708822674

Editor :

Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ

द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गालियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639

Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : <https://ginajournal.com/shodh-samalochan/>

Executive Editor : **Dr. Varsha Rani** M. 9671904323

Managing Editor : **Dr. Mukesh Verma** M. 9627912535

Editor :

Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा

जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540

Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :

Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :

Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिंहमा एडवोकेट ने मनभावना प्रिन्टर्स भिवानी से
छपवाकर कार्यालय #202, पुराना हजूसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037





गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

वैश्वीकरण के दौर में हिंदी भाषा की स्थिति

Authored by

प्रा. वडगे वृषाली रंगनाथ

हिंदी विभाग,

कला, वाणिज्य और विज्ञान महाविद्यालय, मालेगांव शहर।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 08-14

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

भीष्म साहनी के उपन्यासों में चित्रित
पारिवारिक नारी

Authored by

मोनिका रानी, शोधार्थी पीएच.डी.(हिंदी)

डॉ० शिबा, शोध निर्देशिका एवं सहायक आचार्य,
हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, पीलीबंगा हनुमानगढ़।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 15-20

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

दक्षिण एशिया में शांति, सुरक्षा और विकास के लिए
SAARC की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Authored by

डॉ कुलदीप सिंह

असि. प्रोफे., रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग,
बाबा बरुआ दास पी. जी. कॉलेज परुडया आश्रम अम्बेडकरनगर।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 21-28

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

ग्रामीण महिला स्वयं सहायता समूहों की ऋण
उपलब्धता, ऋण उपयोग एवं पुनर्भुगतान व्यवहार

Authored by

अर्चना सिन्हा, पूर्व छात्रा-वाणिज्य

भिलाई महिला महाविद्यालय, हॉस्पिटल सेक्टर, भिलाई, जिला-दुर्ग (छ.ग.)

डॉ. शारदा वर्मा, अतिथि प्राध्यापक-अर्थशास्त्र

चन्दुलाल चन्द्राकर शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, धमधा, जिला-दुर्ग (छ.ग.)

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 29-38

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Digital Right Management Techniques : Analysis in Present

Authored by

Dr. Ankit Godara

SBS College, Raisinghnagar,
Sri Ganganagar (Raj.)

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 39-43

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

**डिजिटल भारत और सामाजिक परिवर्तन : डिजिटल
तकनीक का भारतीय समाज पर प्रभाव**

Authored by

डॉ. राखी सक्सेना, सह प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक

जगदीश कुमार धुर्वे, पीएच.डी. शोधार्थी

वाणिज्य एवं प्रबंध विभाग, कैरियर कॉलेज (ऑटोनॉम),

बी.एच.ई.एल., भोपाल (मध्य प्रदेश)

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 44-51

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Relevance of Values Reflected in the Ramayana in Contemporary Times : A Theoretical Perspective

Authored by

Monika Sahai

Associate Professor and Head, Department of Psychology
S. N. Sen B. V. P. G. College, Kanpur, Uttar Pradesh,
India.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 52-60

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Role of Animal Husbandry in Rural Development of Haryana

Authored by

Dr. Satyawan Jatain

Associate Professor,
GPGCW Rohtak, Haryana.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 61-70

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

कृष्ण बलदेव वैद की कहानियों में मध्यवर्गीय समाज
के जीवन की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति

Authored by

डॉ० अजय सिंह चौहान, शोध निर्देशक,

असि० प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, फिरोज गांधी कॉलेज, रायबरेली।

सोनू, शोधार्थी,

हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 71-77

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

आधुनिक हिंदी कविता में पर्यावरणीय चेतना : प्रकृति
और मनुष्य के बदलते संबंधों के संदर्भ में

Authored by

शाइस्ता सना

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 78-83

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Decolonizing Indian Education : How Colonization Still Shapes What We Learn

Authored by

Dimpi Singh

Research Scholar (Department of Education)
Pt. Ravishankar Shukla University, Raipur.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 84-93

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

स्वच्छता : एक सामाजिक जिम्मेदारी या दिखावा?

Authored by

डॉ. दीप्ति सुधीरकुमार देशपांडे

आसि. प्रोफेसर,

शेठ श्री गिरधरलाल डी.एल.एड. कालेज, दाहोद।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 97-99

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

उपन्यास 'अम्बपाली- एक उत्तरगाथा' में सामाजिक
रूढ़ियों और स्त्री-प्रतिरोध का स्वर

Authored by

हजीना. जी. आर

शोध छात्रा, महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, केरल।

डॉ. अम्बिली वीएस

Assistant Professor, NSS College, Pandalam..

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 100-102

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

प्रगतिवादी कविता में जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति

Authored by

रुयामलाल

(एम.ए.हिन्दी) जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय।

जोधपुर NET – UGC (हिन्दी)

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 103-111

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

हरियाणा में कल्याणकारी योजनाएँ और राजनीतिक
व्यवहार : 2014 से 2026 तक एक विश्लेषणात्मक
अध्ययन

Authored by

पूजा शर्मा, शोधार्थी
डॉ. राकेश रोहिल्ला, मार्गदर्शक
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 112-120

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Sustainable Development in Agriculture- A Sociological Study of Practices, Institutions and Rural Livelihoods

Authored by

Jai Mala Thakur

Assistant Professor in Sociology, Government Degree
College, Akhnoor, Jammu and Kashmir.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 121-129

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

**The specific role of local merchants
(dubashes) and brokers in French colonised
India**

Authored by

Dr. Ravi Shankar Kumar

Assistant Prof. in French

Arignar Anna Govt. Arts & Science College, Karaikal.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 130-139

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Promoting Skills of the Females of Jharkhand on Social Media

Authored by

Sangeeta Sharma

Research Scholar,
University Department of Home Science,
Ranchi University, Ranchi.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 140-146

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

ONLINE EDUCATION – CHALLENGES AND OPPORTUNITIES

Authored by

Dr. Madhvi

Assistant Professor,

Rashtriya College of Education, Sonipat Road, Rohtak.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 147-152

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

भगवतीचरण वर्मा : साहित्य नहीं, सोच की क्रांति

Authored by

डॉ. अफीफा फातिमा शेक

सहायक प्राध्यापक, भाषा विभाग—हिंदी
एम.ओ.पी वैष्णव कॉलेज फॉर विमेन (स्वायत्त), चेन्नई, तमिलनाडु,
भारत।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 153-157

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

The Influence of Customer Trust and Satisfaction on Mobile Banking Adoption

Authored by

Kiran Dattaram Jadhav, Research Scholar,
Dr. Mukesh Kumar Verma, Research Guide,
Department of Commerce, SHRI JAGDISHPRASAD JHABARMAL
TIBREWALA UNIVERSITY, VIDYANAGARI, JHUNJHUNU,
RAJASTHAN – 333010

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 158-167

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

हिंदी-मराठी साहित्यबंध : डॉ. रामदरश मिश्र और
व्यंकटेश माडगूळकर के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
तथा मिश्र जी की स्मृति को भावपूर्ण आदरांजलि

Authored by

डॉ. नरेंद्र चिमण सूर्यराव

प्राथमिक शिक्षक, जिला परिषद प्राथमिक विद्यालय धामणवाडी,
केंद्र दहिवली, तहसील-अंबरनाथ, जिला-ठाणे।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 168-173

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

प्राचीन भारतीय स्त्री- अभिव्यक्तियाँ

Authored by

सुप्रिया सिंह

शोधार्थी (हिन्दी विभाग)

जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 174-178

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

The Role of Public Policy in Promoting Innovation in India : A Comprehensive Review

Authored by

**Suresh Sharma,
S. K. Kulshrestha**

School of Humanities and Social Science,
Vardhman Mahaveer Open University, Kota, Rajasthan, India

Published in **SANGAM** **ISSN : 2321-8037**

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 179-187

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

मृदुला गर्ग एवं आशा प्रभात के उपन्यासों में स्त्री
चेतना : तुलनात्मक अध्ययन

Authored by

रश्मि प्रसाद

शोधार्थी,

मगध विश्वविद्यालय, गया।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 188-194

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

जीवन कौशल शिक्षा की विद्यार्थियों के जीवन में
उपयोगिता

Authored by

डॉ. (प्रो.) रीटा शर्मा, डीन, शिक्षा विभाग

यूनिवर्सिटी ऑफ राजस्थान।

सुरभि श्रीवास्तवा

शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 195-198

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

జానపద సాహిత్యం - బాలానందం

Authored by

డా.. జూరెడ్డి నిర్మల

తెలుగు అధ్యాపకురాలు, సెయింట్ జోసెఫ్ మహిళా కళాశాల, విశాఖపట్నం - 4.

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 199-205

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

समाज में महिलाओं की स्थिति : सशक्तिकरण,
विकास और परंपरागत मूल्यों के बीच संतुलन का
विरलेषण

Authored by

रामा रमोला, शोधार्थी
डॉ. रीना अग्रवाल, शोध निर्देशक,

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 206-212

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

भगवद्गीता में कर्मयोग सिद्धान्त की सजग
नैतिक दृष्टिकोण

Authored by

डॉ. वीरेन्द्र कुमार

दर्शनशास्त्र विभाग,
दी. द. उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,
Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 213-219

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com



गीना देवी शोध संस्थान Gina Devi Research Institute



AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Gunganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

भारतीय संस्कृति एवं संस्कार

Authored by

डॉ. संजीव कुमार

सहायकाचार्य (अतिथि संकाय)

संस्कृत—विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय क्षेत्रीय केन्द्र, धर्मशाला।

Published in **SANGAM** ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, Sept-Oct. 2026,

Vol. 14, Issue 9-10, Part-1, Page No. 220-222

Rekha

Director/Editor :

Dr. Rekha Soni

Naresh

Secretary/Editor-in-Chief :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 <https://ginajournal.com/>

📞 8708822674

📞 9466532152

✉ grngobwn@gmail.com